

oforeign venture in elec-
evelopment Company of
as reorgnized in March,

ing electronic products.
colour television series,
There are more than ten
ion sets, 80% of which

ification, which means
er level.



15

श्रीगणेशाय नमः ।

श्रीविट्ठलदीक्षितविरचिता ।

मण्डपकुण्डसिद्धिः ।

रीमापत्तननिवासिपण्डितगौरीशङ्करविरचित-
सान्वयभाषाटीकासहिता ।
तथा कुण्डार्काद्येकोनविंशतिमूलग्रंथाश्च ।

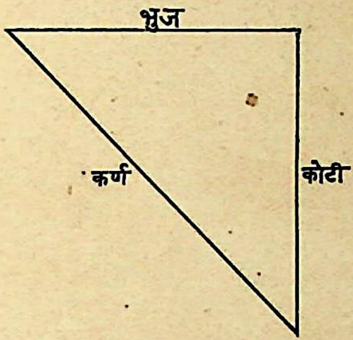
ते च

श्रीकृष्णदासात्मज-गङ्गाविष्णोः
अध्यक्ष " लक्ष्मीवेंकटेश्वर " मुद्रणालये
मैनेजर पं० शिवदुलारे वाजपेयीत्यनेन स्वाम्यर्थं
मुद्रयित्वा प्रकाशिताः ।

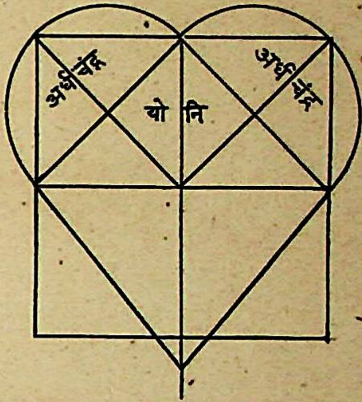
शकाब्दाः १८३८, संवत् १९७३.

कल्याण-मुंबई.

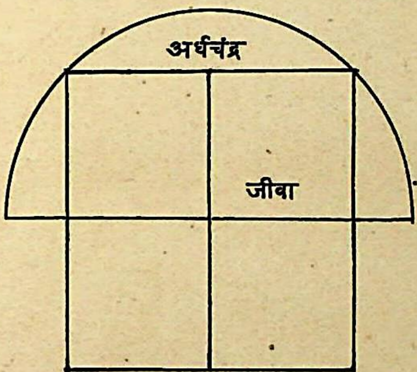
चि० नं० २ पृष्ठ २२



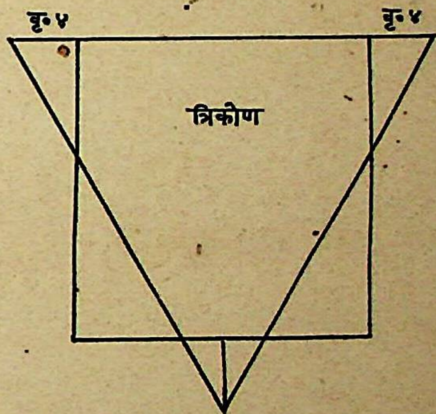
चि० नं० १ पृष्ठ २२



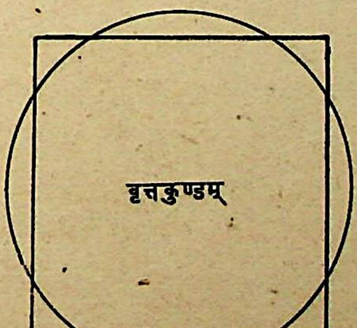
चि० नं० ३ पृष्ठ २२



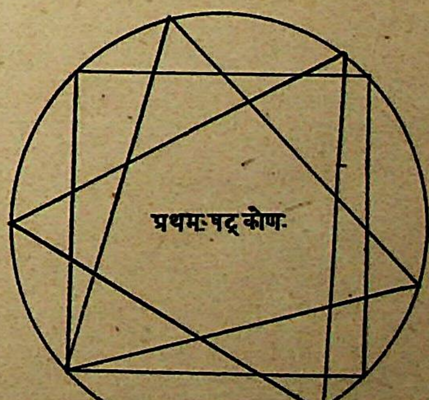
चि० नं० ४ पृष्ठ २३



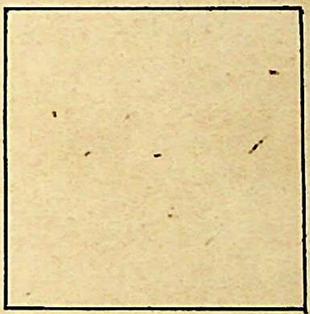
चि० नं० ५ पृष्ठ २३



चि० नं० ६ पृष्ठ २३



चि॰ नं॰ ७ पृष्ठ २३

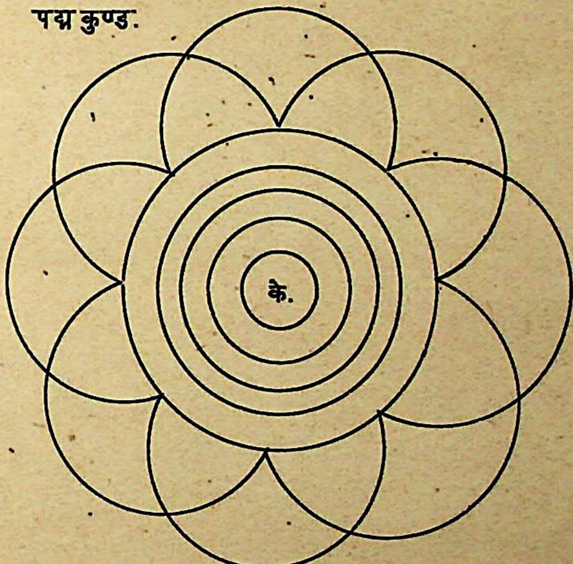


चि॰ नं॰ ८ पृष्ठ २४

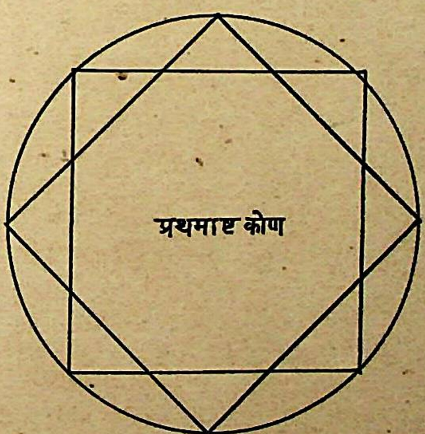


चि॰ नं॰ ९ पृष्ठ २५

पद्म कुण्ड.



चित्र नं॰ १० पृष्ठ २५



चि॰ नं॰ ११ पृष्ठ २६



भूमिका ।

स्वर्ग, राज्यादि सम्पत्ति, नाना सुख तथा मोक्षसाधन करनेवाला कर्म, धर्म कहाता है. सो धर्म दो प्रकारका है एक श्रौत, दूसरा स्मार्त यथा " स्वर्गकामो ज्योतिष्टोमेन यजेत " इत्यादि श्रुतियोंसे प्रतिपादन किया गया अग्निहोत्रादि याग ' श्रौत ' धर्म कहाता है. श्रौतधर्म वेदसे प्रत्यक्षसिद्ध है, और स्मार्तधर्मको वेदशाखाओंसे ऋषिलोग अनुमानसे सिद्ध किये हैं इससे दोनोंका मूल वेद है श्रौतको साक्षात् वेदमूलकता है, स्मार्तको स्मृति पुराणद्वारा वेदमूलकता है इतनाही भेद है " श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः । एतच्चतुष्टयं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥ " इत्यादि मन्वादिक स्मृतियोंमें प्रतिपादन किया गया गर्भाधानादिक शौचाऽऽचमनादिक स्मार्त धर्म कहाता है श्रौतधर्ममें सांग व सार्थ वेद अध्ययन करनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों वर्णोंको अधिकार है, तथा गर्भाधानादिक षोडश १६ संस्कार व देवालय, प्रतिष्ठा, तडागादिका उत्सर्ग इत्यादि स्मार्त कर्ममेंभी अधिकार है, अन्तिम वर्ण शूद्रको केवल स्मार्तधर्ममेंही अधिकार है, श्रौतमें नहीं है यथा " अधिकारी भवेच्छूद्रः पूर्ते धर्मे न वैदिके । " अस्यार्थः वैदिक (श्रौत) धर्ममें शूद्र अधिकारी नहीं होता है पूर्त (आराम तडागोत्सर्ग रोगचिकित्सा इत्यादिक) में, व व्रतबंध छोडके गर्भाधानादि दश १० संस्कारमेंभी अधिकारी है यहां शूद्रशब्दसे विवाहिता जो स्वजाति शूद्रा स्त्री उससे उत्पन्न पुरुषका ग्रहण है शूद्रके कर्म पौराणिक मंत्रोंसे कराना योग्य है शूद्रको प्रतिष्ठित देवताकी वंदनाका निषेध है. यदि शूद्र पुराणादि सुना चाहे तौ देवताको अथवा ब्राह्मणको सुनवावै, आप तटस्थ होके सुने इत्यादि प्रकार शूद्र व सङ्करके विषयमें बहुत विस्तारपूर्वक शूद्रकमलाकरसे मालूम होंगे और स्मार्त धर्म मनु, पराशर, कात्यायन, बौधायन, पारस्कर, गोभिल इत्यादिक सूत्र, स्मृतिकार महर्षियोंके ग्रंथोंसे मालूम होंगे " कलौ पाराशरी स्मृतिः " इस वचनसे मालूम होता है कि कलियुगमें पाराशरी स्मृति विशेष मान्य है । यदि शूद्र शिव विष्णु आदि देवतोंका पूजन करना चाहे तो देवेभ्यो नमः इस मंत्रसे करे शालग्राम शिवलिङ्गको स्पर्श न करे कहा है कि " शौचं ब्राह्मणशुश्रूषा सत्यमक्रोध एव च । शूद्रकर्म तथा मन्त्रो नमस्कारोऽस्य चोदितः ॥ " स्पष्टोऽर्थः ।" नोल्लंघनीयाः कुलदेशधर्माः " इत्यादिवचनोंसे देशाचार कुलाचारभी धर्म कहाता है यदि सदाचार होय तो उसकोभी करना चाहिये तिसमें श्रौतधर्म अग्निहोत्रादिकोंका साधन वैदिकाग्नि है जो अरणिमन्थनसे बनाई जाती है. स्मार्तधर्मोंका साधन लौकिकाग्नि है गृहसे अग्नि लेकर जिसका संस्कार किया जाता है यही गृह्याग्नि है जो कात्यायनादिक आचार्य्य श्रौतसूत्रकार हैं वेही स्मार्त अर्थात् गृह्यसूत्रकारभी हैं. श्रौताग्निका आधान

विना मेखला, विना योनिके खातोंमें किया जाता है, स्मार्ताग्निका आधान कुण्ड अर्थात् योनियुक्त खातमें किया जाता है. अथवा वेदीमें किया जाता है । कुण्डका असल अर्थ खात है चाहे योनि मेखलासहित हो अथवा योनि मेखलारहित हो अग्नि ५ प्रकारका है । वचन—" आवसथ्याऽऽहवनीयौ दक्षिणाग्निस्तथैव च । अन्वाहार्य्यो गार्हपत्य इत्येते पञ्च वह्नयः ॥ " स्पष्टोर्थः । दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य, आहवनीय, इन तीनों अग्निमें श्रौत कर्म किया जाता है । आवसथ्य (गृह्य लौकिक) से स्मार्त, इन अग्नियोंके प्रकार श्रौत ग्रंथोंसे विशेष मालूम होते हैं यद्यपि स्मार्ताग्निस्थापन निमित्त कुण्डविधान पूर्वाचार्योंने अनेक ग्रन्थोंमें बहुत विस्तारसे किया है परन्तु सरलबुद्धियोंके लिये संक्षेपमें सरल ऐसा कोई ग्रन्थ नहीं था. इसलिये मण्डपकुण्डसिद्धिनामक यह ग्रंथ श्रीविठ्ठलदीक्षिताचार्यने बनाया । परन्तु संस्कृतमें होनेके कारण इस ग्रन्थका लाभ सर्वसाधारणको नहीं होता था इसलिये मैहरराज्यान्तर्गत करैयाग्रामनिवासी स्वशिष्य पं० राधाकृष्ण ज्योतिषी-के अनुरोधसे हमने इसकी सान्वय भाषाटीका बनाई है, इसमें यदि कहीं भूलचूक हो उसे सज्जन पण्डितगण क्षमा करेंगे ।

और इसका पुनर्मुद्रणादि सर्वाधिकार हमने सेठ खेमराज श्रीकृष्णदास अध्यक्ष " श्रीवेङ्कटेश्वर " स्टीमप्रेस मुम्बई और लक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस—कल्याणको सादर समर्पण कर दिया है, और कोई महाशय इसके छापने आदिका साहस न करैं नहीं तो लाभके बदले हानि उठानी पडेगी ।

विद्वज्जनकृपाकांक्षी—गौरीशङ्कर.

इयं कुंडग्रंथविंशतिः पुष्पाण्यटता षट्पदेन मध्विव मया अनेकपत्तनानि चारंचारं समासादिता एतस्या द्वितीयावृत्तिरियं विदुषां मुदे भूयात् । पुस्तकांतरदौर्लभ्यादेतस्यां केषुचिद्ग्रंथेषु न्यूनमशुद्धमवाशिषत् एतद्विचार्य धीमंतोऽमुं दोषं क्षमापयेयुरित्याशास्ते हरिकृष्णः ।

अथ कुंडविंशत्यनुक्रमणिका ।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ

मण्डपकुण्डसिद्धिः ।

अन्वयभाषाटीकासहिता ।

गाढं ध्वांतमनेकभानुजठरे राजत्कलाधारिणि ।
प्रोदञ्चच्छफरीयुगं दरदलत्पद्मेऽणुहीरावलिम् ॥
स्वर्णोत्तुङ्गगिरिद्वयाधरचरीं दीनां कलिंदात्मजां ।
पश्याश्चर्यमिदं शिवामिति वदन्स्मेरः शिवः पातु वः ॥ १ ॥

सर्वादिं सर्वजननीं सर्वभावस्वरूपिणीम् ॥
सर्वदा सर्वगां सर्ववन्द्यां वन्दे त्रयीमयीम् ॥ १ ॥

दोहा—गुरुजन चरण सरोज रज, हिय धरि मति अनुसार ॥
भाषहु मंडपकुंडसिधि, सान्वय भाष्यप्रकार ॥ १ ॥

अन्वयः—इदम् आश्चर्यं पश्य, इति शिवां पार्वतीं प्रति वदन् स्मेरः ईषद्धास्यविशिष्टः शिवः वः युष्मान् पातु । इदं किम्—अनेकभानुजठरे गाढं ध्वान्तं निबिडान्धकारम् । पुनः राजत्कलाधारिणि चन्द्रमसि प्रोदञ्चच्छफरीयुगं चञ्चलमीनयुग्मम् । पुनः दरदलत्पद्मे ईशद्विकसितकमले । अणुहीरावलिम् अल्पहीरापंक्तिम् । पुनः स्वर्णोत्तुङ्गगिरिद्वयाधरचरीं सुवर्णोन्नतपर्वतद्वयाधोवहन्तीम् । दीनां सूक्ष्माम् । कलिन्दात्मजां यमुनाम् ॥ १ ॥

भा० टी०—श्रीशङ्करजीने श्रीपार्वतीजीका मानमोचनके अर्थ मानमोचनका छठा उपाय रसांतरको आश्रयण करके रूपकातिशयोक्ति अलङ्कार बलते अद्भुत रस दिखाते हुए श्रीपार्वतीजीसे कहते हैं हे प्रिये ! यह आश्चर्य देखो यथा आश्चर्य वह पदार्थ है कि जिसकी घटना असम्भावित है प्रथम अनेक सूर्योंके बीचमें गाढान्धकार यह असम्भव है १ एक सूर्यके उदयमें अन्धकारका लेशभी नहीं रहता तो अनेक सूर्यके समीप गाढान्धकार कैसे रहि सकता है इससे आश्चर्य है दूसरा पूर्ण चन्द्रमण्डलके बीचमें चंचल दो मीन यहभी असम्भव है चन्द्रमण्डल आकाशमें है मीन जलमें रहते हैं मीनोंका जीनाभी जलके विना असम्भव है तीसरा किंचित् फूले कमलके मध्यमें हीराकी कनियोंकी पङ्क्ति असम्भव है हीरा खानिमें पैद

होता है, कमलमें हीराकनीका वास असम्भव है चौथा सुवर्णमय ऊंचे दो सुमेरु पर्वतके नीचे बहती सूक्ष्मधाराकी यमुना सुमेरु पर्वत पुराणादिकमें एकही प्रसिद्ध है दो होना असम्भव है त्यों यमुनाकी उत्पत्ति कलिन्द पर्वतसे है सुमेरुके नीचे बहना असम्भव है ईषद्धास्य करते श्रीपार्वतीजीसे ऐसा कहते हुए श्रीशिवजी तुम लोगोंकी रक्षा करें यहां रूपकातिशयोक्ति अलंकार केवलते श्रीपार्वतीजीके माथेमें गुथेहुए हीरा भानुपदसे लिये जाते हैं त्यों अन्धकारसे केश चन्द्रसे मुख-मण्डल मीनसे नेत्र पद्मसे मुख कनीसे दन्त पर्वतसे कुच यमुनासे रोमावलीका ग्रहण होता है इसका वीज साहित्यग्रन्थ अलंकारशेखरादिकसे स्पष्ट होगा यहां कविकी श्रीशंरविषयक भक्ति व्यंग्य है, शार्दूलविक्रीडित छन्द है, वैदर्भी रीति है, प्रसाद गुण है यह गोलार्थ संक्षेपसे लिखा जाता है ॥ १ ॥

अथ कविवंशकथन।

कृष्णात्रिगोत्रे नितरां पवित्रे पवित्रकर्माऽजनि बूबशर्मा ॥
तत्सूनुना विट्ठलदीक्षितेन विरच्यते मंडपकुंडसिद्धिः ॥ २ ॥

अन्वयः—बूबशर्मा कृष्णात्रिगोत्रेऽजनि । तत्सूनुना विट्ठलदीक्षितेन मंडप-कुण्डसिद्धिः विरच्यते कथंभूते कृष्णात्रिगोत्रे नितरां पवित्रे कथंभूतो बूबशर्मा पवित्रकर्मा ॥ २ ॥

भा०टी०—कृष्णात्रिनामक ऋषिके गोत्रमें बूबशर्मा नामका द्विज हुए तिन बूब-शर्माके पुत्र विठ्ठलदीक्षितनामक कवि मण्डपकुण्डसिद्धिकी रचना करते हैं (मण्डप कहिये यज्ञशाला कुण्ड कहिये हवनार्थ अग्निका आधारभूत खात (गड्ढा), इन दोनोंकी सिद्धि अर्थात् रचनाका प्रकार है जिसमें ऐसा मंडपकुण्डसिद्धिनामक ग्रंथ) कृष्णात्रिगोत्र कैसा है, अधिक पवित्र है, बूबशर्मा कैसे हैं कि पवित्र है कर्म अर्थात् यजनादिषट् ६ कर्म जिनके इति, यह उक्ति तटस्थ होकर ग्रंथकर्ताकी है ॥ २ ॥

अथ कुण्डमण्डपरचनाके उपयोगी हस्वादि मानकी परिभाषा विपरीताख्यान और अनुष्टुप्छंदसे कहते हैं।

यवो यूका च लिक्षा च वालाग्रं चैवमादयः ॥
कृतमुष्टिकरोऽरत्निररत्निरकनिष्ठिकः ॥ ३ ॥
कृतोर्ध्वबाहोः समभूगतस्य कर्तुः शरांशः प्रपदोच्छ्रितस्य ॥
यो वा स हस्तोऽस्य जिनांशकोऽपि स्यादङ्गुलं तत्तदिभांशका ये ४

अन्वयः—कर्तुः यः शरांशः सः हस्तः अस्य हस्तस्य जिनांशकः अङ्गुलं स्यात्, ये तत्तदिभांशकाः ते यवाः यूका च पुनः लिक्षा वालाग्रं च एवमादयः मानसंज्ञा भवंति । कृतमुष्टिकरः हस्तः रत्निः इत्युच्यते, अकनिष्ठिकः कृतमुष्टिकरः हस्तः अरत्निः उच्यते, कथंभूतस्य कर्तुः कृतोर्ध्वबाहोः पुनः कथंभूतस्य समभूगतस्य वा पक्षान्तरे पुनः कथंभूतस्य प्रपदोच्छ्रितस्य, अपि निश्चये ॥ ३ ॥ ४ ॥

भा०टी०—यज्ञकर्ताका पंचमांश हस्त कहा जाता है जब वह कर्ता सम पृथ्वीमें भुजा उठायके खडा हों तब उसको सरल वंशसे चरणते हस्तके मध्यम अङ्गुलीके अग्र पर्यंत नाप ले उस वंशमें चार रेखा समान भाग देनेसे पांच भाग होंगे वही एक भाग हस्त समझो अथवा यज्ञकर्ताको पादाग्र केवल अर्थात् एडी उठाकर खडे होनेपर जो पूर्वोक्तरीतिसे पंचमांश निकले उसकी हस्त संज्ञा है इस हस्तका जिनांश अर्थात् २४ सौं हिस्सा अङ्गुल कहा जाता है अङ्गुलका इभांश (आठमां हिस्सा) यव कहा जाता है तथा यवका अष्टमांश यूका यूकाका अष्टमांश लिक्षा लिक्षाका अष्टमांश वालाग्र आदि पदसे रज रेणु त्रसरेणु परमाणुका ग्रहण होता है. परंतु इनका यहां कुछ उपयोग नहीं है. इससे इनका स्वरूप नहीं कहते कृतमुष्टि अर्थात् मूठी बांधनेपर यजमानके हस्तका जो मान होता है उसकी रत्नि संज्ञा है तथा मुष्टिवद्ध हस्तसे कनिष्ठा फैलानेसे जो मान है उसकी अरत्नि संज्ञा है २१ अंगुलकी रत्नि होती है साढे बावीस२२ ॥ अंगुलकी अरत्नि होती है इति आचार्यद्वारा हस्तादिसाधन हो सकता है. साधारण अङ्गुल मध्यम अङ्गुलीके मध्यपर्वके सम अन्यत्र लिखा है ॥ ३ ॥ ४ ॥

अथ कुण्डमण्डपदिक्साधनोपयोगि भूमिशोधनप्रकार स्रग्धराछंदसे कहते हैं ।

ज्ञात्वा पूर्वं धरित्रीं दहनखननसंप्लावनैः संविशोध्य ।
पश्चात्कृत्वा समानां मुकुरजठरवद्वाचयित्वा द्विजेन्द्रैः ॥
पुण्याहं कूर्मशेषौ क्षितिमपि कुसुमाद्यैः समाराध्य शुद्धे ।
वारे तिथ्यां च कुर्यात्सुरपतिककुभः साधनं मण्डपार्थम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—आचार्यः शुद्धे वारे, च पुनः शुद्धतिथ्यां मण्डपार्थं सुरपतिककुभः साधनं कुर्यात्, किं कृत्वा पूर्वं धरित्रीं ज्ञात्वा पुनः किं कृत्वा दहनखनन-

संप्लावनैः संविशोध्य, पश्चात् मुकुरजठरवत् समानां कृत्वा, पुनः द्विजेन्द्रैः पुण्याहं वाचयित्वा, पुनः कूर्मशेषौ क्षितिम् अपिशब्दाद्वराहं कुसुमाद्यैः समाराध्य ॥५॥

भा०टी०–आचार्य शुद्ध वार अर्थात् सोम, बुध, गुरु, शुक्र इन वारोंमें तथा रिक्ता अमावास्यादि निन्दित तिथियोंको छोड़कर और व्यतीपातादि योग रहित शुद्ध तिथियोंमें मण्डपके अर्थ प्राची दिशाको स्पष्ट करे क्या करिके पूर्वही पृथ्वीको मण्डपकी योग्य जानकर ब्राह्मणादिक वर्ण और शल्यादिककी परीक्षा करके पुनः दहन अर्थात् तृणाच्छादन करि जलाना खनन अर्थात् हस्तप्रमाण खोदना पुनः जलसे पूरित करना पश्चात् अच्छी मृत्तिकासे पूर्ण करि दर्पण समान सम चिक्कन करना पुनः श्रेष्ठ वैदिक ब्राह्मणोंसे पुण्याहवाचन करना कूर्म कच्छप शेष नाग पृथ्वी वराह इनका पूजन पुष्पादिकोपचारसे करना इति भूमिपरीक्षा संक्षपसे कहते हैं जो जमीन फटी होवै त्यों जिसमें वामी होवै और जिसमें शल्य (हाड) वगैरह होवै सो भूमि मण्डपकुण्डके योग्य नहीं होती कर्ताके आयु व धनको हरती है जो भूमि ईशान दिशा व पूर्वदिशा व उत्तर दिशाके ओर नीची होवै अर्थात् पानी पड़नेसे उक्त दिशाओंके तरफ वहै वह भूमि शुभ होती है जिस भूमिमें गर्मीके ऋतु शीतस्पर्श होवै और शीतकालमें उष्ण स्पर्श होवै और वर्षाकालमें अनुष्णाशीत याने न गरम न शीत स्पर्श होवै सोभी भूमि शुभ होती है जिस भूमिका घृतके समान गंध होवे अथवा जिस भूमिमें कुशा बहुत पैदा होय तिस भूमिकी ब्राह्मणी संज्ञा है तथा जिस भूमिमें रक्तकैसा गंध होय अथवा सर्प पैदा होय वह भूमि क्षत्रिया कहाती है तथा जिसमें क्षारकैसा गंध होय अथवा कुश काश दोनों पैदा होय सो भूमि वैश्या कहाती है जिसमें विष्ठाकैसा गंध होय अथवा सब तृण पैदा हों सो भूमि शूद्रा है अर्थात् तात्पर्य्य यह है कि जिसवर्णकी भूमि उसी वर्णको हित है और सपेत पीली रक्त कृष्ण किसी तरहकी भूमि होवै परंतु जिस भूमिमें जल देरतक ठहरै और दृढ व चिकनी होवै सो भूमि सर्व वर्णको शुभ है दूसरी परीक्षा एक बीता, लम्बा, चौडा, गहरा खात खोदै फिर वही मट्टी उसी खातमें पूरै जो मट्टी खातके बराबर होकर बच जाय सो भूमि उत्तम है मट्टी खातके बराबरही हो नहीं बचै सो भूमि मध्यम है और मट्टीसे यदि (गड्ढा) पूर्ण न होय सो भूमि अधम है तीसरी परीक्षा कुण्ड खोदतेमें यदि केश, कोइला, भूशी, हाड, भस्म मिले तो उनको निकाल देवै और गोशृंग यदि पीला मेडक, शंख, सूती, कच्छप (केचुहा) धोंधा काढै तो अच्छा समझना यह परीक्षा गृहादि निर्माणमेंभी करना चाहिये शल्य निकालना आवश्यक है ॥ ५ ॥

अथ दिशासाधनप्रकार शङ्कु खडा करना उपजाति विपरीता-
ख्यानकी छंदसे कहते हैं ।

नृपाङ्गुलैः संमितकर्कटेन सूत्रेण वा वृत्तवरं विलिख्य ॥
रव्यंगुलं शङ्कुममुष्य मध्ये निवेशयेत्खाक्षिमितांगुलीभिः ॥ ६ ॥
चतसृभिश्चापि ऋजूत्तमाभिः संस्पृष्टशीर्षं तु समेषिकाभिः ॥
तच्छङ्कुभा यत्र विशेदपेयाद्वृत्ते क्रमात्स्तो वरुणेन्द्रकाष्ठे ॥ ७ ॥

अन्वयः—आचार्यः नृपाङ्गुलैः सम्मितकर्कटेन वा पक्षान्तरे सूत्रेण वृत्तवरं विलिख्य अमुष्य मध्ये रव्यङ्गुलं शङ्कुं निवेशयेत् कथंभूतं शङ्कुं तच्छङ्कुभा यत्र विशेदपेयाद्वृत्ते क्रमात्स्तो वरुणेन्द्रकाष्ठे समेषिकाभिः संस्पृष्टशीर्षं कथंभूताभिः समेषिकाभिः खाक्षिमिताङ्गुलीभिः पुनः चतसृभिः पुनः ऋजूत्तमाभिः तच्छङ्कुभा यत्र वृत्ते विशेत् अपेयात् तत्र क्रमात् वरुणेन्द्रकाष्ठे स्तः ॥६ ॥ ७॥

भा०टी०—आचार्य उक्ताङ्गुलमें सोरह अङ्गुलके विस्तारका कर्कट (परकाल) अथवा सोरह अङ्गुलके विस्तारका सूत्र घुमायकर उत्तम वृत्त अर्थात् गोलमण्डल-कर उस मण्डलके बीचमें बारह अङ्गुलका शङ्कु खडा करै तिस शङ्कुके शिरमें जोडकर चारों दिशामें चार सीधी शलाका लगावे बीस २० अङ्गुलकी उस शङ्कुकी पूर्वाह्नछाया मण्डल रेखामें जिस जगहसे मण्डलमें प्रवेश करे उसी जगहमें पश्चिम दिशाका सूचक एक शङ्कु गाडै फिर शङ्कुकी छाया पराह्नमें वृत्तरेखाते जिस जगेसे बाहर निकलै उसी जगह पूर्व दिशाका सूचक दूसरा शङ्कु गाडना चाहिये इस तरहपर पश्चिम रेखा व पूर्व रेखा क्रमसे सिद्ध होती है ॥ ६ ॥ ७ ॥

अथ संक्रांतिविशेषमें रेखाचालन शालिनीवृत्तसे कहते हैं ।

कर्के कीटे गोमृगे यूकया सा द्वाभ्यां चाल्या सिंहकुम्भत्रिकेऽपि ॥
यां वै काष्ठां भानुमान्याति तस्यां चाल्या द्वंद्वे कार्मुके चालनं न॥८॥

अन्वयः—सा रेखा कर्के कीटे गोमृगे यूकया चाल्या, तथा सिंहकुम्भत्रिकेऽपि याम् दिशं भानुमान् याति तस्यां चाल्या द्वंद्वे कार्मुके चालनं नास्ति ॥ ८॥

भा० टी०—कर्क, वृश्चिक, वृष, मकर, इनमें जब सूर्यसंक्रांति होवै तब १ यूका रेखा चलाना चाहिये तथा सिंह, कन्या, तुला, कुम्भ, मीन, मेष, इनमें जब सूर्य-संक्रांति होवे तब दो २ यूका रेखा चलाना चाहिये परन्तु जिस दिशाको सूर्य

गमन करें उसी दिशामें चालन करे. तात्पर्य यह है कि कर्क, वृश्चिकमें सूर्य दक्षिणायन रहते हैं तब दक्षिण दिशाकी रेखा चलाना चाहिये और वृष, मकरमें, सूर्य उत्तरायण रहते हैं तब उत्तर दिशाकी रेखा चलाना चाहिये इसी प्रकार सिंह, कन्या, तुलाकी संक्रांतिमें दक्षिणकी कुम्भ, मीन, मेषकी संक्रांतिमें उत्तरकी मिथुनकी संक्रांति व धनकी संक्रांतिमें चालन नहीं है. जहांसे छायाका निर्गम प्रवेश होता है. वही दिशा मण्डल रेखामें मानी जाती है ॥ ८ ॥

इसप्रकारसे पूर्वदिशा व पश्चिमदिशाका साधन करि अब शालिनीवृत्तसे दक्षिण व उत्तर दिशाका साधन कहते हैं ।

रज्जुं द्विघ्नां मध्यचिह्नां सपाशां प्राचीशंकौ पश्चिमे चापि दत्त्वा ॥
कर्षेद्धीमान्दक्षिणे चोत्तरे च तच्चिह्नं स्याद्दक्षिणा चोत्तरा दिक् ॥ ९ ॥

अन्वयः—धीमान् आचार्यः द्विघ्नां मध्यचिह्नां सपाशां रज्जु प्राचीशंकौ च पुनः पश्चिमे शंकौ दत्वा दक्षिणे च पुनः उत्तरे कर्षेत् तच्चिह्नं दक्षिणा च पुनः उत्तरा दिक् स्यात् ॥ ९ ॥

भा० टी०—जितना कुण्डमण्डपका विस्तार होवे, उतनेही विस्तारसे दूना रज्जु (सूत्र) लेना उस सूत्रके मध्यमें चिह्न (निसानी) करे और सूत्रके दोनों छोरमें पाश (फांदी) बनावे उन फांदियोंको उक्त प्रकारसे गडे हुए पूर्व पश्चिमके शङ्कुमें बांधे पश्चात् सूत्रके मध्यचिन्हमें पकडकर दक्षिणको खींचै जिस भूमिमें मध्य चिन्ह पडे वहीं दक्षिणदिशाका शङ्कु गाडना चाहिये त्योंही उत्तरदिशाके खींचनेमें जिस जगह मध्य चिह्न पडे वहीं उत्तर दिशाका शंकु गाडना चाहिये तात्पर्य यह है कि जब एक हाथके कुण्डमें २४ अङ्गुलका भुज है तब ४८ अङ्गुलका सूत्र लेना चाहिये जब दो हाथका कुण्ड है और ३४ अङ्गुलका भुज है तब ६८ अङ्गुलका सूत्र लेना चाहिये जिस कुण्डमें यवोंकी वृद्धि है वहां यवामान व अङ्गुल दोनो द्विगुण करना । १६ हाथके यज्ञशालामें ३२ हस्तका सूत्र लेना चाहिये ॥ ९ ॥

इस प्रकार दिनमें दिक्साधन कहकर अब रात्रिमें दिक्साधन वसंततिलक छंदसे कहते हैं ।

निशि वा श्रवणोदये दिगैन्द्री गुरुभस्योदयनेऽथ वह्निभस्य ॥
सुरवार्द्धकिवायुभांतरालेऽप्यमुतः साधय पूर्ववच्च याम्याम् ॥ १० ॥

अन्वयः—हे शिष्य वा पक्षान्तरे निशि श्रवणस्योदये ऐंद्री दिग् भवति अथवा गुरुभस्योदयने अथवा वह्निभस्योदयने, अथवा सुरवार्द्धकिवायु-भांतराले ऐंद्री दिक् भवति, असुतः पूर्ववत् याम्यां साधय ॥ १० ॥

भा० टी०—रात्रिके समय जहां आकाशमें श्रवणका उदय होवै तहां प्राची दिशा होती है अथवा जहां पुष्यका उदय होवै या जहां कृत्तिकाका उदय होवै तहाँ प्राची दिशा होती है. अथवा चित्रा स्वातीके बीचमें प्राची दिशा होती है. इसी प्राची दिशासे पूर्वोक्त प्रकार दक्षिण दिशा साधन करे ॥ १० ॥

अथ चित्रा स्वातीके अंतराल जाननेका उपाय अनुष्टुप्छंदसे कहते हैं ।

चित्रां विध्वैकया स्वातीमन्ययापि शलाकया ॥
तिर्यक्स्थांतरचिह्नाँस्तु द्विमूलेऽन्यां स्फुटेन्द्रदिक् ॥ ११ ॥

अन्वयः—एकया शलाकया चित्रां विध्वा अन्यया द्वितीयया शलाकया स्वातीं विध्वा तु पुनः प्रथमद्वितीययोः शलाकयोरुपाग्रम् अंतरचिह्नं मध्य-चिह्नम् अन्यां तृतीयां शलाकां तिर्यक् दक्षिणोत्तरां दद्यात् । प्रथमद्वितीययो-र्मूले एकीकृत्य तृतीयां मध्यांकादुभयसंपातं यावत् चतुर्थीं शलाकां प्रांतरे रज्जुप्रांतलम्बकद्वयवर्तीं दद्यात् । यत्र लम्बकौ भूम्यां पतितौ तत्रांकयोः पूर्वा-परसूत्रदानात् स्फुटा इन्द्रदिक् प्राचीति युक्तिः । द्वयोर्मूले द्विमूले इति समासः ॥ ११ ॥

भा०टी०—एक सीधी शलाकासे चित्राको वेध करै दूसरी शलाकासे स्वातीको वेधै, दोनों शलाकाओंके ऊपर अग्रभागके समीप मध्यमें चिह्न करके वेंडी तिसरी शलाका धरै पश्चात् पहिली दूसरी, शलाकाका मूल इकट्ठा करै फिर तिसरी शला-काके मध्यचिह्नसे दोनों तरफ लगनेवाली दो २ लम्बक अर्थात् साहुलसे युक्त पूर्व, पश्चिम लम्बी चौथी शलाका लगावे वह दोनों लम्बक भूमिमें जहां पतित होवे वहांपर पूर्व पश्चिम सूत्र देनेसे पूर्व दिशा स्पष्ट होती है यही युक्ति है यंत्र साधन क्रिया कुशल अत्युत्तम ज्योतिषीके शिक्षासे व क्रियाके देखनेसे ज्ञात होगी ॥ ११ ॥

अथ प्रकारांतरसे सहज उपायसे दक्षिण उत्तर दिक्साधन पुष्पिताग्रा अनुष्टुप्छंदोंसे कहते हैं ।

परमदिनदिनोद्भवांतरालं शरगुणितं च रसैर्हतं द्युतिः स्यात् ॥

समकुगते नरे नगांगुले त्विड्भगतया स्वभया भवेदुदीची ॥ १२॥
दिनमानदले सप्ताङ्गुलच्छायाऽग्रतो हि यत् ॥
शङ्कुमूले नीयमानं सूत्रं स्यादुत्तरा दिशा ॥ १३ ॥

अन्वयः—शरगुणितं परमदिनदिनोद्भवांतरालं रसैः हृतं द्युतिः स्यात्। नगाङ्गुले नरे समकुगते त्विट् भवति समगतया स्वभया उदीची भवेत्। अथवा दिनमानदले सप्ताङ्गुलच्छायाग्रतः यत् शंकुमूले नीयमानं सूत्रं सा उत्तरा दिशा स्यात् ॥ १२ ॥ १३ ॥

भा०टी०—परमदिनमान घटिका पलादिक और इष्ट दिनमान घटिका पलादिक दोनोंको अंतर करै अंतर करनेसे जो अंक लब्ध होवै उसे पांचसे गुणै पश्चात् छः ६ से भाग लेवै तो मध्याह्नछाया होती है और समभूमिमें सप्ताङ्गुल शङ्कु लगानेसे समछायामें अपनी छायामें उत्तरा दिशा होती है अथवा मध्याह्न कालमें ७ सात अङ्गुलका शङ्कु सम भूमिमें लगाकर उस शङ्कुके अग्रभागसे मूल भागतक सूत्र पात करनेसे उत्तर दिशा होती है. परम दिनमान व इष्ट दिनमान गणितसे अथवा स्वदेशके तिथिपत्रसे जानना चाहिये इति ॥ १२ ॥ १३ ॥

इस प्रकार दिशासाधन किया गया अब मण्डपके चतुष्कोणका साधन-विपरीताख्यानकी छंदसे कहते हैं।

दिगंतशङ्कुद्वयगं द्विपाशं विस्तारतुल्यं तु गुणं दलांके ॥
कोणे प्रकर्षेदिति वेदकोणेष्वेवं चतुष्कोणमतीव साधु ॥ १४ ॥

अन्वयः—दिगंतशङ्कुद्वयगं,द्विपाशं विस्तारतुल्यं एवंभूतं गुणं दलाङ्के कोणे प्रकर्षेत् इति वेदकोणेषु सत्सु एवं अतीव साधु चतुष्कोणं भवति ॥ १४ ॥

भा०टी०—मण्डपके विस्तारके तुल्य अर्थात् १२ हस्तके मण्डपमें १२ हाथका सूत्र लेना उस सूत्रके दोनों तरफ अग्र भागमें फाँदी बनाना उन फांदियोंको पूर्व दक्षिणके दिशामें गाडे हुए शङ्कुमें बांधना पश्चात् सूत्रका मध्यभाग पकडकर कोणमें खींचना जिस जगह सूत्रका मध्य चिह्न पतित होगा वही आग्निकोण होगा इसी प्रकार दक्षिण व पश्चिमके शङ्कुमें सूत्र लगानेसे नैर्ऋत्य कोण होता है, इसी तरह पश्चिम उत्तरमें शङ्कु लगानेसे वायव्य कोण होता है, इसी तरह उत्तर व पूर्वके शङ्कुसे ईशान कोण होता है इस प्रकार मण्डपमें चतुष्कोण साधन करना चाहिये इति ॥ १४ ॥

अब मंडपके भूमिकी ऊँचाई शालिनी छंदसे कहते हैं ।

उच्चां भूमिं मण्डपस्य प्रकुर्याद्धस्तोन्मानामर्द्धहस्तोन्मितां वा ॥
मध्ये भूमिं मण्डपेनोन्मितां च त्यक्त्वा कुर्यान्मण्डपश्चेद्द्वितीयः॥ १५

अन्वयः—मण्डपस्य भूमिं हस्तोन्मानाम् उच्चां प्रकुर्यात् अथवा अर्द्धहस्तोन्मिताम् उच्चां कुर्यात् द्वितीयः मण्डपः कर्तव्यश्चेत् तदा मण्डपेनोन्मितां भूमिं मध्ये त्यक्त्वा द्वितीयमण्डपं कुर्यात् ॥ १५ ॥

भा० टी०—मण्डपकी भूमि हस्तोन्मान अर्थात् २४ अंगुलकी ऊंची बनाना चाहिये अथवा अर्द्ध हस्त अर्थात् १२ अंगुलकी उंची बनाना चाहिये यदि दूसरा मण्डप बनाना होवे तो जितना विस्तार मण्डपका होवै उतनीही भूमि छोडकर दूसरे मण्डपकी रचना करै अर्थात् जो १२ हाथका मण्डप होवे तो १२ हाथ जमीन छोडकर दूसरा मण्डप करै ऐसाही औरभी जानना चाहिये ॥ १५ ॥

अब मण्डपके अधमादिक भेद वसंततिलक छंदसे कहते हैं ।

दशसूर्यकरोन्मितोऽधमः स्यादिनशक्रप्रमितैः करैस्तु मध्यः ॥
धृतिभूपकरोन्मिते वरीयान्नखहस्तोऽप्यथ मण्डपस्तुलायाम्॥१६॥

अन्वयः—दशसूर्यकरोन्मितः मण्डपः अधमः स्यात् । इनशक्रप्रमितैः करैः मध्यः स्यात् । धृतिभूपकरोन्मितः मण्डपः वरीयान् स्यात् । अथ तुलायां नखहस्तः अपि मण्डपः उत्तमः स्यात् ॥ १६ ॥

भा० टी०—दश वा वारह हाथका मण्डप अधम कहा जाता है. तथा वारह व चौदह हाथका मध्यम कहा जाता है. तथा सोरह व अठारह हाथका मण्डप उत्तम कहा जाता है. तुलादानमें वीस हाथका मण्डपभी उत्तम होता है इति ॥ १६ ॥

अथ मण्डपोंमें द्वार तथा मध्यवेदीका परिमाण कहते हैं ।

दिगन्तराले द्विकरं भवेद्द्वाश्चतुष्टयं वेदगजांगुलैस्तत् ॥
विवर्द्धितं मध्यवरिष्ठयोः स्याद्वेदी त्रिभागेन समाकराचा ॥ १७ ॥

अन्वयः—दिगंतराले द्विकरं द्वाश्चतुष्टयं भवेत् मध्यवरिष्ठयोः तत् वेदगजाङ्गुलैः विवर्द्धितं स्यात् तथा त्रिभागेन समाकराचा वेदी स्यात् ॥ १७ ॥

भा०टी०—अधम मण्डपोंमें पूर्वादि दिशाओंके वीचमें दो २ हस्तके चौडे चारों दिशामें चार द्वार बनाना चाहिये तथा मध्य मण्डपोंमें दो हाथ ४ चार अंगुलके

चौडे वा उत्तम मण्डपमें दो हात ८ अंगुलके चौडे होना चाहिये और मण्डपके मध्यमें अर्थात् तीसरे हिस्सामें एक हाथकी ऊंची वेदी बनाना चाहिये अर्थात् मण्डपके ९ भाग करनेसे जो मध्य भाग है उसी भागमें वेदी बनाना उचित है, अब सिद्धांत शेखर ग्रंथके अनुसार संस्कृत टीकामें लिखे वेदीके भेद कहते हैं यथा श्लोक–वेदी चतुर्विधा प्रोक्ता चतुरस्री च पद्मिनी ॥ श्रीधरी सर्वतोभद्रा दीक्षासु स्थापनादिषु ॥ १ ॥ चतुरस्रा चतुष्कोणा वेदी सर्वफलप्रदा ॥ तडागादिप्रतिष्ठायां पद्मिनी पद्मसन्निभा ॥ २ ॥ राज्ञां स्यात्सर्वतोभद्रा चतुर्भद्राभिषेचने ॥ विवाहे श्रीधरी वेदी विंशत्यस्रसमन्विता॥३॥ दर्पणोदरसंकाशा निम्नोन्नतविवर्जिता ॥४॥ इति मंत्र, दिशा, व तडागादि प्रतिष्ठामें चार प्रकारकी वेदी कही गई है यथा चतुरस्रा१पद्मिनी २ श्रीधरी ३ सर्वतोभद्रा ४ इन वेदियोंमें चतुरस्रा (चार कोणकी वेदी) सर्व कार्यमें शुभ देनेवाली है त्यों आठ दल पद्मके समान पद्मिनी वेदी होती है सों तडागादिक प्रतिष्ठामें शुभ होती है राजाओंके राज्याभिषेक कालमें सर्वतोभद्रा वेदी शुभ होती है विवाहमें बीस २० कोणकी श्रीधरी वेदी शुभ होती है सम्पूर्ण वेदिओंको दर्पणके समान स्वच्छ बनाना चाहिये ॥ १७ ॥

अब तुलापुरुषदानमें मध्यवेदी और ग्रहवेदीका भेद विपरीताख्यानके वृत्तसे कहते हैं।

तुलाप्रदानेऽधममध्ययोः स्यात्सा पंचहस्तोत्तमकेऽद्रिहस्ता ॥
ईशानभागे ग्रहवेदिका तु हस्तोन्मितोच्छ्रायवती त्रिवप्रा ॥ १८ ॥

अन्वयः–तुलापुरुषदाने अधममध्यमयोः मण्डपयोः पंचहस्ता वेदी स्यात् उत्तममण्डपे सप्तहस्ता वेदी स्यात् मण्डपस्य ईशानभागे हस्तोन्मितोच्छ्रायवती त्रिवप्रा ग्रहवेदिका स्यात् ॥ १८ ॥

भा० टी०–तुलापुरुषके दानमें अधम तथा मध्यम मण्डपके बीचमें पांच हस्तकी वेदी व उत्तम मण्डपमें सात हस्तकी मध्यवेदी बनाना चाहिये इसी मध्यवेदीको महावेदीभी कहते हैं, मण्डपके ईशानभागमें १ हस्तकी लम्बी चौडी ऊंची तीन मेखलायुक्त ग्रहवेदी बनाना चाहिये इति ॥ १८ ॥

अथ स्तम्भनिवेशनप्रकार भुजंगप्रयातछंदसे कहते हैं।

समत्रित्रिभागेषु सूत्रं प्रदद्यादुदग्दक्षिणं चापि पूर्वापरं च ॥
ततस्त्र्यंशपूतौ च कोणेषु दद्यात्समस्तंभकान्द्वादशैवेषुहस्तान् १९॥

अन्वयः—मण्डपस्य समत्रित्रिभागेषु उदग्दक्षिणं पूर्वापरं चापि सूत्रं प्रदद्यात् ततस्त्र्यंशपूर्तौ कोणेषु इषुहस्तान् द्वादशैव समस्तंभकान् दद्यात् ॥ १९ ॥

भा० टी०—मण्डपमें समान भागमें उत्तर दक्षिण तथा पूर्व, पश्चिम तीन तीन सूत्र डारना चाहिये पश्चात् जहां तृतीयांशकी पूर्ती होवै तहां उन चारों कोणोंमें पांच २ हस्तके समान वारह स्तंभ (खम्भा) निवेश करना चाहिये यथा वारह हाथके मण्डपमें चार चारका अंतर देकर दो सूत्र उत्तर, दक्षिण, त्योंही दो सूत्र पूर्व पश्चिम लगानेसे मण्डपके ९ भाग हुए तो जहां जहां सूत्रका अग्र भाग मण्डपके छोरमें पडै उनहीं चारों दिशाओंमें स्तंभ निवेश करना चत्वरके नीचे तो आठ स्तंभ होंगे और मण्डपके चारों कोणोंमें चार स्तंभ लगानेसे वारह स्तंभ होंगे इति ॥ १९ ॥

अथ महावेदीके कोणमें स्तंभ निवेशप्रकार शालिनीछंदसे कहते हैं ।

वेद्याः कोणे हस्तिहस्तोच्चवेदस्तंभान्दद्याद्वह्निदिक्तः सचूडान् ॥
प्रादक्षिण्यात्पंचमांशं तु भूमौ दद्यादेवं षोडशस्तंभसंस्था ॥ २० ॥

अन्वयः—वेद्याः कोणे वह्निदिक्तः प्रादक्षिण्यात् सचूडान् हस्तिहस्तोच्चवेदस्तंभान् दद्यात् तु पुनः पंचमांशं भूमौ दद्यात् एवं षोडशस्तंभसंस्था भवति॥२०॥

भा०टी०—महावेदीके चारों कोणमें आठ आठ हस्तके चार स्तंभ सचूडा (शाल सहित) वह्नि विदिशातें दक्षिणावर्त प्रकार स्तंभ लगाना चाहिये और सोरहै स्तंभके पंचमांशको भूमिमें गाडना चाहिये यथा प्रथमही वह्नीकोणमें स्तंभ निवेश करै पश्चात् नैर्ऋत्य कोणमें ततः वायव्यकोणमें ततः ईशानकोणमें और महावेदीके चारों स्तंभमें चूडा वनानेका नियम है और वाहरके वारहों स्तंभमें चूडा अथवा कर्णवाहिरीभागमें तिर्यक् काष्ठ (तिरछा काष्ठकीले) मलगाका आधारभूत लगाया जाता है इस प्रकार मण्डपमें सोरह १६ स्तंभकी स्थिति है यह स्तम्भमान १६ हस्तके मण्डपका है और छोटे बडे मण्डपोंमें त्रैराशिकके अनुमानसे स्तम्भमान हो सकता है इति ॥ २० ॥

अथ स्तंभोपरि काष्ठनिवेशन इन्द्रवज्राछंदसे कहते हैं ।

स्तंभेषु तिर्यग्वलिका निधेयाश्चूडासु कर्णेष्वथ वा बहिस्ताः ॥
पूर्वापरं दक्षिणसौम्यदिक्स्थं कोणेऽतरा काष्ठचयं निदध्यात्॥२१॥

अन्वयः—स्तंभेषु चूडासु तिर्यक् वलिकाः निधेयाः अथवा] कर्णेषु ताः

वलिकाः बहिः निधेयाः कोणे अन्तरा पूर्वापरं दक्षिणसौम्यदिक्स्थं काष्ठचयं निदध्यात् ॥ २१ ॥

भा० टी०–प्रथमही मध्यवेदीके चारों स्तंभमें ऊर्ध्वभागमें छिद्रसहित टेढे चार काष्ठ लगाना चाहिये अर्थात् काष्ठके छिद्रमें स्तंभकी शालप्रवेश करें शाल स्तंभमानसे भिन्न होती है इस प्रकार पूर्व, पश्चिम दो काष्ठ उत्तर दक्षिण दो काष्ठ लगानेसे चार काष्ठ होते हैं, इनहीं काष्ठोंको इस देशमें मलगा कहते हैं, इसीप्रकार बाहर बारहों स्तंभमें चूडामें अथवा कर्णके बाहरी भागमें मलगा लगाना चाहिये पश्चात् मध्यवेदीके स्तंभमें चूडासे एक एक काष्ठ पूर्व, पश्चिम, उत्तर व दक्षिण त्योंही कोण समभागमें लगावै तो येभी द्वादश काष्ठ होते हैं फिर बीचबीचमें जितनेकी योग्यता होवै उतनेही काष्ठ लगाना चाहिये और चारों द्वारोंमें यज्ञकाष्ठकी चौखठ लगाना चाहिये ॥ २१ ॥

अथ स्तंभकाष्ठका निर्णय क्रियासारका वचन दानकमलाकरमें है।

वृक्षः स्याद्यज्ञियो वेणुः क्रमुकः स्तंभकर्मणि ॥
अन्ये विशुद्धवृक्षा वा भवेयुर्नान्यभूरुहाः ॥ २२ ॥

अन्वयः–स्तम्भकर्मणि यज्ञियः वेणुः वृक्षः क्रमुकश्च स्यात् । वा अन्ये विशुद्धवृक्षाः भवेयुः । अन्यभूरुहाः न ॥ २२ ॥

भा० टी०–स्तंभके काष्ठ यज्ञसम्बन्धी ये काष्ठ, पीपर, वट, ऊमरि इत्यादि और वेणु अर्थात् (वंश) क्रमुक (सुपारी) अथवा और जे पवित्र वृक्ष आम्रादिक इनके स्तंभ बनाना चाहिये इसी वचनके अनुसारसे इस देशमें व्रतबंध विवाहादि मण्डपमें वंशके स्तंभ लगाये जाते हैं ॥ २२ ॥

अथ रथोद्धतावृत्तसे मण्डपाच्छान प्रकार कहते हैं।

मध्यभागशिखरं रचयित्वा छादयेदपि कटैर्ऋजुवंशैः ॥
द्वारवर्ज्यमिह मण्डपमेनं स्तंभकानपि सुवस्त्रसमूहैः ॥ २३ ॥

अन्वयः–मध्यभागशिखरं रचयित्वा द्वारवर्ज्यम् एनं मण्डपं कटैः ऋजुवंशैः अपि छादयेत् स्तम्भकानपि सुवस्त्रसमूहैः छादयेत् ॥ २३ ॥

भा०टी०–मण्डपके मध्यभागमें अर्थात् (महावेदीके) ऊपर शिखराकार रचना करि कट (चटाई) व सीधे उत्तम वांशोंसे छावे लोक प्रसिद्ध बंगलाकेसा छवाई करै पश्चात् सोरहों स्तम्भोंको अच्छे वस्त्रोंसे वेष्टित करै इस ग्रन्थमें सुवस्त्रपद

केवल उपलक्षणार्थ है नारिकेल, दर्पण, चमर, शोभा कारक पदार्थोंसेभी सुशोभित करै चांदनी लगावै अगाडीके श्लोकमें कहेंगे ॥ २३ ॥

अथ वसंततिलकावृत्तसे तोरणनिर्माण कहते हैं।

पूर्वादिदिक्षु रचयेदपि तोरणानि न्यग्रोधजंतुफलपिप्पलवृक्षराजैः ॥
अश्वत्थजंतुफलपर्कटिभूरिषड्भिर्वैषामभावत इमान्यथ वैककेन ॥२४

अन्वयः—मण्डपस्य पूर्वादिदिक्षु न्यग्रोधजन्तुफलपिप्पलवृक्षराजैः वा पक्षान्तरे अश्वत्थजन्तुफलपर्कटिभूरिषड्भिः अथवा एषां न्यग्रोधादीनामभावतः एककेन इमानि तोरणानि रचयेत् ॥ २४ ॥

भा० टी०—मण्डपके चारों दिशाओंमें द्वारके सामने वट, ऊमर, पीपर, पाकर इस क्रमसे यथापूर्वमें वट, दक्षिणमें ऊमर, पश्चिममें पीपर, उत्तरमें पाकर काष्ठके तोरण बनावे अथवा पीपर, ऊमर, पाकर, वट, इस क्रमसे पूर्वादिदिशाओंमें तोरणकी रचना करै. मण्डपके बाहर मण्डपद्वारके सन्मुख जो दूसरा द्वार बनाया जाता है उसको तोरण कहते हैं चारों काष्ठ न मिलें तो चारोंमेंसे एकही किसी काष्ठसे चारों तोरणकी रचना करै चारों काष्ठ न मिलें तो शमी, जम्बु, खैर इन तीनोंमेंसे एकका तोरण बनावै, यह संस्कृत तिलकमें है ॥ २४ ॥

अथ तोरणोंका निवेशस्थान व चौडाई लमाई
विपरीताख्यानवृत्तसे कहते हैं ।

हस्ताद्वहिर्मण्डपतः शरांगस्वरैः करैस्तान्यधमादिकेषु ॥
दीर्घाणि च प्राहुरथायतिः स्यात्तेषां द्विहस्ता चरणप्रवृध्या ॥२५॥

अन्वयः—अधमादिकेषु मण्डपेषु मण्डपतः हस्ताद्वहिः शराङ्गस्वरैः करैः दीर्घाणि तानी तोरणानि कुर्यात्, अथ तेषां आयतिः चरणप्रवृध्या द्विहस्ता स्यात् ॥ २५ ॥

भा० टी०—मण्डपसे १ हस्त बाहर द्वारके सन्मुख तोरण निवेश करै तोरणोंकी लंबाई अधम मण्डपमें ५ हस्त मध्यम मण्डपमें ६ हस्त उत्तम मण्डपमें ७ हस्त है तथा चौडाई अधम मण्डपमें २ हस्त मध्यम मण्डपमें २ हस्त ६ अङ्गुल उत्तम मण्डपमें २ हस्त १२ अङ्गुलकी जानों तोरण शाखा काष्ठ १ हस्त भूमिमें गाडना चाहिये ॥ २५ ॥

अथ फलक अर्थात् तोरण स्तंभके ऊपर काष्ठ पट्टलियोंको निवेशन व प्रमाण उपजाति व इंद्रवज्रावृत्तसे कहते हैं।

स्तंभार्द्धमानं फलकं तु तिर्यङ्नवेशविश्वप्रमितांगुलाश्च ॥
तन्मूर्ध्नि कीला स्वतुरीयभागैस्ततस्तु शूलाकृतयश्च ते स्युः ॥२६॥
तद्वेशनं द्वित्रियुगांगुलानि शैवे तु विष्णोर्यजनेऽङ्गुलार्द्धैः ॥
कीलेषु शंखारिगदांबुजांकेष्विष्वंशरोपः किल तोरणेषु ॥ २७ ॥

अन्वयः—तोरणस्तम्भोपरि स्तम्भार्द्धमानं फलकं दद्यात्। तन्मूर्ध्नि नवेशविश्वप्रमिताङ्गुलाः स्वतुरीयभागैः ततः कीलाः निवेश्याः शैवे यागे ते कीलाः शूलाकृतयः स्युः तद्वेशनं अधमादिषु द्वित्रियुगाङ्गुलेन स्यात्। विष्णोर्यजने शंखारिगदाम्बुजांकेषु कीलेषु अंगुलार्द्धैः तोरणेषु इष्वंशरोपः किल प्रसिद्धौ ॥ २६ ॥ २७ ॥

भा० टी०—फलक (बेडा लगाने योग्य काष्ठपट्ट) जहां १० अङ्गुल चौडे तोरणस्तम्भ हैं तहां अर्द्ध ५ अङ्गुल चौडे फलकके दोनों छोरमें छिद्र करि तोरण स्तम्भके ऊर्ध्वाग्रशालमें निवेश करै यथा अधम मण्डपमें ५ हस्तका तोरणस्तम्भ है तिसमें अढाई हस्त फलक योजित करै मध्यम मण्डपमें ६ हस्तका तोरणस्तम्भ है. तिसमें तीनि हस्तका फलक योजित करै उत्तम मण्डपमें ७ हस्तका तोरण स्तम्भ है तिस्मै ३॥ हस्तका फलक निवेश करै उन फलकोंके शिरोभागमें जिस काष्ठका तोरण होवै उसी काष्ठके अधमादि मण्डप क्रमसे ९ । ११ । १३ । अङ्गुलके कील अर्थात् काष्ठखंड निवेश करै अधम मण्डपमें ९ अङ्गुलका लंबा २। अङ्गुलका चौडा कील गाडै मध्यम मण्डपमें ११ अङ्गुलका लम्बा २॥ अङ्गुल चौडा उत्तममें १३ अङ्गुल लम्बा ३। अङ्गुल चौडा कील गाडै शैवयागमें उन कीलोंको त्रिशूलके आकार बनाना चाहिये अथ विष्णुयागमें विशेष अधम मण्डपमें १० अङ्गुलका लम्बा २॥ अङ्गुलका चौडा मध्यममें १२ अङ्गुल लम्बा ३ अङ्गुल चौडा उत्तममें १४ अङ्गुल लम्बा ३॥ अङ्गुल चौडा कील बनाया जाता है. उक्त तोरणोंमें फलकमें निवेशके लिये नीचे अग्रभागमें शाल व फलकके मध्यभागमें छिद्र बनाना चाहिये अधमादि क्रमसे २ । ३ । ४ । अङ्गुल कील फलकमें गाडना चाहिये यथा अधममें २ अङ्गुल मध्यममें ३ अङ्गुल उत्तममें ४ अङ्गुल तोरण स्तम्भोंको पंचमांश भूमिमें गाडना चाहिये ॥ २६ ॥ २७ ॥

अथ मण्डपवर्णन व्याजसे मण्डपकी शोभा करनेवाले चामरादि पदार्थ व आशीर्वाद शार्दूलविक्रीडित वृत्तसे कहते हैं ।

उद्यत्पत्रफलातिनम्रविलसद्रंभाभिरालिंगितस्तंभोनेकदलै रसा-
लविटपैः सर्वत्र संवेष्टितः॥ राजच्चामरसंप्रवृद्धमुकुरोदंचद्वितानान्-
न्वितो युक्तः पुष्पफलैः फलाय भवतां भूयान्महामण्डपः ॥ २८ ॥

अन्वयः—महामण्डपः भवतां फलाय भूयात् । कीदृशः मण्डपः उद्यत्पत्रफलातिनम्रविलसद्रंभाभिः आलिङ्गितस्तम्भः पुनः कीदृक् अनेकदलैः रसालविटपैः सर्वत्र सम्वेष्टितः पुनः कीदृक् राजच्चामरसम्प्रवृद्धमुकुरोदञ्चद्वितानान्वितः पुनः कीदृक् पुष्पफलैः युक्तः ॥ २८ ॥

भा०टी०—इस प्रकारका महामण्डप तुम लोग यजमानोंको अभीष्ट फल देनेवाला होवे कैसा मण्डप है पत्रफलके समृद्धिसे अतिशय नम्र अत एव सुशोभित कदली-वृक्षोंसे युक्त है स्वम्भ जिसके पुनः आम्रपल्लवोंके मालासे चारों दिशाओंमें वेष्टित है लोकमें वंदनवार प्रसिद्ध है पुनः चमर दर्पण चांदनी नाना प्रकारके फल फूलोंसे सुशोभित है. अनुक्तपदार्थ लगानेसे टेढा कमती बढती होनेसे कर्ताका नाश होता है. इसप्रकारके मंडपके अभावमें अर्थात् कोई लाचारीसे उक्त लक्षण मण्डप न बन सके तो छायामात्र अवश्य बनाना चाहिये यथा लिङ्गपुराणवचन " मण्डपं कूटमेव वा " अर्थ—मण्डप अर्थात् उक्तलक्षण शुद्ध मण्डप कूट अर्थात् उक्त लक्षण हीन मण्डप यह दान कमलाकरमें लिखा है ॥ २८ ॥

अथ विपरीताख्यानकी वृत्तसे ध्वजा लगानेका प्रकार ।

ध्वजान्द्विहस्तायतिकांश्च पंचहस्तान्सुपीतारुणकृष्णनीलान् ॥
श्वेतासितश्वेतसितान्दिगीशवाहान्वहेदिक्करवंशशीर्षे ॥ २९ ॥

अन्वयः—द्विहस्तायतिकान् पञ्चहस्तान् सुपीतारुणकृष्णनीलान् श्वेतासितश्वेतसितान् दिगीशवाहान् ध्वजान् दिक्करवंशशीर्षे वहेत् ॥ २९ ॥

भा० टी०—आठों ध्वजाओंका निवेशन पूर्वदिशा क्रमसे जानना चाहिये यथा आठों ध्वजा दो २ हस्तकी चौडी पांच २ हस्तकी लम्बी होना चाहिये तिसमें पूर्वमें पीतवर्ण हस्ती चित्र सहित इन्द्रध्वज १ अग्निकोणमें लालवर्ण छाग (बोकरा)-

के चित्रयुक्त वह्निध्वज २ दक्षिणमें कृष्णवर्ण महिष (भैंसा) के चित्रयुक्त यमकी ध्वज ३ नैर्ऋत्यकोणमें नीलवर्ण सिंह चित्रयुक्त राक्षस ४ पश्चिममें शुक्लवर्ण मीन-(मछरी) के चित्रयुक्त वरुण ध्वज ५ वायुकोणमें हरितवर्ण मृग चित्रयुक्त वायुध्वज ६ उत्तरमें शुक्लवर्ण अश्व (घोडा) चित्रयुक्त कुबेरकी ध्वज ७ ईशान-कोणमें शुक्लवर्ण वृष (बैल) के चित्रयुक्त शिवकी ध्वज ८ आठों ध्वजाओंके वंश दशहस्तके लगाने चाहिये दो २ हस्त अर्थात् पञ्चमांश भूमिमें गाडना उचित है ध्वजा नहीं लगानेसे सर्व कार्य हवनादि निष्फल होते हैं ध्वजा चतुःकोणमें होते हैं ॥ २९ ॥

अथ पताका महाध्वज नवमी कुण्डपताका इनके निवेशनका प्रकार इन्द्रवज्रा व अनुष्टुप् वृत्तद्वयसे कहते हैं।

लोकेशवर्णास्त्रयुताः पताकाः शैलेन्दुदैर्घ्यायतिकाश्च मध्ये ॥
चित्रं ध्वजं दिक्करदैर्घ्यवंशत्रिदोस्ततं प्रांतगकिंकिणीकम् ॥ ३० ॥
श्वेतां च नवमीं पूर्वेशानयोर्मध्यतो बुधः ॥
विन्यसेत्तु पताकांश्च ध्वजांस्तानपि पूर्वतः ॥ ३१ ॥

अन्वयः—शैलेन्दुदैर्घ्यायतिकाः लोकेशवर्णास्त्रयुताः पताकाः निवेशयेत् दिक्करदैर्घ्यवंशत्रिदोस्ततं प्रांतगकिंकिणीकम् एवंभूतं चित्रध्वजं मध्ये निवेशयेत् श्वेतां नवमीं पताकां पूर्वेशानयोर्मध्ये निवेशयेत् तान् ध्वजांश्च पूर्वतः निवेशयेत् ॥ ३० ॥ ३१ ॥

भा०टी०—आठों पताका ७ हस्त लम्बी १ हस्त चौडी त्रिकोणाकार पीत आदि उक्त इन्द्रादि लोकपालोंके वर्ण वा वज्रादि आयुध युक्त दशहस्त वंशमें लगाकर पूर्वादिक्रमसे निवेश करै इन्द्रका आयुध वज्र १ वह्निके शक्ति २ यमका दंड ३ राक्षसका खड्ग ४ वरुणका पाश ५ वायुका अंकुश ६ कुबेरकी गदा ७ शिवका त्रिशूल ८ शुक्लादिवर्ण २९ के श्लोकमें उक्त जानना। मध्यमें १० हस्त वंशयुक्त ७ हस्त लम्बा ३ हस्त चौडा व छोरेंमे किंकिणी (घुनघुनियां) व शिरोभागमें चामर युक्त चित्र वर्ण लगाना चाहिये इन पताकाओंकोभी ध्वजसहित पंचमांश भूमिमें गाडना शुक्लवर्ण नवमी पताका पूर्व व ईशानकोणके मध्यमें लगाना इस प्रकार योजनासे ध्वजा ९ पताका ९ कुल १८ होते हैं ध्वजों पताकाओंको चन्दन पुष्पसे पूजित करना चाहिये ॥ ३० ॥ ३१ ॥

अथ प्राच्यादि क्रमसे नवकुण्डनिवेशप्रकार विपरीताख्यानकी
वृत्तसे कहते हैं ।

प्राच्याश्चतुष्कोणभगेन्दुखण्डत्रिकोणवृत्तांगभुजांबुजानि ॥
अष्टास्त्रि शक्रेश्वरयोस्तु मध्ये वेदास्त्रि वा वृत्तमुशंति कुण्डम् ॥३२॥

अन्वयः—प्राच्याः चतुःकोणभगेन्दुखंडत्रिकोणवृत्ताङ्गभुजाम्बुजानि कुण्डानि अष्टास्त्रि कुण्डं शक्रेश्वरयोः मध्ये वेदास्त्रि वा वृत्तं कुण्डं उशंति ॥ ३२ ॥

भा० टी०—पूर्वमें चतुःकोण १ अग्निकोणमें योन्याकार २ दक्षिणमें अर्द्धचन्द्र ३ नैर्ऋत्यमें त्रिकोण ४ पश्चिममें वृत्त (गोल) ५ वायुकोणमें षट्कोण ६ उत्तरमें अष्टदल पद्माकार ७ ईशानकोणमें अष्टकोण ८ तथा पूर्व ईशानके मध्यमें नवम आचार्यकुण्ड वृत्त अथवा चतुरस्र इस प्रकार नव कुण्डकी रचना करनी चाहिये इसीको नवकुण्डी कहते हैं आठ कुण्ड आठ दिक्पालोंके एक कुण्ड आचार्यका कुल ९ इति ॥ ३२ ॥

अथ पंचकुण्डी तथा एक कुंडनिवेशन इन्द्रवज्रावृत्तसे कहते हैं ।

अशेषकुण्डैरिह पंचकुण्डी चैकं यदा पश्चिमसोमशैवे ॥
वेद्याः सपादेन करेण यद्वा पादांतरेणाखिलकुंडसंस्था ॥ ३३ ॥

अन्वयः—इह मण्डपे अशेषकुण्डैः पञ्चकुण्डी कर्तव्येति शेषः । यदा एकं कुण्डं कर्तव्यं तदा पश्चिमसोमशैवे कर्तव्यम् । वेद्याः सकाशात् सपादेन करेण यद्वा पादान्तरेण अखिलकुण्डसंस्था भवति इति ॥ ३३ ॥

भा० टी०—पञ्चकुण्डीपक्षमें पूर्वमें चतुःकोण १ दक्षिणमें वृत्त २ पश्चिममें अर्द्धचंद्र ३ उत्तरमें पद्मकुण्ड ४ ईशानमें चतुष्कोण ५ अथवा वृत्त इस प्रकार पञ्च कुण्डोंके निवेशन हैं । यदि एकही कुण्ड कर्तव्य है तो पश्चिम या उत्तर या ईशान दिशामें केवल चतुष्कोण बनाना चाहिये और कुण्डोंकी स्थिति यथा महावेदीसे ३० अंगुल देकर है, अथवा वेदीके चतुर्थांश अंतर देकर यथा १२ हस्तके मण्डपमें ४ हस्तकी वेदी मध्य त्रिभागमें है तहां चतुर्थांश १ हस्तका अंतर वेदी और कुण्डका होना चाहिये इसी प्रकार अन्य दश हस्तादि मण्डपोंमें त्रैराशिक गणितके अनुपातसे वेदी आदिके मानसाधन करना सो पीछे लिखेंगे नवकुण्डी पक्ष उत्तम १ पञ्चकुण्डी पक्ष मध्यम २ एक कुण्ड पक्ष अधम है इति ॥ ३३ ॥

अथ विप्रादिवर्ण क्रमसे तथा स्त्रियोंको कुण्डविशेष कथन शालिनीवृत्तसे कहते हैं ।

विप्राच्छ्रुत्यस्रं च वृत्तं च वृत्तार्धं त्र्यस्रि स्याद्वेदकोणानि वापि ॥
सर्वाण्याहुर्वृत्तरूपाणि चान्ये योन्याकाराण्यंगनानां तु तानि ॥३४॥

अन्वयः—विप्रात् आरभ्य श्रुत्यस्रं १ वृत्तम् २ वृत्तार्द्धम् ३ त्र्यस्रि ४ वा पक्षान्तरे सर्वाणि वेदकोणानि अन्ये आचार्याः सर्वाणि वृत्तरूपाणि च आहुः तानि कुण्डानि अङ्गनानां योन्याकाराणि भवन्ति इति ॥ ३४ ॥

भा०टी०—ब्राह्मणको चतुष्कोण १ क्षत्रियको वृत्त २ वैश्यको अर्द्धचन्द्र ३ शूद्रको त्रिकोण ४ अथवा चारों वर्णको चतुष्कोण कुण्ड करना । कोई आचार्य कहते हैं कि वृत्त कुण्ड सर्ववर्णको योग्य है स्त्री यजमान होवे तो योनिकुण्ड बनाना चाहिये इति ॥ ३४ ॥

अथ पूर्वादि कुण्डोंका फल विशेष अनुष्टुप् वृत्तसे कहते हैं ।

सिद्धिः पुत्राः शुभं शत्रुनाशः शांतिर्मृतिच्छिदे ॥
वृष्टिरारोग्यमुक्तं हि फलं प्राच्यादिकुण्डके ॥ ३५ ॥

अन्वयः—हि निश्चये प्राच्यादिकुण्डके सिद्धिः १ पुत्राः २ शुभम् ३ शत्रुनाशः ४ शान्तिः ५ मृतिच्छिदे ६ वृष्टिः ७ आरोग्यम् ८ इति फलम् उक्तम् ॥ ३५ ॥

भा० टी०—मृति (मारण) छिदा (विद्वेष) और सिद्धि आदियोंका अर्थ स्पष्ट है पूर्वकुण्डमें सिद्धि १ अग्निकोणके कुण्डमें पुत्रोत्पत्ति २ इसी क्रमसे आठों दिशाओंके कुण्डोंका फल जानना कामिक कार्यमें जिस फलकी अपेक्षा होवे उसी दिशामें कुण्डकी रचना करना औरभी फल वश्यादि प्रयोग भेदसे शारदातिलकमें लिखे हैं इति ॥ ३५ ॥

अथ होमसंख्यानुसार कुण्डमान शिखरिणीवृत्तसे कहते हैं ।

शतार्द्धे रत्निः स्याच्छतपरमिते रत्निविततं
सहस्रे हस्तं स्यादयुतहवने हस्तयुगलम् ॥
चतुर्हस्तं लक्ष्ये प्रयुतहवने षट्करमिभैः
ककुब्भिर्वा कोटौ नृपकरमपि प्राहुरपरे ॥ ३६ ॥

अन्वयः—शतार्द्धे ५० हवने रत्निः कुण्डं स्यात् । शतपरिमिते हवने अरत्निविततम् सहस्रहवने हस्तम् । अयुतहवने हस्तयुगलम् । लक्षे हवने चतुर्हस्तं कुण्डम् । प्रयुतहवने षट्करम् । कोटिहवने इभैः ककुभिर्वा करैः मितम् । अपरे आचार्याः नृपकरमपि प्राहुः इति ॥ ३६ ॥

भा० टी०-पचास ५० होम करना हो तो रत्नि (२१ अङ्गुल) का कुण्ड बनावे शत १०० हवनमें अरत्नि (२२॥ अङ्गुलका) सहस्र १००० होममें १ हस्तका दशसहस्र १०००० होममें २ हस्तका लक्ष १००००० होममें ४ हस्तका दशलक्ष १०००००० होममें ६ हस्तका कोटि १०००००००० होममें ८ हस्तका अथवा १० हस्तका कोई आचार्य कहते हैं कि १६ हस्तका कुण्ड बनाना चाहिये ये तीनि पक्ष सूक्ष्म मध्य स्थूल हविर्द्रव्यके भेदसे जानना। यथा सूक्ष्म घृत तिलादि । मध्य तिल जव द्राक्षादि स्थूल बिल्व नारिकेलादि इति ॥ ३६ ॥

अथ अन्य आचार्योंके मतसे कुण्डमान उपजातिवृत्तसे कहते हैं ।

लक्षैकवृद्धचा दशलक्षकांतं करैकवृद्धचा दशहस्तकं च ॥
कोटचर्धदिग्विंशतिलक्षलक्षदले मुनीष्वर्तुकृशानुहस्तम् ॥ ३७ ॥

अन्वयः—लक्षैकवृद्धचा दशलक्षकान्तम् करैकवृद्धचा दशहस्तकं च कुण्डं कार्यमिति शेषः । च पुनः कोट्यर्द्धदिग्विंशतिलक्षलक्षदले मुनीष्वर्तुकृशानुहस्तं कुण्डं कार्यमिति ॥ ३७ ॥

भा० टी०—एक लक्ष हवन करना हो तो एक हस्तका कुण्ड, दो लक्ष हवनमें २ हस्तका कुण्ड इसी प्रकार दश लक्ष तक दशहस्त पर्यंत योजना करना, लक्ष व हस्तकी वृद्धि समान है यह एक मत, त्यौंही ५० लक्ष होममें ७ हस्तका १० लक्ष हवनमें ५ हस्तका २० लक्ष हवनमें ६ हस्तका ५० हजार हवनमें ३ हस्तका कुण्ड बनाना इति ॥ ३७ ॥

अथ एक हस्तसे दशहस्तपर्यंत कुण्डोंका भुजमान-
कथन शार्दूलविक्रीडित वृत्तसे कहते हैं ।

वेदाक्षीणि युगाग्नयः शशियुगान्यष्टाब्धयस्त्रीषवोऽ-
ष्टाक्षा वह्निरसा रसांगकमिता नेत्रर्षयोऽक्षस्वराः ॥
अङ्गुल्योऽथ यवाः खमभ्रमिषवः खं पंच षट् सागराः
सप्ताभ्रं मुनयस्त्वमी निगदिता वेदास्रके बाहवः ॥ ३८ ॥

अन्वयः—वेदाक्षीणि २४ युगाग्नयः ३४ शशियुगानि ४१ अष्टाब्धयः ४८ त्रीषवः ५३ अष्टाक्षाः ५८ वह्निरसाः ६३ रसाङ्कमिताः ६६ नेत्रर्षयः ७५ अक्षस्वराः ७७ अङ्गुल्यः । अथ यवाः खम् ० अभ्रम् ० इषवः ५ खम् ० पञ्च ५ षट् ६ सागराः ४ सप्त ७ अभ्रम् ० मुनयः ७ अमी बाहवः वेदात्मके कुण्डे निगदिताः इति ॥ ३८ ॥

भा० टी०—यथा एक हस्तके कुण्डमें २४ अंगुल यवाका भुज है, २ हस्तके कुण्डमें ३४ अङ्गुल यवाका, ३ हस्तके कुण्डमें ४ अंगुल ५ यवाका, ४ हस्तके कुण्डमें ४८ अंगुल यवाका, इसी प्रकार दश हस्त कुण्डपर्यंत लिखे क्रमसे योजना करना यह भुजा चतुर्भुज कुण्डकी है ॥ ३८ ॥

अथ कुण्डमें योनियोजनाप्रकार इंद्रवज्रावृत्तसे कहते हैं ।

कुण्डत्रयी दक्षिणयोनिरैन्द्र्याः सौम्याग्रका स्यादितराणि पंच ॥
पश्चाद्गगानीन्द्रदिगग्रकाणि योनिर्न कोणे न च योनिकुण्डे ॥ ३९॥

अन्वयः—ऐन्द्र्याः कुण्डत्रयी दक्षिणयोनिः सौम्याग्रका स्यात् इतराणि पञ्च कुण्डानि पश्चाद्गगानि इन्द्रदिगग्रकाणि भवन्ति कोणे योनिकुण्डे च योनिर्नास्ति इति ॥ ३९ ॥

भा० टी०—पूर्वदिशाके क्रमसे ये तीनि कुण्ड होते हैं यथा पूर्वमें चतुरस्र १ अग्निकोणमें योनि २ दक्षिणमें अर्द्धचन्द्र ३ इन कुण्डोंमें दक्षिणभागमें योनि लगती है उत्तर तरफ योनिका अग्रभाग होता है अर्थात् होता उत्तरमुख बैठता है. और नैर्ऋत्यादि दिशाओंमें उक्त क्रमसे त्रिकोण १ वृत्त २ षट्कोण ३ पद्म ४ अष्टकोण ५ ये ५ कुण्ड हैं. इनमें पश्चिमदिग्भागमें योनि लगती है और उसका अग्रभाग पूर्वतरफ रहता है. नवम कुण्ड जो पूर्व ईशानके मध्यमें है उसकी योनिभी पश्चिम भागमें लगती है. इन छवों कुण्डका होता पूर्वाभिमुख बैठता है विशेष यह है कि कुण्डके कोणमें व योनिकुण्डमें योनि नहीं लगती त्योंही पद्मकुण्डमें नाभि नहीं होती ॥ ३९ ॥

अथ सर्वकुण्डोंका प्रकृतिभूत चतुष्कोणसाधन शालिनीवृत्तसे कहते हैं ।

द्विघ्नव्यासं तुर्यचिह्नं सपाशं सूत्रं शंकौ पश्चिमे पूर्वगेऽपि ॥
दत्त्वा कर्षेत्कोणयोः पाशतुर्ये स्यादेवं वा वेदकोणं समानम् ॥ ४० ॥

अन्वयः-द्विघ्नव्यासं तुर्यचिह्नं सपाशं सूत्रं पश्चिमे शङ्कौ पूर्वगेऽपि शङ्कौ दत्त्वा कोणयोः पाशतुर्यं कर्षेत् एवं वेदकोणं समानं भवति वा पादपूरणे ॥ ४० ॥

भा० टी०-प्रथमही ध्रुवमत्स्य प्राचीसाधनयंत्र (या कुतुबनामासे) पूर्व पश्चिम दिक् शुद्ध करके पश्चात् पूर्व पश्चिम दिशाके अन्तमें जितना अभीष्ट हो उतनेही दोनों दिशाओंमें दो कील निवेश करै पश्चात् जितना क्षेत्र अभीष्ट होवै अर्थात् जो २४ अङ्गुलका क्षेत्र अभीष्ट होवै तो ४८ अङ्गुलका सूत्र लेकर चतुर्थांश (बारा १२) अङ्गुलमें चिह्न करि सूत्रके दोनों कीलमें बांधे पश्चात् सूत्रके दोनों चतुर्थांशके चिह्न पकड़कर कोणोंके तरफ खींचनेसे चारों कोण शुद्ध होते हैं इस प्रकार समान चतुरस्र क्षेत्र शुद्ध होता है क्षेत्र शुद्धिके अनन्तर कुण्ड खनन करै इसमें क्षेत्रफल निकालनेका सूत्र यथा-" समश्रुतौ तुल्यचतुर्भुजे च तथायते तद्भुजकोटिघातः ॥ " समान कर्ण व समान चतुर्भुज तथा समान विस्तृत क्षेत्रमें भुजकोटिके अंकोंको परस्पर गुणनेसे जो अङ्क आता है वही क्षेत्रफल होता है यथा १ हस्तके कुण्डमें २४ । २४ अङ्गुलके चारों भुज हैं दो भुज दो कोटिके कहे जाते हैं तो २४ कोटि २४ भुज परस्पर गुणनेसे ५७६ होते हैं तेई ५७६ अङ्गुल क्षेत्रफल हुआ अर्थात् २४ अङ्गुलके क्षेत्रमें एक २ अङ्गुलके लम्बे चौड़े ५७६ अङ्गुल उस क्षेत्रके भीतर हैं इसी प्रकार अन्यत्रभी जानना ॥ ४० ॥

अथ योनिकुण्ड इन्द्रवज्रावृत्तसे कहते हैं।

क्षेत्रे जिनांशे पुरतः शरांशान्संवर्ध्य च स्वीयरदांशयुक्तान् ॥
कर्णाङ्घ्रिमानेन लिखेन्दुखण्डे प्रत्यक्पुरोऽङ्काद्गुणतो भगाभम् ॥ ४१ ॥

अन्वयः-हे शिष्य, जिनांशे क्षेत्रे स्वीयरदांशयुक्तान् शरांशान् पुरतः संवर्ध्य कर्णाङ्घ्रिमानेन प्रत्यक् पुरोऽङ्कात् इन्दुखण्डे लिख ततः गुणतः भगाभं कुण्डं भवतीति शेषः ॥ ४१ ॥

भा०टी०-पूर्ववत् चतुःकोण क्षेत्र निर्माण करके उस क्षेत्रके २४ चौबीस भाग करना अर्थात् १ । १ अङ्गुलके पुनः पांच अंशका अर्थात् पांच ५ अङ्गुल जो बत्ती-सवां ३२ अंश यव १ यूका २ इससे संयुक्त किया पंच अङ्गुलको तो ५ अङ्गुल यव १ यूका २ भये इतनाही उस रेखाको अर्थात् तेरहवीं १३ रेखाको बढावै पुनः क्षेत्रको चतुर्धा विभाग करे तब ४ चतुरस्र होंगे तिनमें पश्चिम जो दो चतुरस्र हैं तिनके मध्य चिह्नमें कर्कट लगाके कर्णसूत्रके चतुर्थांश मान सम विस्तारयुक्त कर्कटसे २ दो अर्द्धचन्द्र लिखै पश्चात् पूर्व बढाई गई जो उस चिह्नसे दोनों अर्द्धच-

न्द्रके उत्तर दक्षिणके अग्रभागतक सूत्र डारनेसे और मध्यरेखा और बाहरेखा- ओंको मेटनेसे योनिकुण्ड सिद्ध होता है इसके क्षेत्रफलमें ४ यूका ५ लिक्षा अधिक अधिक होते हैं परंतु थोडा अन्तर है ध्वजायसिद्धिभी होती है इससे दोष नहीं है यथा वचनम्–" स्थापने सर्वकुण्डानां ध्वजायः सर्वसिद्धिदः ॥ शतांशो वाधिकं हीनं हामवृद्धी न दूषयेत् ॥ आयदोषविशुद्धयर्थं क्रियते शास्त्रकोविदैः ॥ " स्पष्टा- र्थः–यह क्षेत्र उत्तराग्र है तिससे उत्तर दिशाको पूर्व दिशावत् समझना ऐसीही व्यवस्था और क्षेत्रोंकाभी समुझना सीधी रेखाको भुज व कोटि कहते हैं टेढी रेखाको कर्ण कहते हैं ॥ ४१ ॥ चित्र नंबर १. २.

अथ अर्द्धचन्द्र अथवा वृत्तार्द्ध वसन्ततिलकावृत्तसे कहते हैं ।

स्वशतांशयुतेषु भागहीनस्वधरित्रीमितकर्कटेन मध्यात् ॥
कृतवृत्तदलेऽग्रतश्च जीवां विदधात्विंदुदलस्य साधु सिद्ध्यै ॥४२॥

अन्वयः–हे शिष्य भवानिति शेषः इन्दुदलस्य अर्द्धचन्द्रकुण्डस्य साधु- सिद्ध्यै मध्यात् स्वशतांशयुतेषु भागहीनस्वधरित्रीमितकर्कटेन कृतवृत्तदले सति अग्रतः जीवां ज्यां विदधातु इति ॥ ४२ ॥

भा०टी०–अपने शतांशसे युक्त जो चतुरस्र क्षेत्रका पञ्चांश तिससे हीन जो क्षेत्र भूका मान उतनेही विस्तारके कर्कट (परकाल) क्षेत्रके मध्यभागमें लगा कर अर्द्धचन्द्र बनाके पश्चात् अर्द्धचन्द्रके अग्रभागमेंसे रेखा करे तो अर्द्धचन्द्रकुण्ड समीचीन होगा। उदाहण–चौबीस २४ अङ्गुलके क्षेत्रका पंचमांश ४ अङ्गुल ६ यवा ३ यूका १ लिक्षा ५ वालाग्र इसका शतांश ० अङ्गुल ० यवा ३ यूका ० लिक्षा ४ वालाग्र शतांश पंचमांश दोनोंका योग अङ्गुल ४ यवा ६ यूका ६ लिक्षा २ वालाग्र १ इसका क्षेत्र भूमान २४ अङ्गुलमें घटानेसे शेष बचे अङ्गुल १९ यवा १ यूका १ लिक्षा ५ वालाग्र ७ इतने विस्तारके कर्कट (परकालसे) अर्द्ध- चन्द्र बनाना चाहिये ॥ ४२ ॥ चि. नं. ३.

अथ त्रिकोण कुण्ड ४ वृत्तकुण्ड ५ शार्दूलविक्रीडित छन्दसे कहते हैं ।

व ्र्यंशं पुरतो निधाय च पुनः श्रोण्योश्चतुर्थांशकं
चिह्नेषु त्रिषु सूत्रदानत इदं स्यात्र्यस्त्रिकष्टोज्झितम् ॥
विश्वां१३ शैः स्वजिनांशकेन सहितैः क्षेत्रे जिनांशे कृते
व्यासार्धेन मितेन मण्डलमिदं स्याद्वृत्तसंज्ञं शुभम् ॥ ४३ ॥

अन्वयः—चतुरस्रक्षेत्रस्य वह्न्यंशं पुरतः निधाय पुनः श्रोण्योः क्षेत्रस्य चतुर्थांशकं निधाय पुनः त्रिषु चिह्नेषु सूत्रदानात् कष्टेज्झितं त्र्यस्रिकुण्डं स्यात् क्षेत्रे जिनांशे कृते सति स्वजिनांशकेन सहितैः क्षेत्रस्य विश्वांशैः व्यासार्धेन मितेन कर्कटेन मण्डलम् इदं शुभं वृत्ति वृत्तसंज्ञं कुण्डं स्यात् ॥ ४३ ॥

भा०टी०—चतुर्विंशति भाग किया तो चतुरस्र क्षेत्र उसकी तेरहमी रेखा क्षेत्रके तृतीय भागके तुल्य यथा २४ अंगुलके क्षेत्रमें तृतीयांश ८ अंगुल पूर्वको वढावे पुनः उत्तर, दक्षिण, विस्तृत प्रथमरेखाको उत्तर, दक्षिण दोनों छोर उक्त क्षेत्रका चतुर्थांश (६ अंगुल) वढावै पश्चात् तीनों कोणोंसे सूत्र डालनेसे सुलभ प्रकार त्रिकोणकुण्ड सिद्ध होता है ॥ यथा त्रिकोणाकार उदाहरण. चि. नं. ४. अथ वर्तुल अथवा वृत्त अथवा गोलकुण्ड यथा—प्रथमही क्षेत्रको २४ भाग करै अपने चौविसौं भागसे सहित जो क्षेत्रका तेरह भाग अर्थात् १३ अङ्गुल याने २४ अङ्गुलके क्षेत्रमें १३ अंगुल इसका चौवीसौ भाग अंगुल ० यवा ४ यूका २ लिक्षा ५ वालाग्र ३ अर्थात् १३ अंगुल ४ यवा २ यूका ५ लिक्षा इतनेका व्यासार्द्ध कल्पना करके इतनेही विस्तारके कर्कटसे क्षेत्रके मध्यभागसे मण्डल करनेसे उत्तम वृत्तकुण्ड होता है ॥ ४३ ॥ चि. नं. ५.

अथ षट्कोण कुण्ड स्रग्धराछन्दसे कहते हैं ।

भक्ते क्षेत्रे जिनांशैर्धृतिमितलवकैः स्वाक्षिशैलांशयुक्तै-
र्व्यासार्द्धान्मण्डले तन्मितधृतगुणके कर्कटे वेन्दुदिक्तः ॥
षट्चिह्नेषु प्रदद्याद्रसमितगुणकानेकमेकं तु हित्वा
नाशे संध्यर्तुदोषामपि च वृतिकृतेर्नैत्ररम्यं षडस्रम् ॥ ४४ ॥

अन्वयः—क्षेत्रे जिनांशैः भक्ते क्षेत्रेण स्वाक्षिशैलांशयुक्तैः धृति १८ मित-लवकः तावता व्यासार्द्धेन मण्डले कृते सति तन्मितधृतगुणके वा कर्कटे इन्दु-दिक्तः परिवर्तनेन षट्चिह्नेषु एकमेकं हित्वा षट् सूत्राणि प्रदद्यात् ततः सन्ध्य-र्तुदोषां नाशे अपि च वृतिकृतेर्नाशे नेत्ररम्यं षडस्रं भवति ॥ ४४ ॥

भा० टी०—पूर्ववत् क्षेत्रको २४ भाग करके अपने बहत्तरौ भागसे युक्त जो क्षेत्रके १८ भाग यथा २४ अंगुलके क्षेत्रमें १८ अंगुल २ यवा होते हैं इतनेही मानका व्यासार्द्ध कल्पना करके व्यासार्द्धप्रमाण कर्कट अथवा सूत्रसे मण्डल करै पश्चात् उत्तरदिशासे ६ सूत्र डारै छः चिह्नोंके वीच २ एक २ चिह्न छोडके ततः संधिके ६ भुज मेटनेसे तथा मण्डल मेटनेसे मनोहर कोण होता है ॥ ४४ ॥ चि. नं. ६-७.

अथ द्वितीयप्रकारसे षट्कोणकुण्डको वसन्ततिलकावृत्तसे कहते हैं ।

अथवा जिनभक्तकुंडमानात्तिथिभागैः स्वखभूपभागहीनैः ॥
मितकर्कटकोद्भवे तु वृत्ते विधुदिक्तः समषट्भुजैः षडस्त्रम् ॥ ४५ ॥

अन्वयः—अथवा जिनभक्तकुण्डमानात् स्वखभूप १६० भागहीनैः तिथि १५ भागैः मितकर्कटकोद्भवे वृत्ते विधुदिक्तः समषट्भुजैः षडस्रं भवतीति शेषः तु निश्चये ॥ ४५ ॥

भा० टी०—अथवा प्रकारान्तरेण पूर्ववत् २४ जो कुण्डक्षेत्रका मान उसके जो १५ भाग यथा २४ अंगुलके क्षेत्रमें १५ अंगुल इनको अपने १६० एक सौ साठौं भाग अर्थात् ६ यूकासे हीन किया तौ १४ अंगुल ७ यवा २ यूका शेष बचे इतनेही प्रमाणके कर्कट या सूत्रसे मण्डल करके उत्तर दिशासे भुजरूप ६ बनानेसे षट्कोण सिद्ध होगा ॥ ४५ ॥ द्वितीय षट्कोणोदाहरण. चि. नं. ८.

अथ पद्मकुण्ड शार्दूलविक्रीडित वृत्तसे कहते हैं ।

अष्टांशाच्च यतश्च वृत्तशरके यत्रादिमं कर्णिका-
युग्मे षोडशकेसराणि चरमे स्वाष्टत्रिभागोनिते ॥
भक्ते षोडशधा शरांतरधृते स्युः कर्कटेऽष्टौ छदाः
सर्वांस्तान्खन कर्णिकां त्यज निजायामोच्चकां स्यात्कजम् ॥ ४६ ॥

अन्वयः—हे शिष्य, क्षेत्रस्य अष्टमांशात् च यतः वृद्धेः वृत्तशरके कृते यत्र आदिमं वृत्तं कर्णिकायुग्मे वृत्ते षोडश १६ केसराणि चरमे पञ्चमे स्वाष्टत्रिभागोनिते षोडशधा शरान्तरधृते कर्कटे अष्टौ छदाः पत्राणि स्युः सर्वान् तान् केसरादीन् छदान् खन निजायामोच्चकां कर्णिकां त्यज एवं कृते पद्मकुण्डं स्यात् ॥ ४६ ॥

भा०टी०—पूर्ववत् २४ भाग किया जो क्षेत्र उसका जो अष्टमांश अर्थात् २४ अंगुलके क्षेत्रमें ३ अंगुल तो ३ अंगुल विस्तारका प्रथम वृत्त पुनः कर्णिका (वोंदा) रूप है पुनः वृत्तको तीनि अंगुल छोडके दूसरा वृत्त षोडश १६ केसररूप है पुनः तीनि ३ अंगुल छोडके ३ वृत्त और बनाना ऐसे ५ वृत्त हुए पश्चात् ३ अंगुलको अपने ३८ अर्तिसौ भाग यूका ५ वालाग्र १ से हीन किया तो अंगुल २ यवा ७ यूका ५ लिक्षा ० वालाग्र १ शेष बचा ३ इस मानके कर्कटसे पश्चिम

वृत्तमें सोरह चिह्न करना यथा पूर्वादि दिशाके ४ आग्नेयादि कोणके ४ इनके बीच२ आठ ८ पुनः पांच ५। २ चिह्नको अन्तर देके कर्कट फेरनेसे आठ ८ पत्र होंगे पश्चात् केसर वृत्त दूसरा व तृतीय चतुर्थ वृत्त खनो ३ अंगुल ऊँची तीनि अंगुल विस्तारकी कर्णिका मात्र न खनो इस प्रकार अष्टदलपद्म कुण्ड होगा ॥ ४६ ॥

पद्मकुण्डोदाहरण। चि. नं. ९.

अथ अष्टकोण कुण्ड उपजातिवृत्तसे कहते हैं।

क्षेत्रे जिनांशे गजचंद्रभागैः स्वाष्टाक्षिभागेन युतैस्तु वृत्ते ॥
विदिग्दिशोरंतरतोऽष्टसूत्रैस्तृतीययुक्तैरिदमष्टकोणम् ॥ ४७ ॥

अन्वयः—जिनांशे क्षेत्रे स्वाष्टाक्षिभागेन युतैः गजचन्द्र १८ भागैः वृत्ते कृते दिग्विदिशोरन्तरतः तृतीययुक्तैः अष्ट ८ सूत्रैः इदमष्टकोणं कुण्डं भवति॥४७॥

भा० टी०—पूर्ववत् २४ अंगुलके क्षेत्रको २४ भाग करे इसके १८ भाग हुए १८ अंगुलोंका जो अट्ठाईस २८ वां भाग ५ यवा १ यूका १ लिक्षासे युक्त किया तो हुए अंगुल १८ यवा ५ यूका १ लिक्षा १ इतने प्रमाणके कर्कटसे वृत्त करके अर्थात् व्यास द्विगुण हुआ पुनः दिशा विदिशाओंमें ८ चिह्न करना पुनः तीसरे चिह्नसे ८ भुज रेखा देनेसे और वृत्त मिटानेसे अष्टकोणकुण्ड सिद्ध हो गया ॥४७॥

अष्टकोणकुण्डोदाहरण। चि. नं. १०.

अथ प्रकारांतरसे समभुज अष्टकोणकुण्ड उपजातिवृत्तसे कहते हैं।

मध्ये गुणे वेदयमैर्विभक्ते शक्रैर्निजर्ष्यंघ्रिलवेन युक्तैः ॥
वृत्ते कृते दिग्विदिशोंऽतराले गजैर्भुजैः स्यादथवाष्टकोणम् ॥४८॥

अन्वयः—अथवा मध्ये गुणे वेदयमैः विभक्ते सति पुनः निजर्ष्यंघ्रिलवेन युक्तैः क्षेत्रस्य शक्रैः १४ भागैः वृत्ते कृते दिग्विदिशोऽन्तराले गजैः भुजैः अष्टकोणं स्यात् ॥ ४८ ॥

भा० टी०—अथवा २४ अंगुलके क्षेत्रको २५ भाग करके क्षेत्रके १४ भाग अर्थात् १४ अंगुल इसका सैंतालिस ४७ वां भाग यव २ यूका ३ लिक्षा० वालाग्र ४ हुआ इसको १४ अंगुलमें जोडा तो हुए अंगुल १४ यवा २ यूका ३ लिक्षा० वालाग्र ४ इतने प्रमाणके कर्कटसे वृत्त बनाकर दिशा विदिशाओंमें ८ भुजरेखा देनेसे अष्टकोण समभुजकुण्ड होगा ॥ ४८ ॥ द्वितीयाष्टकोणोदाहरण। चि. नं. ११.

अथ खात व कण्ठमान अनुष्टुब्वृत्तसे कहते हैं ।

खातं क्षेत्रसमं प्राहुरन्ये तु मेखलां विना ॥
कण्ठो जिनांशमानः स्यादर्कांश इति चापरे ॥ ४९ ॥

अन्वयः–आचार्याः खातं क्षेत्रसमं प्राहुः अन्ये आचार्याः मेखलां विना क्षेत्रं समं प्राहुः कण्ठो जिनांशं २४ मानः स्यात् अपरे आचार्याः अर्कांशमानं इति वदन्तीति शेषः ॥ ४९ ॥

भा०टी०–खातमान कुण्डके समान है अर्थात् २४ अङ्गुलके कुण्डमें खातभी २४ अङ्गुलका गहिरा होगा मेखला समेत अन्य आचार्यका मत है कि मेखला छोडकर कुण्डक समान खात बनाना चाहिये इसकीभी व्यवस्था सूक्ष्म स्थूल हविके अनुसार जानना, सूक्ष्म हवि घृत तैलादि होम करना होवै तो मेखलासमेत कुण्डका खात २४ अङ्गुल बनाना यदि स्थूल हवि बिल्वादि होम करना होवै तौ मेखला अधिक कुण्ड समान खात ३३ अङ्गुल करना ॥ ४२ ॥

अथ मेखलाके अधमादिक अनुष्टुप् छन्दसे कहते हैं ।

अधमा मेखलैका स्यान्मध्यमं मेखलाद्वयम् ॥
श्रेष्ठास्तिस्रोऽथ वा द्वित्रिपंचस्वधमतादिकम् ॥ ५० ॥

अन्वयः–एका मेखला अधमा मेखलाद्वयम् मध्यमम् तिस्रः मेखलाः श्रेष्ठाः अथवा द्वित्रिपञ्चसु मेखलासु अधमादिकं भवतीति शेषः ॥ ५० ॥

भा०टी०–एक मेखला अधम पक्ष है १ दो मेखला मध्यम पक्ष है २ तीनि मेखला उत्तम पक्ष है ३ अथवा दो मेखला अधम तीनि मेखला मध्यम पांच मेखला उत्तम ॥ ५० ॥

अथ 'खातं क्षेत्रसमं' इस श्लोकका अर्थ स्पष्ट करते हुए मेखलालक्षण रथोद्धतावृत्तसे कहते हैं ।

अष्टधा विहितकुण्डशरांशैः संखनेद्भुवमुपर्यनलांशैः ॥
मेखला विरचयेदपि तिस्रः षड्गजार्कलवविस्तृतपिण्डाः ॥ ५१ ॥

अन्वयः–अष्टधा विहितकुण्डशरांशैः भुवं संखनेत् उपरि अनलांशैः तिस्रः मेखलाः विरचयेत्, कीदृशाः मेखलाः षड्गजार्कलवविस्तृतपिण्डाः ॥ ५१ ॥

भा०टी०—तीनि मेखला पक्षमें मेखलाओंकी ऊंचाई व चौडाई कहते हैं २४ अङ्गुल क्षेत्रको आठ भाग करके तीनि तीनि अङ्गुलके तिसमें पांच भाग याने १५ अङ्गुल भूमि खनना चाहिये भूमिके ऊपर तीनि भागमें अर्थात् ९ अङ्गुलमें ३ मेखला होती हैं तिनकी ऊंचाई व विस्तार क्रमसे ४ । ३ । २ । अङ्गुलकी होगी यथा खातके ऊपर एक अङ्गुल भूमि कण्ठरूप छोडकर प्रथम मेखला ४ अंगुलकी ऊंची व चौडी बनाना तिसके उपर दूसरी मेखला ३ अंगुल ऊँची चौडी तिसके ऊपर तीसरी मेखला २ अंगुलकी ऊँची चौडी इस प्रकार तीन मेखला निवेश है ॥ ५१ ॥

अथ प्रकारान्तरसे मेखलालक्षण व नाभिलक्षण विपरीताख्यान व शालिनीवृत्तसे कहते हैं।

रसांशकादुन्नतविस्तृताश्च तिस्रोऽथ वैका युगभागतुल्या।
पंचाथ वा षट्शरवेदरामद्व्यंशैस्तताः स्युर्नवभागपिण्डाः ॥ ५२ ॥
आद्यापरास्तच्छरभागहीना जिनांशकैठाद्बहिरेव सर्वाः
कुण्डानुकारा अपि मेखलाः स्युरर्काङ्गभागोच्चततस्तु नाभिः ५३॥

अन्वयः—रसांशकात् उन्नतविस्तृताः तिस्रो मेखलाः स्युः अथवा युगभागतुल्या एका मेखला स्यात्, अथवा षट्शरवेदरामद्व्यंशैः तताः पंच मेखलाः स्युः तत्र आद्या पञ्चसु मध्ये प्रथमा मेखला नवभागपिंडा अपराः द्वितीयादयः शरभागहीनाः तथा सर्वाः मेखलाः कण्ठाद्बहिरेव कार्याः कुण्डानुकारा अपि कार्याः नाभिस्तु अर्काङ्गभागोच्चततः कार्य इति ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

भा०टी०—अथवा क्षेत्रके छठवां भाग अर्थात् चौबीस २४ अङ्गुलके क्षेत्रमें चारि अङ्गुलकी ऊंची तथा चौडी तीनों मेखला होती हैं. एक मेखला पक्ष अथवा एकई मेखला क्षेत्रके चौथे भाग अर्थात् २४ अङ्गुलके क्षेत्रमें ६ अङ्गुल ऊंची तथा ६ अङ्गुलकी चौडी बनाना चाहिये इसका यह तात्पर्य है कि प्रथम मेखला १२ अंगुलकी ऊंची ४ अंगुलकी चौडी दूसरी आठ ८ अंगुलकी ऊंची ४ अंगुलकी चौडी तीसरी ४ अंगुलकी ऊंची ४ अंगुल चोडी बनानेसे तीनों मेखला ४ । ४ अंगुलकी ऊंची चौडी होगी अथवा पांच मेखला पक्ष अथवा पांच मेखला बनावै यथा २४ अंगुलके क्षेत्रमें प्रथम-मेखला षट् ६ अंगुलकी चौडी बनावे ९ अंगुलकी ऊंची दूसरी मेखला पञ्च ५ अंगुल चौडी तथा अंगुल ७ यव १ यूका ४ लिक्षा ६ वालाग्र १

इतनी ऊँची होगी ऐसेही तीसरी चारि अंगुल चौथी ३ अंगुल पांचई २ अंगुल की चौडी और उच्चतामें अपने २ पहिलेसे पञ्चमांश न्यून ऊंची करनी चाहिये ये सर्व मेखला चौवीसमा भाग परिमित कण्ठसे बहिर्भागहीमें होती है और जिस आकारका कुण्ड होता है चतुःकोण, त्रिकोण, वृत्त, योनि. उसी प्रकार होती है अथ नाभिभी कुण्डके बारहौ अंश अर्थात् २४ अंगुलके क्षेत्रमें २ अंगुल ऊंची तथा षष्ठांश अर्थात् ४ अंगुल चौडी कुण्डहीकी आकार चतुष्कोण त्रिकोण आदि करनी चाहिए ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

प्रकारांतरेण नाभ्यादिलक्षण शालिनीवृत्तसे कहते हैं ।

कुण्डाकारो नाभिरंभोजसाम्यो वाब्जेऽयं नेनांशहानिर्दलाग्रे ॥
शेषक्षेत्रे वह्निवृत्तैः समे ते स्युर्वै कर्णी केसराः पत्रकाणि ॥ ५४ ॥

अन्वयः—अथवा अंभोजसाम्यः नाभिः कार्यः अयं नाभिः अब्जे पद्मकुण्डे न कार्यः अथ पद्माकारनाभिप्रकरणप्रकारः दलाग्रे दलाग्रनिमित्तम् द्व्यंगुलाच्चतुरङ्गुलविस्तारायामे नाभौ इनांशहानिर्द्वादशांशत्यागः कार्यः शेषमवशिष्टं क्षेत्रं तस्मिन्वृत्तत्रयं समभागेन कार्यम्, तत्र मध्यमचिह्नात् प्रथमवृत्तं कर्णिका, द्वितीयं वृत्तं केसरम् तृतीयं पत्राणि, तद्बहिः अवशिष्टद्वादशांशेन दलाग्राणि रचयेदिति ॥ ५४ ॥

भा०टी०—दूसरी प्रकार नाभिलक्षण वा पक्षांतरे सर्वकुण्डोंमें कमलके आकार नाभि रचना करै पद्मकुण्डमें नाभि रचना न करै पद्मकुण्डमें नाभिरूप कर्णिका (वोदा) रहता है नाभिरचना प्रकार यथा २४ अंगुलके क्षेत्रमें २ अङ्गुलकी ऊंची ४ अङ्गुलकी चौडी नाभि होती है ४ अंगुलका बारहौ अंश यवादि २।५।२।५। इससे हीन करनेसे ४ अङ्गुलमें शेष रहे अंगुलादि ३।६।२।३।२। इतने परिमित क्षेत्रमें तीनि वृत्त करना चाहिये यथा अंगुलादि १।१।६।०।१। इतने व्यासका प्रथम वृत्त इसके आधे विस्तारके कर्कटसे सिद्ध होगा अर्द्धविस्तारमान यवादि ४। ७।०।०।४। इतने विस्तारके कर्कटसे प्रथम वृत्त तथा अंगुलादि १।१।६।०।१। इतने विस्तारके कर्कटसे दूसरा वृत्त तथा अंगुलादि १।६।५।०।१।०। इतने विस्तारके कर्कटसे तीसरा वृत्त होगा तीनों वृत्तोंमें प्रथम वृत्त कर्णिका है दूसरा केसरस्थान है तीसरा पत्रस्थान है प्रथमही छूटा हुआ जो द्वादशांश है उसमें पत्राग्र किये जायंगे खातसे १ अंगुल क्षेत्रत्याग करके मेखला बनाना चाहिये कुण्डाकार नाभि होना उचित है ॥ ५४ ॥

कुण्डमें लगनेवाली योनिका लक्षण स्रग्धरावृत्तसे कहते हैं।

योनिर्व्यासार्धदीर्घा विततिगुणलवादायताऽङ्घ्रिद्विभागा
तुङ्गा तावत्समन्तात्परिधिरुपरिगा तावदग्रेण रम्यम्॥
निम्नं कुण्डं विशंती वलयदलयुगेनान्विताधोविशाला
मूलात्सच्छिद्रनालाऽन्तरवटरुचिराश्वत्थपत्राकृतिः सा॥ ५५॥

अन्वयः—व्यासार्द्धदीर्घा विततिगुणलवात् आयता अङ्घ्रिद्वि २४ भागा-तुंगा तावत् उपरिगा परिधिः मेखला तावत् अग्रेण निम्नं यथा स्यात्तथा कुण्डं विशंती वलयदलयुगेन वृत्तार्द्धद्वयेन अन्विता अधोविशाला मूलात् सच्छिद्रनाला अन्तरवटरुचिरा अश्वत्थपत्राकृतिः रम्या सा स्यादिति॥ ५५॥

भा॰टी॰—क्षेत्रके अर्द्धमान अर्थात् २४ अंगुलके क्षेत्रमें १२ अंगुल लम्बी और क्षेत्रमान २४ अंगुलका तृतीयांश अष्ट ८ अंगुल चौडी और क्षेत्रके चौबीसौ अंश १ अंगुलकी मेखला युक्त तथा कुण्डके तरफ झुकती हुई १ अंगुल कुण्डमें प्रवेश करनेवाली दो अर्द्धचन्द्रसे युक्त अधोभागमें स्थूल मध्यमें खातयुक्त भूमिसे लेके छिद्रसहित नालयुक्त मनोहर अश्वत्थ (पीपर) पत्रके सदृश आकारयुक्त योनि लगाना चाहिये कोई आचार्य कहते हैं कि उक्त योनि कुण्डवत् योनि रचना करै॥ ५५॥

द्वादशांगुलमेखला योनिलक्षण अनुष्टुप्छन्दसे कहते हैं।

अथार्काङ्गुलपक्षे तु मेखलानां दशाङ्गुलैः॥
विस्तृता तिथिभिर्दीर्घाङ्गुलिभिर्योनिरिष्यते॥ ५६॥

अन्वयः—तु पक्षांतरे मेखलानां अर्काङ्गुलपक्षे दशाङ्गुलैः विस्तृता तिथिभिः अङ्गुलिभिः दीर्घा योनिः इति॥ ५६॥

भा॰टी॰—बारह १२ अंगुलके मेखला पक्षमें दश १० अंगुलकी चौडी पन्द्रह १५ अंगुलकी लम्बी योनि बनाना चाहिये॥ ५६॥

अथ कुण्डकरणशक्तिमें वेदी रचना वसन्ततिलकावृत्तसे कहते हैं।

अथवाऽपि मृदा सुवर्णभासा करमानं चतुरङ्गुलोच्चमल्पे॥
हवने विदधीत वाङ्गुलोच्चं विबुधः स्थंडिलमेव वेदकोणम्॥ ५७॥

अन्वयः—अथवा विबुधः अल्पे हवने सुवर्णभासा मृदा चतुरङ्गुलोच्चं वा अथवा अङ्गुलोच्चं वेदकोणं करमानं स्थण्डिलमेव विदधीत इति॥ ५७॥

भा० टी०—अथवा पण्डित स्वल्पहवनमें स्वच्छमृत्तिकासे ४ अंगुल ऊँची अथवा २ अंगुल ऊँची १ हस्त परिमित चतुःकोण स्थण्डिल (वेदी) रचना करें. पूर्व उत्तरको झुकती हुई वेदी बनाना ५ अंगुल अथवा ८ अंगुलकी ऊँचीभी कोई आचार्य कहते हैं ॥ ५७ ॥

यह हमारी रचना श्रीपार्वतीपतिके तोषके अर्थ होवे यह कथन वसन्ततिलकावृत्तसे कहते हैं ।

इति मण्डपकुण्डसिद्धिमेतां रुचिरां विट्ठलदीक्षितो व्यधत्त ॥
अधिकाशिनगर्युमेशतुष्ट्यै विबुधः शोधयतादिमां विचार्य ॥५८॥

अन्वयः—इति विठलदीक्षितः एवंप्रकारेण एतां रुचिरां मण्डपकुण्डसिद्धिम् । अधिकाशिनगरं उमेशतुष्ट्यै व्यधत्त विबुधः विचार्य इमां शोधयतात् ॥ ५८ ॥

भा०टी०—विट्ठलदीक्षितने काशीनगरीमें श्रीपार्वतीनाथके सन्तोषके अर्थ उक्त प्रकार मण्डपकुण्डसिद्धि रचना किया पण्डितजन विचारके इसका शोधन करें अर्थात् अविचारसे दूषण देना अनुचित है ॥ ५८ ॥

अथ ग्रन्थनिर्माणकालशाकादि मालिनीवृत्तसे कहते हैं ।

शशियुगतिथिगण्ये याति शाके वरेण्ये विभवशरदि
रम्ये मासि शस्ये तपस्ये ॥ शशधरभृतिऋक्षेऽमुष्य-
पक्षे वलक्षे कमलनयनतिथ्यां भानुमद्वारमत्याम् ॥ ५९ ॥

अन्वयः—शशियुगतिथिगण्ये १५४१ वरेण्ये शाके याति वर्तमाने सति विभवशरदि रम्ये शस्ये तपस्ये मासि वलक्षे पक्षे शशधरभृति अमुष्य ऋक्षे भानुमद्वारवत्यां कमलनयनतिथ्याम् इमां कृतिं व्यधनेति पूर्वश्लोकेनान्वयः ॥५९ ॥

भा०टी०—शालिवाहन शाके १५४१ मिति शुभ फाल्गुन मास शुक्ल पक्ष द्वादशी रविवार आर्द्रानक्षत्रमें इस ग्रन्थका निर्माण हुआ इति ॥ ५९ ॥

इत्यन्वयभाषाटीकासहितो मण्डपकुण्डसिद्धिग्रन्थः समाप्तः ॥ १ ॥

दोहा—श्रीयुत वेङ्कटरमणजू, बांधवेश नरनाह ।
सदा रावरेपै रहै, हरिवाहनकी छांह ॥

इसमें अठारह १८ अर्थ प्रसिद्ध हैं ।

अथ

कुण्डार्काख्यो द्वितीयो ग्रन्थः २ ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ भास्वन्तं नीलकण्ठं पितरमनुसरन् शंकरो वक्ति कुण्डं भू १ द्व्य २ ब्ध्यं ४ गा ६ ष्ट ८ हस्तं दश १० शतहवनात्तद्दशघ्नोत्तरं स्यात् ॥ हस्तः स्यादूर्ध्वबाहुप्रपदगमखिनः पञ्चमांशोऽङ्गुलं तत्सिद्धां २४ शस्तद्गजां ८ शो यव उरगलवस्तस्य यूकाष्टलिक्षा ॥ १॥ छायान्तो मध्यशङ्कोः समभुवि विहितं मण्डलं येन गच्छेदुज्झेच्च स्थानयुग्मं तदनुगतगुणः प्राग्गुणेऽथोदगंशुः ॥ तस्यान्ताभ्यां तदर्धाऽधिगुणकृतयोर्मत्स्ययोर्मध्यतः स्यात्तत्संधेर्भ्रामयांऽशुं कुरु वलयमितः सर्वकुण्डप्रसिद्धिः ॥ २ ॥ वृत्तेऽब्जे वलयोऽधिभे २७।०।६ रधिपदृह्यग्निः ३८।२। ३ सपात्स्वानलो ३०।२ दृग्वेदे सयवे ४२। १ रसत्रिसदलं ३६।४ सिद्धा २४ करामेऽकले ३३।७।४ ॥ क्ष्मारामे सयवेऽ ३१।१ धिपादधृतयो १८।२ नाङ्गौ स्वरामे २९। ६ दलं १४।७ गोद्धाव २९ त्रियवत्रिभू १२।६ रपदले २८।४ ज्यानिस्त्रियूकाः शिवाः १०।७।६।३ ॥ ३॥ द्विघ्नोऽङ्घिघ्ने फलेंशुर्दलितिविदशमेनाङ्घ्रिणेद्धो विनिघ्ने त्र्यंशेन स्वाङ्घ्रिभाजा वियुगगणलवोऽङ्घ्रिस्तु तं द्विघ्नमन्त्ये ॥ कोट्यः पूर्वोत्तरांश्वोरिह वरुणदिशः पुच्छपार्श्वास्यपार्श्वा अंशौ पार्श्वास्यमध्यावनुजघनयुगं मध्यतः पुच्छकुक्ष्योः ॥ ४ ॥ सन्धेः पार्श्वास्यमध्यावनुततगुणयोः कोटयोऽभ्यस्रकोणस्तस्मात्प्राग्ज्यङ्घ्रिदेशात्कुरु वलयमिहाऽर्धेदुभं पश्चिमार्धम् ॥ श्रोण्यौ पुच्छाद्दलेन द्वयमुखगुणतस्त्र्यस्रिवृत्ते भगाभे पुच्छश्रोणीगुणाज्यं दलवलयसुटां चाधिकं षट्भुजे तु ॥ ५ ॥ श्रोण्यंसौ पार्श्वतोऽर्धाद्युगभुजयुगलं दिग्विदिक्कोणकं स्यादाद्यन्त्यस्राष्टकोणं त्रियवयुतस्वसिंघ्रंगुलेष्टाब्धिकुण्डम् ॥ सप्तास्रे दोर्दलभरसदृग्भागयुग्वक्रतोज्याः

पश्चास्त्रे द्विघ्नपार्श्वाननततिविवरं खाभ्रवेदांशयुक्तम् ॥ ६ ॥ वृत्तव्यासे नवांशे द्वि २ चतु ४ रिभ ८ लवैः कर्णिकाकेसरांतर्यत्र क्ष्मामंडलानि स्युरवधिवलयं स्यात्सतत्त्वां २५ शपङ्क्त्या ॥ त्र्यस्राण्यष्टौ बहिस्तच्छ्रुतिदलगुणकौ द्विघ्नमौर्वीभ्रमेण चापावन्तर्बहिर्ज्याविति कुरु मतिमन्नष्टपत्राब्जकुण्डम् ॥ ७ ॥ वेदास्रं योनिरर्धं वलयमनलदोर्वृत्तमङ्गास्रमब्जं वस्वस्रं चेन्द्रदिक्तः प्रथमचरमयोरंतराले युगास्रम् ॥ वृत्तान्याद्यानि वा स्युर्नवाविदिशशते पञ्च वास्युर्यदि स्यादेकं कुण्डं प्रतीच्यां पुरहरदिशि वा तानि वेद्याः पदान्ते ॥ ८ ॥ खातं कुण्डाभमानं जिनलवगलतः स्युर्बहिर्मेखलास्ता नंदाङ् ९ ग ६ त्र्यु ३ च्चवेद ४ त्रि ३ कर २ विततयोऽशोच्चनाभिर्द्विपुष्टा ॥ स्वाभानब्जेऽब्जभावावसुनवलवकव्यासदैर्घ्याच्च योनिः पश्चान्नालाग्रकानो भग उपरि भुवाग्रेण कुण्डं विशन्ति ॥ ९ ॥ पङ्क्त्यर्कैरर्क १२।१४ शक्रैर्नृपतिधृति १६। १८ करैर्मण्डपोऽल्पः समोऽग्र्याच्चुल्योम्भोऽध्यब्धि १४ खंडा इह न वसुसमा मध्यमो वेदिरेखाम् ॥ हस्तोच्चा खण्डकोणेष्विभ ८ करमुदरे पंचहस्तं बहिश्च स्तम्भोच्चं द्व्यष्टसङ्ख्यं भुवि शर ५ लवतः खेयमन्यत्र चैवम् ॥ १० ॥ द्वात्रिंशत्स्तम्भचूडास्ववनयवलिका स्ताजिनाः खण्डबाहुष्वष्टौ स्युर्मण्डपस्य श्रुतिषु सशिखरो मध्यभागोऽस्य यस्मात् ॥ दिक्षुद्वारो द्विहस्तानुपरि चतुरिभैरंगुलैरेधिताः स्यू रम्भास्तम्भध्वजाद्यैः करपिहितममुं शोभयाम्भोघटाद्यैः ॥ ११ ॥ हस्तान्ते तोरणोऽस्मादिषुषडग ५ । ६ । ७ करोऽश्वत्थजोदुंबरात्थप्लक्षन्यग्रोधजाः प्राक्प्रभृतिषु फलकाः स्वर्घता मूर्ध्नि तस्य ॥ तन्मध्ये विष्णुयोगे दशरविमनुभिश्चांगुलैः स्वांघ्रिपुष्टाः शङ्खं चक्रं गदाऽब्जं भजति शिवमखे शूलमेकांगुलोनम् ॥ १२ ॥ वृत्तेऽब्जोब्धिषविभाश्वै ७८५४ रयुतगुणफलाल्लब्धमूलेन वृत्तव्यासो योनौ तु सार्धत्रिनवकररसैः ६२९३४ सार्धसप्ताऽश्विदंतै ३२२७४ ॥ खाभ्राऽ-

श्राऽथैः ५००० सहाङ्किश्रुतिकनवशरै ५९४४२ धींनवाम्भोरसैश्च ६४९५ क्ष्मावार्धीभर्तृभि ६८४१ भूनगगगननगै ७०७१ श्चक्रभा आदितः स्युः ॥ १३ ॥ इष्टव्यासमितैर्भुजैः समचतुष्कोणं विधायां-कयेत्कर्णार्धे तु मुखे सता यमदिशि श्रोत्रेऽप्युदक् चांसतः ॥ मूलं द्व्यादिगुणे फले वदनतः पार्श्वार्धपुच्छे सतः पार्श्वेऽर्धेऽर्धमुखे कटौ द्विगुणिते कर्णाच्च पार्श्वे दले ॥ १४ ॥ स्युर्वृत्तव्यासकृत्यास्त्रि ३ यम २ कु १ क्षरणा ७५० । ५००० । २५०० भाऽश २७ खाब्ध्यंश ४० युक्तौ रामा ३ स्वांशौ शरांशा ५ नगकु १७ लवयुक् १८८२ । २ त्र्यस्रतो बाहुवर्गाः ॥ दृघ्नं दोर्व्यासवृत्त्या स्वपदमिति फलं स्याच्चतुर्णां त्रिदोष्णां पादद्व्यां वृत्तदोष्णामिति भुजमवदच्छंकरो नैलकंठिः ॥१५॥

इति श्रीनीलकंठसुतशङ्करभट्टकृतः कुंडार्को नाम द्वितीयो ग्रंथः समाप्तः ॥ २ ॥

अथ कुण्डमण्डपदर्पणाख्यस्तृतीयग्रंथः ॥ ३ ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ कुंडमंडपदर्पणो लिख्यते ॥ विष्णुं यज्ञभुजं नत्वा प्रवक्ष्ये कुंडमंडपौ ॥ सिद्धांतवचनैर्हस्तः कनिष्ठां-तश्च कूर्परात् ॥ १ ॥ तत्सिद्धांशोंऽगुलैस्तस्य वस्वं ८ शो यव उच्यते ॥ यूका यवाष्टमो ८ भागो लिक्षा तस्याष्ट ८ मांशकः ॥ २ ॥ शूलत्सूत्रो-क्तरीत्यात्र प्राचीसाध्याथवा ध्रुवात् ॥ अथ चोज्जयनीक्षेत्रादुदीच्यां कृत्तिकोदयात् ॥ ३ ॥ तथा चोज्जयनीक्षेत्राद्याम्यत्वाष्ट्रानिलांतरात् ॥ व्युगमात्रोदिते तारे चित्रस्वात्यश्च पूर्वतः ॥४॥ सुधीरं जनयंत्रोक्तमार्गे-णावेध्य तारके ॥ ताभ्यां प्रचलितौ लंबौ भूस्पृष्टौ तत्र चिह्नयेत् ॥५॥ चिह्नाभ्यां दक्षिणोदीच्यसूत्रं तत्र प्रसारयेत् ॥ तन्मध्यादुक्तसन्मत्स्यौ तन्मुखात्प्राक् प्रजायते ॥ ६ ॥ यद्वा पुष्योदयात्प्राची श्रवणाद्वा च युक्तितः ॥ चतुर्हस्तोदितात्प्राच्यामृक्षात्प्राचीप्रसाधनम् ॥ ७ ॥ समा-

नवळयं याति यत्र भागे यदा रविः ॥ तत्र लंबप्रभा प्राची सौम्यगोले रवौ सति ॥ ८ ॥ यद्वा गणितमार्गेण दिगंशेभ्यश्च यंत्रतः ॥ अथवा कार्यमंशेभ्यो भागाद्गणितमार्गतः ॥ ९ ॥ प्राक्संसाधनमार्गा वै संक्षेपशुचिता मया ॥ दिङ्मूढक्षेत्रके मृत्युस्तस्मात्प्राचीं प्रसाधयेत् ॥ १० ॥ प्राचीसाधनमार्गा वै बहवस्तेषु नांतरम् ॥ तत्कालप्राक्प्रसिद्ध्यै तु भुवे सूर्यांच्च शंकुतः ॥ ११ ॥ तत्कालार्कः सायनस्तद्भुजांशास्तत्क्रांत्यंशास्त्वक्षकर्णेन निघ्नाः ॥ शंकुच्छायाकर्णनिघ्नाः पुनस्ते खेषग्न्या ३६० प्ताः सूर्यं दिक्स्याद्भुजः सः ॥ १२ ॥ द्विघ्नाप्राच्यक्षप्रभासंस्कृतोऽयं देवोभाग्राज्जेव पूर्णोऽथमोदक् ॥ केंद्राच्छंकोभीप्रमाणेन वृत्ते प्राक्सूत्रं स्यात्केंद्रबाह्वर्धगामि ॥ १३ ॥ इति प्राक्साधनम् ॥ समायां साधितांशायां शुद्धायां भुवि मंडपम् ॥ चतुरस्रोक्तरीत्यैव कुर्यात्संपूज्य विघ्नपम् ॥ १४ ॥ अधमो दशहस्तः स्यान्मध्यो द्वादशहस्तकः ॥ उत्तमः षोडशारत्निर्यथा योगं समाश्रयेत् ॥ १५ ॥ मण्डपप्रमितां रज्जुं त्रिभागां भागचिह्निताम् ॥ चतुर्दिक्षु प्रसार्यैस्तु स्तंभांश्चिह्नेषु रोपयेत् ॥ १६ ॥ मध्यस्तंभांतरान्मध्ये चतुःस्तंभान्निवेशयेत् ॥ पंच ५ हस्ता बहिः पंक्तयोऽष्ट ८ हस्ताश्च मध्यतः ॥ १७ ॥ सचूडा पंच ५ मांशेन भूमिगास्तेषु वल्लिकाः ॥ सरंध्रा विन्यसेन्मध्ये कमलस्योच्छ्रितं सृजेत् ॥ १८ ॥ अधमे प्रतिदिग्द्वारं द्विकरं तच्च मध्यमे ॥ चतुरंगुलसंयुक्तं श्रेष्ठेऽष्टांगुलसंयुतम् ॥ १९ ॥ अश्वत्थोदुंबरप्लक्षवटशाखाश्च पूर्वतः ॥ पंच ५ षट् ६ सप्त ७ हस्तास्ता अधमादिषु कीर्तिताः ॥ २० ॥ द्वार्षु द्वे द्वे निखातव्ये भवत्यापंचमांशकैः ॥ द्वाराधिकानि तन्मूर्ध्नि वल्लिवत्फलकान्यपि ॥ २१ ॥ स्वदेवतायुधानीह सारमूर्धसु योजयेत् ॥ सारद्रुममयच्छाद्यो मंडपोऽथ कटादिभिः ॥ २२ ॥ होमप्रधानके कुंडे चतुस्तंभांतरे खनेत् ॥ अन्यत्र मध्यवेदी स्याच्चतुःस्तंभांतरायता ॥ २३ ॥ खाब्धि ४० भागोच्छ्रिता तस्याः पूर्वादौ कुंडसंस्थि-

तिः ॥ पादांतरे क्रमादष्टौ नवमं चेशपूर्वयोः ॥२४॥ स्वाष्टांशोनकरं कुंडं शतार्धे वै विधीयते ॥ स्वषोडशांशोनकरं शतहोमे विधीयते ॥ २५ ॥ सहस्रायुतलक्षेषु प्रयुते कोटिहोमके ॥ कु १ द्व २ त्र्य ४ यं ६ ष्ट ८ हस्तं स्यात्कुंडं तत्करणीं ब्रुवे ॥ २६ ॥ हस्तात्क्षेत्रफलं ५७६ स्वेष्टकरघ्नं पदमस्य यत् ॥ इष्टसूत्रमिदं तेन चतुरस्रं प्रसाधयेत् ॥ २७ ॥ चतुरस्रसाधनमाह ॥ विघ्नायाममितं द्विपाशमजरं सूत्रं दले तद्दले तन्मध्येऽकितमस्य पाशयुगलं शंकोः प्रमांतस्थयोः ॥ क्षिप्त्वा कृष्णातृतीयचिह्नकमयाच्चोदग्द्वितीये खनेच्छंकुं पाशविपर्ययाच्च पुरतो वेदाप्तिसर्वार्थदः ॥ २८ ॥ पंचांशं ४६ कुरु पुरतो दशांश २ । ३ युग्मं श्रोण्योस्त्र्यधरमितेश्चतुर्लवेन ॥ खण्डेंदुद्वययुगधः सूते क्षुरे तद्योन्याभं रचयति कुण्डमुल्लसच्छ्रि ॥२९॥ सिद्धां २४ शीकृतचतुरस्रमध्यसूत्रे पंचांशानधरमतान्विहाय तेन ॥ भागाष्टयं १६ शकसहिते वृतस्कंधे दोरचयदलेंद्विदं शुभाय ॥ ३० ॥ व्यष्टां ८ शादशपुरतो जिनांश २४ सूत्रे श्रोण्योरधंश इति वैरिनुत्रिकोणम् ॥ व्यासार्धे निजवसु ८ भागभाजनेन वृत्तं शांतिकृदुदितं सुशोभिकुण्डम् ॥३१॥ श्रोण्योः पुरश्चांशकयोरधस्तात्क्षेत्रस्य पश्चात्पुरतो विदध्यात् ॥ अंशेन चिह्नानि षडत्र सूत्रेऽरिमृत्युहेतोः कथितं षडस्रम् ॥३२॥ जिनलवामितसूत्रे सप्त दत्त्वा लवास्तद्दलकृतवलयांतं सूत्रखंडेन वृत्तम् ॥ प्रतिदिशमृजुशंकुनष्ट ८ वाद्येतराष्टां ८ तरवलयगताष्टां तोऽष्टभूयोनिखन्यात् ॥ ३३ ॥ प्राक् शंकोः प्रतिवृत्तमंतरगतानेष्टयांतरान्वेष्टयेत्ते व्यासांगशरांशकेन वलयं द्विघ्नेन चान्यं लिखेत् ॥ खव्यासोच्छ्रितमंततो विरचयेत्सत्कर्णिका तद्बहिः कुर्यात्केशरचिह्नितं निगदितं पद्मं सुवृष्टिप्रदम् ॥ ३४ ॥ द्विघ्नं २ व्यासेशां ११ शयुग्व्यासजातं वेदास्रैकैको भुजः स्याच्चतुर्द्धा ॥ दत्त्वोपांत्यादाचतुर्थांशमस्मिन्सूत्रानष्टाऽष्टास्रिकुण्डं गदघ्नम् ॥ ३५ ॥ द्वि २ घ्नव्यासार्धं ७ शयुग्व्यासखंडाद्वृत्तं तद्व्यासः

स्य त स्वपंचांशयुक्तः ॥ तत्खंडज्याः पंचतस्मिन्प्रयोज्याः पंचास्त्रिः स्यादाभिचारस्य शांत्यै ॥ ३६ ॥ भक्ताजिनैः २४ सूत्रमपास्य भागं १ कण्ठं चतुः ४ त्रि ३ द्वि २ लवायताश्च ॥ कांच्यो नवर्तुत्रिलवोच्छ्रिताः स्युस्तिस्त्रोनखातं तिथिभाग १५ तुल्यम् ॥ ३७ ॥ षट्पं ६ च ५ वेद ४ त्रि ३ यमां २ शविस्तृताः पंचस्युरंकां ९ शसमुच्छ्रितादिमाः ॥ सार्केंशुभागेंशुपरं परोणिता स्युर्मेखलाः कुण्डसमानविग्रहः ॥ ३८ ॥ प्रागादित्रिषु याम्ययोनिरपरे युक्ता प्रचेतो दिशि प्राग्वत्स्यान्नव ९ मे त्रि ३ भागवितता व्यासार्द्धदीर्घा मया ॥ सिद्धांशो २४ रचिता गजोष्ठसदृशीर्द्विंद्वर्द्धकांच्यान्विता कुण्डांतर्जिन २४ भागगा सविवरा तन्मेखलोर्ध्वस्थिता ॥ ३९ ॥ व्यासषड्भाग ६ विस्तारा व्यासार्को १२ शसमुच्छ्रिता ॥ नाभिः पद्मनिभा कुंडे मध्ये पद्मं विना विशेत् ॥ ४० ॥ आसीत्कौशिकनरवरसेविते मणौरे कृष्णः कौशिककुलवारिधौ ललामः ॥ तत्पुत्रो हरिरपि तादृशोऽस्य पुत्रोऽनंतोऽग्निप्रतिनिधिराहिताग्निरस्य ॥ ४१ ॥ श्रीनारायणकविरंगजश्चकार सूक्ष्मं मंडपविधिदर्पणं सकुण्डम् ॥ यन्न्यूनं तद्धि च शास्त्रतोऽवगम्यं तुष्यन्तु क्रतुभुज एतया मदुक्त्या ॥ ४२ ॥ शतघ्नस्थितिभिस्तुल्ये शालिवाहनशकाब्दके ॥ ग्रन्थोऽयं टापरग्रामे रचितो बहुधान्यके ॥ ४३ ॥

इति श्रीमदनंताख्यचातुर्मास्ययाजिपुत्रनारायणविरचितकुण्डमण्डपदर्पणः समाप्तः ॥ ३ ॥

अथ कुण्डमार्तण्डाख्यो ग्रंथः ४ ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ मधुकरवृतगंडं भालभालेन्दुखण्डं विलसितकरदण्डं विघ्ननाशैकचण्डम् ॥ वितरितबुधपण्डं संल्लसत्स्थूलपिण्डं विदलितरिपुकाण्डं नौमि तं वक्रतुण्डम् ॥ १ ॥ हृदयकमलमध्ये कृष्णपादा-

रविन्दं निजगुरुपदपद्मं संभ्रमात्साधु भक्त्या ॥ अभिमतफलदं संचिन्त्य कुण्डादिसिद्ध्यै कुरुत इह नवीनं कुण्डमार्तंडसंज्ञम् ॥ २ ॥ स्वीयावध्यासोदयाश्वारुपादैर्मोहध्वान्तस्तोमनाशप्रचंडः ॥ नित्यज्ञानारोग्यतः सेवितः सन्मार्तण्डोऽयं मङ्गलं नस्तनोतु ॥ ३ ॥ गणिताऽनभिज्ञेन कुण्डमण्डपक्रमसाधनोद्यतविपश्चितां मुदे ॥ रचितो धिया कविबुधा गुणप्रियाः परिमृश्य साधु किल शोधयंतु तम् ॥ ४ ॥ अथ कुण्डादिविवक्षुस्तत्साधनीभूतं हस्तादिपरिमाणं तावत् शार्दूलविक्रीडितेनाऽऽह ॥ चेत्सर्वैः प्रपदोच्छ्रितः समपदः प्रांशुर्नरोऽप्यूर्ध्वदोर्यस्तस्यैषुलवः करो जिनलवस्तस्याङ्गुलं वै यवः ॥ स्यात्तस्येभलवस्तु तद्वसुलवो यूका च लिक्षा तथा वालाग्रं रथरेणुरत्र गदितास्तत्तद्गुणांशैः क्रमात् ॥ ५ ॥ रत्निरित्थमुदितः कृतमुष्टिर्हस्तहेम्बविबुधैर्विकनिष्ठः ॥ स्यादरत्निरिति सूरिभिरुक्ता कुण्डमण्डपविधौ परिभाषा ॥ ६ ॥ इदानीं प्राचीसाधनं विवक्षुस्तावद्भूमिशोधनादिकं शालिनीद्वयेन शार्दूलविक्रीडितेनाह ॥ श्वेता रक्ता पीतवर्णा च कृष्णा सर्पीरक्तान्नासवामोदयुक्ता ॥ भूमिस्वादुः स्यात्कटुस्तिक्तकापि काषाया वै विप्रतोयाऽवयोग्या ॥ ७ ॥ कुंडार्थपृथ्वीपरिशोधहेतवे प्रष्टुर्मुखाद्यः प्रथमं स्फुटीभवेत् । वर्गादिवर्णः किल तद्दिशस्मृतं शल्यं मुनीन्द्रैरुपयैस्तु मध्यतः ॥ ८ ॥ बुध्वैवं धरणीं समां मुकुरवत्कृत्वा द्विजेन्द्रैः पुरा पुण्याहं कमठं धरां फणिपतिं संपूज्य पुष्पादिभिः ॥ संशुद्धे दिवसे तिथौ च भयुजे विप्रैश्च कण्ठप्रगे प्राचीसाधनमिष्टमण्डपकृते कुर्याद्विपश्चिन्मुदा ॥ ९ ॥ अथ दिक्साधनोपयोगि वृत्तप्रकारं शङ्कुकरणं तन्निवेशनं च पृथ्वीछन्दसा ;भुजङ्गप्रयातपूर्वार्द्धेन चाह ॥ दिवाकरमितांगुलप्रमितकर्कटेन प्रगे गुणेन भुवि वा वरं विलिखमण्डपं याज्ञिके ॥ नवाङ्गुलमितं नरं खदिरकङ्कदन्तोद्भवं यथोक्तकृतलक्षणं ललितमत्र संस्थापय ॥ १० ॥ शरक्ष्माङ्गुलांभोधिसंख्याभिरत्र समस्पृष्ट-

शीर्षं शलोकात्तमाभिः ॥ विशेच्छङ्कुभा यत्र यस्माच्च यायात्क्रमास्तः पयोनाथसूत्रामकाष्ठे ॥ ११ ॥ अथ सूक्ष्मत्वार्थं चालनं द्रुतविलंबितवृत्तेनाह ॥ वृषभकर्कटमृगालिषु चैकया द्विगुणया घटकेसरिभत्रये ॥ तरणिरेति दिशं हरिदिक्तु ततो धनुषि नो मिथुने च विचाल्यते ॥ १२ ॥ अथ चालनाभिप्रायं इन्द्रवज्रयाऽऽह ॥ यूकात्मकं चालनमुक्तमत्र स्थिरं समं यद्रविसंक्रमेषु ॥ स्वल्पान्तरत्वान्न कृतं मया सन्नातो भवेत्तत्किल दूषणाय ॥ १३ ॥ अत्र दक्षिणोत्तरसाधनमाह ॥ ह्यूनं स्वार्द्धसमन्वितोत्तमगुणं मध्यांगपाशान्वितं प्राचीपश्चिमशंकुयुग्मनिहितं विद्वन्कुरु त्वं मुदा । धृत्वाकर्षय सूत्रखंडविलसच्चिह्नं करेणोत्तरां यामीं तद्यमचंद्रयोरविततं काष्ठे भवेतां स्फुटे ॥ १४ ॥ अथ रात्रौ प्राचीसाधनमाह ॥ मध्यच्छिद्रयुतां नवीननलिकां सत्सूक्ष्मरंध्रान्वितां रंध्रे प्रोतगुणाग्रयुग्मविलसल्लंबं निशायां कृती ॥ कृत्वा संस्थित एव वक्रनलिकारंध्रस्थदृष्ट्या पुरः प्राचीपश्चिमसाधनं श्रवणतः पुष्याच्च कुर्यात्स्फुटम् ॥ १५ ॥ अथ चित्रास्वातीवेधनप्राचीपश्चिमसाधनम् ॥ दृष्ट्या साचि विलोकय द्विनलिकामूलैक्यरंध्रान्मरुत्त्वाष्ट्रे स्वोदयने नलीद्वयमिलत्तिर्यक्स्थदृष्ट्यंतरात् ॥ लंबाग्रप्रपदोद्यतश्च नलिकामूलैक्यमध्यांकतः पश्चात्स्तः पुरुहूतपाशिहरितौ तल्लक्ष्मयुग्मे क्रमात् ॥ १६ ॥ अथ कुंडमंडपार्थं चतुरस्रभूमिसाधनम् ॥ सूत्रं दिगंतकरशंकुगतं द्विपाशं कृत्वांतलक्ष्मनिजविस्तृतितुल्यमात्रे । धृत्वा प्रकर्षय पुमानिति वेदकोणे स्यात्कुंडमंडपविधौ चतुरस्रभूमिः ॥ १७ ॥ अथ मंडपभूमिकरणम् ॥ धरां कुरु करेण वा करदलेन चारून्नतां जनाश्रयकृते कृतावपरमंडपाश्चेत्तदा । जनाश्रयमितां धरां मखावदन्यमध्येऽभितो विहाय कुरु तानरान्नयनसुंदरान्मंडपान् ॥ १८ ॥ अथ मंडपमानम् ॥ अधमो दिक्कर १० । १२ मंडपक्रतौ तरणींद्रहस्त १२ । १४ तुलितश्च मध्यमः ॥ धृतिभूप १८ ।

१६ हस्तविततो महान्भवेन्नखहस्त २० मंडपवरस्तुलार्पणे ॥ १९ ॥ अथ वर्णव्यवस्थया मंडपमानं कैश्चिदुक्तम् ॥ नख २० भूप १६ सूर्य १२ दश १० हस्तमंडपो द्विजतो बुधैर्निगदितोऽथ वाव्वरः ॥ अधमान्वयस्य वसुहस्त ८ मंडपः करिद्दक्करो २८ गुरुतरः स्मृतोऽपरैः ॥ २० ॥ अथ द्वारस्य वेद्याश्च प्रमाणम् ॥ द्वाश्चतुष्क ४ मुदितं दिगंतराद्दस्तयुग्म २ मितमङ्यमध्ययोः ॥ वर्द्धितं गजयुगां ४ गुलैऽस्तु तद्वेदिका त्रिलवतः करोन्नता ॥ २१ ॥ अथ तुलाप्रदाने वेदविशेषं चाह ॥ गदिताधममध्ययोस्तुलायां शरहस्ता ५ शशिहस्तसंमितोच्चा ॥ प्रवरेऽद्रिकरा ७ गिरीशभागे ग्रहवेदी रुचिराकृतिस्त्रिवप्रा ॥ २२ ॥ अथ स्तंभरोपणार्थं स्तंभज्ञानार्थं तन्निवेशनं चाह ॥ लोकाधारसमत्रिभागकचतुश्चिह्नेषु पूर्वापरं याम्योदक्च गुणं दिवाकरसमस्तंभान्सचूडान्बुधः । अंतःस्तंभचतुष्टयं ४ गजश्चयं ८ दद्याद्दशं क्षितावेवं पंच ५ शयान्कृतौ किल नृप १६ स्तंभान्कृशानोरपाक् ॥ २३ ॥ अथ स्तंभोपरि वलिकानिवेशनम् । निधेया स्तंभानामुपरि शुभचूडासु वलिकाः क्रतौ वा कर्णे ता बहिरपि समस्ताः सुसरलाः । प्रतीचीपूर्वस्था यमदिशि हरिस्थांश्च वलिका विधेयाः कोणस्था मखविटपिजाः साधुमतिना ॥ २४ ॥ अथ मंडपोपरि शिखरकरणम् ॥ मध्यात्रिभागशिखरं रुचिरं विधाय प्रच्छादयेदृजुकटैः क्रमुकैः सुवंशैः ॥ सद्वारवर्जितजनाश्रयमेवमत्र स्तंभान्विचित्रवसनैरपि मंडपज्ञः ॥ २५ ॥ अथ तोरणनिवेशनम् ॥ शर ५ रस ६ मुनि ७ हस्तैर्मंडपे तोरणानि बहिरपि करतः स्युर्यज्ञवृक्षोद्भवानि ॥ अधमसमवरेयादायतिश्च द्विहस्ता चरणदलविवृद्ध्या सांगयज्ञप्रसिद्ध्यै ॥ २६ ॥ अथ पूर्वश्लोकोक्तयज्ञवृक्षानाह ॥ वटोदुंबराश्वत्थवृक्षाधिराजैर्विधायाततानींद्रदिक्तः क्रमेण ॥ चलत्पत्रयज्ञांगपर्कोरुपद्भिरिस्त्वमान्येककेनैव वैषामभावे ॥ २७ ॥ अथ स्तंभोपरि फलकनिवेशनम् ॥ स्तंभाद्धोन्मितफलकं

कुरुष्व तिर्यक्तच्छीर्षे नवशिवविश्वरूपकीलान् ॥ आत्मीयाग्धिलव-
ततांस्त्रिशूलरूपांस्तद्रोपो द्वि २ गुण ३ युगां ४ गुलानि शैवे ॥ २८ ॥
दश १० द्वादशं १२ द्रांगुल १४ काष्ठकीलास्त्रिवेदाक्षितुल्यांगुलं तत्र
रोपः ॥ पयोजारिकौमोदकीपद्मचिह्ना भवेयू रमाकांतयज्ञे क्रतुज्ञाः
॥ २९ ॥ अथ मंडपशोभाकरणम् ॥ फलालिरंजितच्छदोल्लसत्कद-
ल्यधिष्ठितं प्रसूनगुच्छसंयुतं विधेहि मंडपाश्रियम् ॥ सुवर्णमौक्तिको-
ज्ज्वलद्विमानरंजितान्तरं प्रबद्धदर्पणस्फुरन्मनोज्ञपंचचामरम् ॥ ३० ॥
अथ ध्वजप्रमाणाद्याह ॥ सुपीतशोणमेचकान्विधाय नीलपांडुरासि-
तावदातपांडुरान्ध्वजान्द्विहस्तविस्तृतान् ॥ दिगीशवाहनान्विता-
न्खचंद्र १० हस्तवंशकेष्टषट्कहस्त ६ संमितान्विधेहि पूर्वतः
क्रमात् ॥ ३१ ॥ अथ पताकाप्रमणादि आह ॥ स्वामिपत्रास्त्रवर्णाः
पताकास्तता हस्ततः सप्तहस्तैश्च दीर्घाः स्मृताः ॥ विचित्रं ध्वजं दिक्कं
दिक्करोच्चे त्रिहस्तायतं प्रांतघंटं सुवंशे ॥ ३२ ॥ विशदा नवमी शुभा-
पताका पुरुहूतेशदिगंतरा निधेया ॥ तनुयादिह पूर्वतः पताकाः परि-
संस्थाविधिवन्मुदा विपश्चित् ॥ ३३ ॥ अथ कुंडविधानं कुंडस्थान-
नियमं चाह ॥ वेदास्रं योनिकुंडं शशिदलममलं वह्निकोणं सुवृत्तं षट्-
कोणं पद्मकुंडं गजभुजमभितः पूर्वतो वा क्रमेण ॥ वृत्तं वा वेदकोणं
सुरपतिशिवयोर्मध्यभागे च वेद्यास्त्रिंशद्भि ३० श्चांगुलैर्वा रविभिरिह
समस्तानि कुंडानि यज्ञे ॥ ३४ ॥ अथ पंचकुंड्येककुंडीपक्षयोः कुंड-
निवेशनमाह ॥ हरिच्छंभुकुंडैर्भवेत्पंचकुंडी यदेकं तदा पाशिचंद्रेश-
दिक्षु ॥ अनुष्ठेयकार्यं स्वबुद्ध्या समस्तं विदित्वा मनोवांछितं कर्तु-
रेव ॥ ३५ ॥ अथ द्विजादीनां स्त्रियश्च कुंडविशेषकथनमाह ॥ वेदास्रं
वृत्तकुंडं शशिदलमनलास्रि द्विजान्मुख्यमुक्तं सर्वेषां वेदकोणं मखवि-
धिनिपुणैः प्राक्तनैर्वा निरुक्तम् ॥ आहुर्वृत्तानि चान्ये क्षितिसुरमुखतो
योषितां यज्ञविद्भिः प्रोक्तं सद्योनिकुंडं सकलमुनिमतं सर्वकार्यार्थं-

सिद्धयै ॥३६॥ अथ कुंडानां फलान्याह ॥ श्रीसिद्धिश्चतुरस्रके सुत-सुखं योनौ दले मंगलं त्र्यस्त्रे शत्रुविनाशनं सुखचयो वृत्तेऽगकोणे कृतौ ॥ स्याद्विद्विष्टापहृतिः सुवृष्टिरमले पद्मेष्टकोणे शुभं प्राचीशंमुदिगंतगे जय-धनं वृत्तेऽब्धिकोणेऽपि वा ॥३७॥ अथ हवने कुंडमानमाह ॥ दिग्भि १० र्वेभै ८ स्तु कोटौ नृपकरमपरे षट्करं पंक्तिलक्षे लक्षे स्याद्वेदहस्तं ४ सदयुतहवने हस्तयुग्मं २ सहस्रे ॥ हस्त १ श्चारत्निकुंडं शतमि-तहवनेऽरत्निकुंडं शतार्द्धे लक्षाद्धस्तैकवृद्धया दशकरमुदितं पंक्ति-लक्षांतमन्यैः ॥ ३८ ॥ अर्द्धकोटौ ककुल्लक्षहोमे १० खहग्लक्ष २० लक्षार्द्धयोः प्रोक्तनैः सूरिभिः ॥ शैल ७ बाण ५ द्विषट् ६ वह्नि ३ हस्तो-न्मितं कुंडमन्त्रोदितं सप्ततंतौ क्रमात् ॥ ३९ ॥ अथैकहस्तादृश-हस्तपर्यंतं कुंडभुजमाह ॥ अंगुल्यो वेदपक्षा २४ निगमहुतभुजः ३४ क्ष्माचतु ४१ श्चाष्टवेदा ४८ रामाक्षा५३ नागबाणा५८दहनरसमिता६३ शैलषट् ६७ पक्षशैलाः ७२ ॥ वेदास्रे बाणशैलाः ७५ शयत इह यवा व्योमशून्यं० शरः ५ खं० पंचां ५ गं ६ नीर ४ मद्रि ७ गगन० नगमिता ७ पंक्तिहस्तांतमुक्ता ॥ ४० ॥ अत्र हस्तादिक्षेत्रफलकथनार्थं श्लोकोऽयम् ॥ हस्तात्क्षेत्रफलं हि षण्मुनिशराः ५७६ पक्षेषु चंद्रेंदवो ११५२ नागाक्ष्यद्रिधराः १७२८ कृताभ्रहुतभुक्पक्षाः २३०४ खना-गेभद्दक् २८८० ॥ षड्बाणाब्धिगुणा ३४५६ द्विवह्निखजलं ४०३२ नागाभ्रषट्सागरां ४६०८ स्तोयेभेंदुशरा ५१८४ खषण्मुनिशराः ५७६० स्यात्पंक्तिहस्तावधि ॥ ४० ॥ अथ सर्वकुंडानां योनेर्दिङ्नि-यममाह ॥ त्रयाणां कुंडानां यमादिशि बुधैर्योनिरुदिता सदा सौम्याग्रा स्यादितरशरकुंडानि सुमते ॥ प्रतीच्यां तद्योनिर्भवति मुखमैंद्र्यां दिशि मखे न कोणे योनिः स्याद्विज हवनयोनावियमपि ॥ ४१ ॥ अथ कुंड-द्वारे परिभाषा ॥ यो भूपहस्तावधिहस्ततः स्याद्व्यासः सहस्तात्मक एव कल्प्यः ॥ अत्रांगुलं पूर्वमतो यवः स्याद्यूका ततः स्यात्क्रमतोऽक्ष

संज्ञा ॥ ४२ ॥ अथ कुंडोद्धारं विविक्षुस्तत्प्रकृतिभूतं चतुरस्रमाह ॥ सद्व्यासं द्विगुणां द्विपाशसहितं तुर्यांशचिह्नान्वितं प्राचीपश्चिमशंकुगं सुमतिना कृत्वा ततः कोणयोः ॥ धृत्वा तत्करतः शशांकहरितं व्याकृष्य चिह्नं ततो योनिर्वांछितसिद्धिदं श्रुतिभुजं कुंडं भवेदिंद्रदिक् ॥४३॥ अथ योनिकुंडमाह ॥ यूकायुग्म २ समेतभूयवयुतैः पंचांगुलैः क्षेत्रतः सूत्रं बन्धय चन्द्रखंडयुगलं २ कर्णाग्रिमानाल्लिख ॥ पश्चात्साधरणद्वयेन पुरतोऽकाद्योनिकुंडं स्फुटं सत्पुत्रप्रदमुल्लसच्छवियुतं स्याद्वह्निदिक्संस्थितम् ॥ ४४ ॥ अथार्द्धचन्द्राकारकुंडोद्धारं पूर्ववृत्तेनाह ॥ नन्दक्ष्मां १९ गुलकैर्धरायवधरार्यकैषु लिक्षान्वितैर्वृत्तार्द्धं गुणतोऽथवा भवति यत्कर्कटिकेन द्विज ॥ प्रत्यंचां कुरु तत्परं शशिदलं मांगल्यपुष्टिप्रदं धर्माशास्थितमुल्लसच्छवियुतं श्रीसप्ततंतौ श्रुतम् ॥ ४५ ॥ अथ त्र्यस्रिकुंडमाह ॥ स्वाभिष्टकेदारपुरो गजांगुलं श्रोण्योश्च संवर्ध्य रसांगुलं ततः ॥ श्रोण्यंततः सूत्रयुगं पुरोऽगके देहीति त्र्यस्री रिपुनाशनं भवेत ॥ ४६ ॥ अथ वृत्तकुंडम् ॥ विश्वांगुले १३ वेंदयवद्वियूकापंचान्वितैः सत्कुरु वृत्तकुंडम् ॥ शांतिप्रदं विप्रनृपादियोग्यं प्रोक्तं मुनींद्रैः सलिलेशदिक्स्थम् ॥ ४७ ॥ अथ षडस्रिकुंडम् ॥ वृत्तेऽष्टादशभिर्भुवोनिहि भुजोरिन्दोर्दिशः षड्गुणांस्तुल्यान्वै विधृते तदुन्मितगुणे दत्त्वैककं प्रोज्झ्य वा ॥ तान्संध्यंगभवान्वृतिं च सकलां संमार्जयेद्यद्भवेत्सम्यग्वोत्कलिकं षडंशमनिलाशास्थं मृतिच्छेदकम् ॥ ४८ ॥ अथ प्राचीनराघवभट्टादिकृतं समषडस्रं कुंडम् ॥ शक्रे १४ रश्वे ७ लोंचनाभ्यां विदध्याद्वृत्तं तस्मिन् चिह्नषट्कं समानम् ॥ दद्याद्बाहून्षट्समाश्चेंद्रदिक्तो वाताशास्थं स्यात्षडस्रं रिपुघ्नम् ॥ ४९ ॥ अथ पद्मकुंडमाह ॥ स्याद्रामैः ३ प्रथमं द्वितीयमरिभि ६ स्तार्तीयकं भानुभिः १२ शक्रैः १४ सप्तभि ७ राम्रिभि ३ श्चरमवृत्तं तन्नृपांकांकितम् ॥ धृत्वा दिग्विदिशोः शरांतरमपाकाकाटकं चोर्ध्वतः पत्राण्यष्ट कुरु क्षपापतिहरित्कुंडं

कजं वृष्टिदम् ॥ ५० ॥ अथ पद्मकुंडस्य स्वरूपखनने आह ॥ स्वायामोच्चाकर्णिका पूर्ववृत्तयुग्मे वृत्तैः केसराः षोडश स्युः ॥ मध्यं हित्वा कर्णिकां सत्कुरु त्वं पद्मं कुंडं साधुसर्वस्वनित्या ॥ ५१ ॥ अथाष्टास्रिकुंडमाह ॥ धृत्या १८ पंचभिरिंदुवा १ रविचिते वृत्ते विदध्यादपागिंद्राग्न्यन्तरचिह्नतो वसुगुणांस्तुल्याञ्छरांकांतरे ॥ तन्मध्येऽष्टगुणांकरेण च वृतिं संमृज्य सम्यग्भवेदष्टास्युत्कलिकं त्रिलोचनहरिच्चक्षुःप्रियारोग्यदम् ॥ ५२ ॥ अथ बहुसंमतं समाष्टास्रमाह ॥ शक्रे १४ द्वाभ्यां २ वह्निभिर्वृत्तमस्मिन्दिग्भिः १० शैलै ७ रब्धि ४ रग्निं च मध्यात् ॥ दद्यात्तुल्यान्नागबाहूरुवृत्तं कुंडं नागास्रं भवेच्छंभुदिक्स्थम् ॥ ५३ ॥ अथ कैश्चित्कर्मविशेषे पंचास्रिकुंडमुक्तं तदाह ॥ बाणेंदु १५ प्रमितांगुलैः कृतयवैर्बाणैः ५ समासादिते वृत्तेऽष्टादशभि १८ र्द्वयेन २ निगमै ४ र्देहीषुसंख्यान्भुजान् ॥ तुल्यांस्तुल्यकरास्त्रिशक्रहरितः कुंडं भवेन्मार्जनाद्वृत्तस्य त्वभिचारशांतिकविधौ सद्यश्चमत्कारकम् ॥ ५४ ॥ अथ नेत्ररमणीयमुत्कलिकं पंचास्रकुंडमाह ॥ आकृत्येषुभि २२ । ५ रिंदुना १ श्रुतिमितै ४ र्वृत्तेऽत्र वैकांतरादुत्कृत्यंगुल २६ मार्गणा ५ ङ्कित इतो दत्वेषुसंख्यान्भुजान् ॥ प्राच्यामुत्कलिकं शरास्रिवलयं संमृज्य कुंडं कुरु त्वं,रम्यं त्वभिचारकर्मशमनं पूर्वज्ञविद्वत्स्मृतम् ॥ ५५ ॥ अथ सप्तास्रिकुंडमाह ॥ इंद्रांगुलैः १२ श्रुतियवै ४ र्वलयं च तस्मिन्नव्यंगुलै १२ र्युगयवैः ४ शरसंख्यकाभिः ५ ॥ यूकाभिरिंद्रहरितोऽद्रिभुजान्विधेहि स्याद्भूतदोषशमनं समसप्तकोणे ॥ ५६ ॥ अथ कैश्चित्कृतमुत्कलिकं सप्तास्रिकुंडमाह ॥ नृपैः १६ सागरै ४ र्मार्गणै ५ र्वृत्तमिन्द्रे १४ र्गुणैरत्र वै सप्तजिह्वाः पुरोऽकात् ॥ निधेहि त्वमेकान्तरां भूतशांत्यै भवेदुत्कलं तुल्यसप्तास्रिकुंडम् ॥ ५७ ॥ अथ खातादिखननलक्षणम् ॥ समेखलं खातमुशंति यज्ञे क्षेत्रेण तुल्यं त्वपरे विमेखलं वदन्ति चंद्रांगुल १ तुल्यकंठं पक्षांगुलं वा मखमार्गकोविदः ॥ ५८ ॥

अथ बहुसंमतं खातकंठमेखलापरिमाणं मेखलानां श्रेष्ठत्वादिकथनं चाह ॥ खातार्थं खन मेदिनीमधरतः प्राणेंदु १५ तुल्यांगुलैः कंठार्थं त्वभितस्त्यजांगुलभुवं १ खेटांगुलैश्चोपरि ॥ श्रुत्य ४ ग्नि ३ द्वि २ मितांगुलैस्तु विततास्तुंगास्तथा मेखलास्तिस्रः स्युर्गललोचनाक्षितिमितास्ताः श्रेष्ठमध्याधमाः ॥ ५९ ॥ अथ पंचमेखलापक्षमाह ॥ उच्चाद्यांक ९ मितांगुलैस्तदपराशैलैर्भुवा १ पंचभि ५ स्तातीयेषुभिराग्नि ३ भिस्त्रिभिरथान्या वह्निभिः ३ सागरैः ४ ॥ शैलैस्तच्चरवाभुवा १ रसमितै ६ र्वेदैस्तथा सागरैश्चाद्भिः ४ शत्रुभिराग्निभिस्त्वथ रसै ६ श्चेभै ८ स्थार्कैः क्रमात् ॥ ६० ॥ अथ पद्माकारकरणं नाभेराह ॥ पूर्णनाग्धिभि ४ रद्रिभिः ७ शुभवृतिः सा कर्णिका स्यात्ततः क्षित्यञ्जेन १ रसै ६ र्द्वितीयसुवृतौ स्युः केसराः षोडश १६॥ भद्रेणांगमितैः ६ शरैः ५ कृतवृतौ कुर्वष्टपर्णान्यसौ नाभिः पद्मनिभोऽम्बुजेन कथितः कुंडानुरूपोऽथवा ॥ ६१ ॥ अथ पद्मनाभिदलानां साधनमाह ॥ यवाभा २ पंचयूकाभि ५ र्मितसूत्रेण याज्ञिक ॥ पद्मनाभिदलाग्राणि रम्याणि कुरु सर्वतः ॥ ६२ ॥ अथ योनिलक्षणम् ॥ अश्वत्थदलसंनिभांतरवटाधोविस्तृतोर्ध्वस्थिताद्धेन्दुद्वंद्वयुताजिनांशपरिधिर्विष्वक्तथैवोन्नता ॥ निम्ना कुंडमिता जिनांशमुखतो व्यासा द्विदीर्घा मता मूलच्छिद्रयुतात्मनालरुचिरा योनिर्गुणांशायता ॥ ६३ ॥ अथ सर्वकुंडानां नाभिप्रमाणमेखलाप्रमाणमाह ॥ द्व्यंगुलोच्चा स्मृता नाभिर्विस्तृता चतुरंगुलैः ॥ यदैका मेखला कार्या षडंगुलततोन्नता ॥ ६४ ॥ अथ मतांतरेण त्रिमेखलाप्रकारं तत्र योनिमानं चाह ॥ चेदर्कप्रमितांगुलोन्नतततताः कांच्यो हि योनिस्तदा दीर्घा बाणधरांगुलै १५ स्तु वितता पूर्णेन्दुतुल्यांगुलैः १९॥ तिस्रः स्युः श्रुतिसंमितांगुलततास्तुंगाश्च सर्वा बुधैस्ताः कुंडाकृतयो धरांगुलमितात्कंठाद्बहिः शंसिताः ॥ ६५ ॥ अन्यैः पंचकं चोक्तम् । अथो शिष्टकृततद्व्यवस्थापनमाह ॥ अथवा मेखलायुग्मं मेखलात्रितयं पुनः ॥ मेखलापं-

चक्रं प्रोक्तमल्पमध्योत्तमं क्रमात् ॥ ६६॥ अथाल्पहवने कुंडकरणाशक्तौ स्थंडिलकरणम् ॥ कनकरुचिरकांत्या सन्मृदा स्थंडिलं वा करमितचतुरस्रं कूर्मपृष्ठोन्नतं च ॥ बुध कुरु कृततुल्यै ४ रंगुलैरुन्नतं वांगुल १ मितमपि रम्यं स्वल्पहोमे मुदा त्वम् ॥ ६७ ॥ अथ ग्रंथकर्ता स्वजनकाभिधानादिकं ग्रंथप्रयोजनांतरं चाह ॥ श्रीमज्जुन्नरपत्तने शिवगिरेरासन्नसंस्थे सदा यः श्रीकृष्णरतो गदाधर इलानाथप्रपूज्योऽभवत् ॥ तत्सूनुर्गणकाग्रणीर्विमलधीर्गोविंदसंज्ञः कविर्लीलावागकरोदमुं सुसरलं ग्रंथं विपश्चिन्मुदे ॥ ६८ ॥ अथ ग्रंथसमाप्तौ शकादि आह ॥ गुणशशिरसचंद्रैः १६१३ संमिते शाककाले सहसि बहुलपक्षे कर्मतिथ्यां शशांके ॥ विबुधगुरुकवीनां हर्षदोऽयं स्फुटार्थैः समगमदतिपूर्तिं कुंडमार्तंडसंज्ञः ॥ ६९ ॥ अथ ग्रंथाशयो विपश्चितां सुगमः दुर्बुद्धीनां तु दुर्गम इत्यत्राह ॥ ये दर्भगर्भाग्रधियो हि तेषां ग्रंथाशयः सूक्ष्मतरो विभाति ॥ ये मूढमुख्या भुवि संति तेषां स्यादिंद्रवज्राहतपक्षतुल्यः ॥ ७० ॥ अथ ग्रंथस्य सकलवृत्तसंख्या ॥ नवरस ६९ मितवृत्तैर्गुंफितं संभ्रमाद्यः पठति भुवि भवेत्स ज्ञानवान्विश्ववंद्यः ॥ सुतधनसुतसंपत्कामपूर्णोपकारिबुधकुलकमलेंदुः कुंडमार्तंडमेनम् ॥ ७१ ॥

इति श्रीमत्पल्लिपत्तनानंतदैवज्ञकविरचितसुप्रभाख्यो कुंडमार्तंडः समाप्तः ॥ ४ ॥

अथ कुंडकौमुदीग्रंथः पंचमः ५ ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ जयति जगति रामो जानकीजानिरेको दशरथकुलदीपः सच्चिदानंदरूपः ॥ दशमुखमुखशत्रुच्छेदविच्छेददक्षो भृगुकुलतिलकोद्यन्मानहानिप्रवीणः ॥ १ ॥ सूनोः श्रीपुरुषोत्तमस्य तनयः श्रीमन्मुकुंदस्य यः शंभुः शंभुरिवापरो दृढमतिः श्रीरामसंचिंतने ॥

तत्सूनुर्विविधागमेषु निपुणः श्रीरामदेवानुजो ब्रूते कुंडमिहांगभेदसहितं श्रीविश्वनाथः सुधीः ॥ २॥ यद्यपीदमुदितं बहुधाद्यैर्दूषितं तदतिमंदबुद्धिभिः ॥ आशयानवगतेरिति तेषां हार्दमात्रमिह वर्ण्यते मया ॥ ३ ॥ भूमिं परीक्ष्य परिगृह्य निजोचितां तां शल्यं निरस्य च महाकपिलोक्तमार्गात् ॥ हस्तोच्छ्रितां प्रकृतितोऽर्धकरोच्छ्रितां वा संपाद्य यत्नमुखतोऽथ समा विदध्यात् ॥४॥ दंडौ सूक्ष्माग्रकौ द्वौ सरलसममिती मूलभागे नियुक्तौ कीलाद्यैस्तिर्यगन्त्यं सममितिमुभयोपांतयोश्चांतरांकम् ॥ अग्रद्वंद्वेऽवनिस्थे सति चलति यतश्चिह्नतो मूलबद्धलंबो देशं खनेत्तं तदितरमथवा पूरयेत्स्थैर्यमांके ॥ ५ ॥ यद्बाहुलेनैव भवेत्समत्वं यथा तथा नैव कदाचनान्यतः ॥ कृत्वा जलेनैव ततः समत्वं तत्रैव कुर्यात्खलु वास्तुपूजनम् ॥ ६ ॥ शंकुर्याज्ञियसारदारुघटितो हस्तार्धमानोऽव्रणः सूक्ष्माग्रः सरलो दृढः समतलो मूले पृथुः स्थापितः ॥ भूमौ यः स्थिरतामुपैति निहतो यो वा विशेत्तादृशो मूले सूक्ष्ममुखोऽपि मूर्द्धनि तथैवार्द्रो भवेत्सर्वदा ॥ ७ ॥ न न्यूना न तथाधिका भवति या संकृष्यमाणा नवा श्लक्ष्णा रोमशकर्कशा कुशमयी वेणूद्भवा बाल्वजी ॥ यद्वा मुंजशणोद्भवांगुलिदलस्थूलोक्तमानाधिका रज्जुः पाशयुगान्विता निगदिता वा बालतूलोद्भवा ॥ ८ ॥ अंगुलं त्रिविधं त्वत्र प्रोक्तं मात्रादिभेदतः ॥ मात्रांगुलं तथा मुष्ट्यंगुलं देहजमेव तु ॥ ९ ॥ मध्यांगुलेर्मध्यमपर्वदैर्घ्यमानं तु मात्रांगुलमुत्तमं स्यात् ॥ पादोनमेतद्गदितं तु मध्यमं पर्वार्धमानं त्वधमं तु तत्स्मृतम् ॥ १० ॥ आचार्यहस्तस्य कनिष्ठिकाद्यैश्चतुर्भिरंगुष्ठविवर्जितैर्यः ॥ बद्धस्य मुष्टेस्तु तुरीयभागो मुष्ट्यंगुलं प्रोक्तमिहाभियुक्तैः ॥ ११ ॥ समस्थिते वा प्रपदोच्छ्रिते वा पुंस्यूर्ध्वबाहौ दशमो विभागः ॥ तद्द्वादशांशः कतिसूनुमुख्यैः[1] प्रोक्तं तथा देहजमंगुलं तु ॥ १२॥ जिनांगुलैर्हस्त इह प्रदिष्टोऽरत्निः कलांशो-

१ कात्यायनमुख्यैरित्यर्थः।

नितहस्त एव ॥ वस्वंशहीनस्तु स एव रत्निर्मुष्टिश्च पूर्वैर्गदितो महाद्भिः ॥ १३ ॥ यवो यूका च लिक्षा च वालाग्रं रथरेणुकः ॥ त्रसरेणुः परमाणुरंगुलाद्यष्टमोंशकः ॥ १४ ॥ प्रासादे मंडपे चैव मात्रांगुलमुदीरितम् ॥ मात्रांगुलादित्रितयं कुंडे ग्राह्यं यथामति ॥ १५ ॥ अथापरोक्षश्रुतिमूलकल्पे कात्यायनोक्तं खलु देहलब्धम् ॥ अतस्तदेवाश्रयणीयमत्र न कल्पबाध्यागमबोधितं न ॥ १६ ॥ बाध्यबाधकता हि विरोधे सोऽत्र नास्ति विषयस्य भेदतः ॥ अन्यथा तु श्रुतिरेव बाधिकेत्येवमेव न कथं त्वयोच्यते ॥ १७ ॥ हेमादिकल्पद्रुमुखैः पुरातनैर्नायं हि पक्षो बहुभिः समाश्रितः ॥ समाश्रितश्चास्मदुदीरितोऽभितो ग्राह्यः स एवेत्यवभाति युक्तम् ॥ १८ ॥ भूमेः शंकोर्विपादोच्छ्रितामितगुणतः साधयित्वा सुवृत्तं मध्ये संस्थापयेत्तं दृढमुत निखनेन्मुद्गरेणाप्यवारम् ॥ हत्वा कीलैश्चतुर्भिर्दिशि दिशि विधृतैः सांप्रितुंगत्वमानैरेकीभूताग्रभागैर्भवति ऋजुरतिः स्पष्टमूर्द्धा नरः सः ॥ १९ ॥ शंकुसंमितगुणादिना कृते मंडले खरसवह्निचिह्निते ॥ शंकुभा विशति यत्र वारुणी सापगच्छति यतो हरिदिक्सा ॥ २० ॥ कृत्वा निर्गमलक्षणं परदिने छायाप्रवेशक्षणाद्यावन्निर्गममंतरालघटिकास्ताभिस्तयोरंकयोः ॥ हत्वा मध्यलवान्विभज्य स्वरसैराप्तांशतः प्राग्गुणो नीतः स्याद्धरिदिक्स्फुटायनदिशं रामोदितोऽयं विधिः ॥ २१ ॥ एकस्मान्नरभाग्रतो भुजमितां दत्त्वा शलाकामृजुं शंकोः कोटिमितां तथैव च यथा स्याद्ग्रयोः संयुजिः ॥ कोटिः प्रागपरापतेदिति कृते सैव स्फुटैंद्री भवेदित्यार्येण तु भास्करेण गदितं सिद्धांतशीर्षेमणौ ॥ २२ ॥ केंद्रस्थशंकोश्छायाग्रप्राचीसूत्रांतरं भुजः ॥ कोटिभुजप्रभावर्गद्वयांतरपदं भवेत् ॥ २३ ॥ स्थूलमेतत् ॥ कृत्वा भुजं द्विगुणमंगुलरेखिकाभिः संचालयेत्समतया नरमूलयोगः ॥ यावद्भवोदीति कृते यमसोमकाष्ठे स्यातां स्फुटे शफरतो वरुणेंद्रकाष्ठे ॥ २४ ॥ यद्वा भुजं

प्रथमतो ग्रहलाघवोक्तमानीय शंकुरुचिमानगुणोत्थवृत्ते ॥ भाग्रात्प्र-
सार्य गुणवत्तु ततस्तु केंद्राद्दद्याद्गुणं च भुजमध्यकृतांकलग्नम् ॥ २५ ॥
एवं कृते च भुज एव तु याम्यसौम्यकेन्द्राद्गुणः स्फुटतरे वरुणेंद्रकाष्ठे ॥
स्यातां तदा तु तत एव सकृत्प्रयत्नादेवं स्फुटास्तु सकला हरितो भवंति
॥ २६ ॥ मध्याह्ने परमाल्परुङ्नरतलाद्रेखा प्रभाग्रं गता स्यात्सौम्याथ
दिगंतरं कियदपि त्यक्त्वा तमग्रे द्दयात् ॥ प्राक्प्रत्यक्छफरौ विधाय
निपुणं कार्कोटकेन द्वयोर्दद्यात्सूत्रमितीरिता स्फुटतरा प्राची बुधैः सर्वदा
॥ २७ ॥ दीर्घे वंशादिदंडे सरलसमतते नाग्रसंप्रोतकीले बद्धा लंबौ
समानौ समभुवि विधृते सौम्यदिग्वक्रपुंसाम् ॥ ध्रौवे दंडे सलंबे समस-
मयदृशालोचिते लंबजांकद्वे द्वे रेखा विधोर्दिक्छफरयुगवशात्प्राग्वदेंद्री
ततः स्यात् ॥ २८ ॥ पुष्पे पौष्णे वारुणे राक्षसादावन्यस्मिन्वा सार्धह-
स्तत्रयोच्चे ॥ इंद्राशायां वा परस्यामुदग्वा वेधात्प्राचीप्रत्यगाशे भवे-
ताम् ॥ २९ ॥ स्वेष्टक्षेत्रगुणे जिनांशदशकं संवर्द्ध्य पाशद्वयं कृत्वा
प्राच्यगुणां तदंतनरयोः क्षिप्त्वार्द्धसंकर्षणे ॥ कृत्वा वाग्गुदगाशयोरुभ-
यतो दत्त्वा च शंकू तयोर्दत्ता रज्जुरितीरिते बुधवरैर्याम्योत्तरे द्वे दिशौ
॥ ३० ॥ प्राक्सूत्रं जिनभाजितं हयलवैरूनं विधायांततः शिष्टेनोभ-
यतः कृतौ शफरकौ नीतो गुणः सौम्यदिक् ॥ व्यासार्धेन दिगंकतो
विधुदलैः संजातमस्यांतरा दत्ते सूत्रयुगे ४ भवेत्समभुजं क्षेत्रं चतुः-
कोणकम् ॥ ३१ ॥ वसुदृशरविहस्ता मंडपाः स्युः कनिष्ठा रविमनुनृ-
पहस्ता मध्यमास्ते प्रदिष्टाः ॥ नृपधृतिनखबुद्धारत्नयश्चोत्तमास्ते सम-
समचतुरस्राः सर्व एते भवंति ॥ ३२ ॥ स्तंभास्तु सारमखदारुभवाः
प्रशस्ता वेणूद्भवाः क्रमुकजा ऋजवो दृढाश्च ॥ अन्येऽपि निंदिततरुप्र-
भवाः समानाः स्युः पंचहस्तविमिता रविसंख्यकाश्च ॥ ३३ ॥ वेदि-
कोणगदिता युगसंख्याः श्रेष्ठमण्डपदलप्रमितोच्चाः ॥ श्रेष्ठ एव तु कनि-
ष्ठमध्ययोरष्टहस्तविमिताः सचूडकाः ॥ ३४ ॥ भूमिं मंडपमध्यगां

नवलवां कृत्वा चतुर्भिर्गुणैरारभ्याग्निदिशं खनेन्निखिलकाष्ठाग्रेषु गर्त्ता-द्वहिः ॥ स्तंभाक्षांशमितांस्तथैव चतुरो मध्येऽथ गर्ते क्रमात्स्तंभान्षोडश रोपयेद्दृढतर प्रागुक्तमानान्बुधः ॥ ३५ ॥ दत्त्वा काष्ठचतुष्टयं सममिति प्रांतद्वयच्छिद्रवन्मध्यस्तंभशिखासु तिर्यगपरं स्तंभेषु बाह्येष्वपि ॥ त्रीणि त्रीणि दिशां दिशं प्रति तथा काष्ठानि कर्णादिना कोणादौ च तथा-पराणि शिखराकारं च मध्ये चरेत् ॥ ३६ ॥ कनिष्ठमध्योत्तममंडपेषु द्वाराणि चत्वारि दिगंतराणि ॥ गजाब्धिभिर्नेत्रशरै ५२ स्तथांगबाणैः ५६ क्रमादंगुलकैर्भवंति ॥ ३७ ॥ नारिकेलकदलैः सुपल्लवैर्वेणुभिः शुभकटैरसंभवे ॥ द्वारवर्जमभितस्तथोपरि च्छादयेदखिलमंडपं बुधः ॥ ३८ ॥ सफलदलकयूपैर्नारिकेलद्रुमोत्थैः क्रमुकतरुभवैर्वा कादलैर्द-र्पणैश्च ॥ विविधवसनबंधैश्चामरैर्घंटिकाभिर्विविधरचितभांडैर्भूषयेत्सर्व-यूपान् ॥ ३९ ॥ चंद्राटोपैश्चामरैः पट्टकूलैः पौष्पस्रग्भिर्दर्पणैर्घं-टिकाभिः ॥ खाद्यैर्भक्ष्यैः सत्फलैः पूरिभेदैर्भूषां कुर्यान्मंडपे पल्लवैश्च ॥ ४० ॥ वेदीमंडपमध्यकोष्ठविमिता हस्तप्रमाणोच्छ्रया रामा ३ ब्ध्य ४ क्ष ५ हयां ७ क ९ रुद्र ११ विमितैर्वांशैर्भवेदुन्नता ॥ मध्ये दर्पणसंनिभा समतमास्त्रास्त्रा सुपार्श्वा तथा पक्कापक्कसमेष्टिकाभिरथवा-लाभे मृदा सुंदरा ॥ ४१ ॥ सामान्योक्ता वेदिकेयं प्रतिष्ठा त्वारामादौ पद्मिनीपद्मतुल्या ॥ विंशत्यस्त्रा श्रीधरी स्याद्विवाहे राज्ञां पट्टे स्यात्सु-भद्रा सभद्रा ॥ ४२ ॥ प्लक्षोदुंबरबोधिवृक्षवटजाः पूर्वादिदिक्षु क्रमाद्वा-ह्योपांत्यविपर्ययेण गदिता वाद्यांत्यवैपर्यतः ॥ एषामेकतरूद्भवाश्च सकलालाभे शमीजाश्च वा जंबूखादिरतालकान्यतमजास्तेषामभावे शुभाः ॥ ४३ ॥ निश्छिद्रा ऋजवः समार्द्रतनवश्चूडान्विताः सत्त्वचः शाखाः पंच ५ रसा ६ द्विहस्तविमिताः खाग्न्यं ३० गुलैर्वर्त्तुलाः ॥ द्वारेभ्यो बहिरेव हस्तविमिते देशे निखेया बुधैर्द्वावां पंचमभागतो युगुलशो हीनादिकेषु क्रमात् ॥ ४४ ॥ तिर्यग्द्विहस्तायतिकानि

हस्तपादार्द्धवृद्धान्यधमादिकेषु ॥ प्रांतद्वयच्छिद्रयुतानि दद्याद्दैर्घ्यार्ध-
मानान्यथवा शिखासु ॥ ४५ ॥ स्युर्वैष्णवे मूर्धनि शंखचक्रगदांबुजानि
स्वतरोस्तु तेषाम् ॥ दशांगुलैर्द्वादशभिर्युगाब्जैर्वेदांगुलैः सार्धयुगैः
शरैर्वा ॥ ४६ ॥ शैवे शूलत्रयं स्यात्प्रतिदिशमुभयप्रांत्ययोर्मध्यदेशे
वैकैकं मध्यशृंगं ह्यृजुगदितमथो वक्रमन्यद्द्वयं तु ॥ तद्दैर्घ्यं चांगुलैः
स्यान्नवभिरथ भवै रामचंद्रैः क्रमात्तु व्यासो वेदांशतः स्यादवटनिखननं
द्वित्रिवेदांगुलैस्तु ॥ ४७ ॥ शतार्द्धे ५० होमे च शते १०० सहस्रे १००
युते च लक्षे १००००० प्रयुते च १०००००० कोटौ १००००००० ॥
कुंडं क्रमाद्रत्निररत्निहस्तद्व्यब्ध्यंगनागैस्तु करैः प्रदिष्टम् ॥ ४८ ॥
यद्धस्तमात्रं गदितं च लक्ष्ये लक्षस्य वृद्ध्या तु करस्य वृद्धिः ॥
यावद्दश स्युर्हुतमंददाह्यहोमद्वये तत्क्रमतोऽवधेयम् ॥ ४९ ॥ पंचायु-
तेषु ५००० नियुते १००००० प्रयुते १०००००० द्विनिघ्ने
२०००००० पंचाहते ५००००००० दशहते १०००००००० गदितं
क्रमेण ॥ कुंडं करैर्गुणमितैः ३ श्रुति ४ भिश्च बाणै ५ रंगै ६ र्हयै ७
र्नृपमितै १६ श्चिरदाह्यहोमे ॥ ५० ॥ शतार्द्धे ५० च शते १००ऽक्ष-
भ्रे ५०० सहस्रे १००० पर्वभिः क्रमात् ॥ नागैः ८ सूर्यै १२ र्नृपैः
१६ कुंडं नखैः २० कैश्चित्समीरितम् ॥ ५१ ॥ तथायुते च १०००
नियुते १००००० प्रयुते १०००००० कोटिसंमिते १००००००० ॥
अर्बुदे १००००००००० च करैः कुंडं चंद्र १ द्व्य २ ब्ध्यं ४ ग
६ नाग ८ कैः ॥ ५२ ॥ प्राच्यां स्तंभेऽब्धिकोणं भगसदृशमथो भोगदं
वह्निकाष्ठे याम्ये खंडेंदुमृत्यौ कुणपदिशि तथा वैरकृत्त्र्यस्रिकुंडम् ॥ वृत्तं
शांतौ प्रतीच्यां पवनदिशि तथोच्चाटने स्यात्षडस्रं सौम्ये पुष्टौ च पद्मं
सुखजनकमथाष्टास्रमीशानकाष्ठे ॥ ५३ ॥ आचार्यपूर्वानलयाम्यगर्त्ताः
सौम्यानना दक्षिणयोनियुक्ताः ॥ प्रागाननास्त्र्यस्रिमुखास्तदन्ये तथा
प्रतीचीस्थितयोनिकाश्च ॥ ५४ ॥ वेदीभिन्नैः सर्वतो वेदिपादं त्यक्त्वा

कुर्यात्सांगगर्त्तांन्यथोक्तान् ॥ कैश्चित्प्रोक्तं चांतरं रामचंद्रैर्मध्ये वेदीकुंड-
योरंगुलैस्तत् ॥५५॥ प्रागायामेऽक्षशंकून्दलदलयुगुलप्रांतमध्येषु दत्त्वा
पाशौ तन्मानरज्वोरपि समनरयोः प्रास्य मध्यांककर्षात् ॥ दत्त्वान्यच्छं-
कुयुग्मं यमधनददिशोर्दिङ्नरक्षिप्तपाशैर्मध्याकर्षैश्चतुर्भिर्भवति सम
गुणैः ३ शंकुभिश्चाङ्घ्रिकोणम् ॥ ५६ ॥ स्वेष्टक्षेत्रगुणे जिना २४ ष्ट ८
मलवेनाद्येऽतरा तन्मिते शंकुं पार्श्वयुगे निखाय च ततः प्रांतद्वये च चा-
परौ ॥ पाशौ पश्चिमदिक्स्थयोश्च नरयोः क्षिप्त्वार्द्धसंकर्षणाच्छ्रोणीशक्र-
दिशास्थयोश्च नरयोरंसौ च संसाधयेत् ॥ ५७ ॥ कृत्वा स्वेष्टं द्विनिघ्नं
गुणमथ दलयोः पादयोश्चिह्नयुक्तं प्रांतद्वंद्वस्थपाशौ वरुणमघवदिक्च्छं-
कुयुग्मे प्रवेश्य ॥ आकृष्टे पादचिह्ने प्रतिविदिशमथो रोपितेष्वङ्घ्रिशं-
कुष्वर्द्धांके वेदसूत्रैर्भवति समभुजं पूर्वदिश्यङ्घ्रिकोणम् ॥ ५८ ॥
वेदास्रव्याससूत्रे जिन २४ लवलविते सौम्यदिश्यक्षभागान्संवर्द्धचैकस्य
रामै ३ र्गगनकरलवैः २० साकमंकं च कृत्वा ॥ कर्णाङ्घ्र्यंशेन मध्यान्नि-
ऋतिदहनयोः कोष्ठयोरर्द्धचंद्रे कृत्वा सूत्रद्वयांतावधि गुणयुगुलादंकितं
स्याद्भगाभम् ॥ ५९ ॥ कोणास्रांतस्थसूत्रे जलधिकर २४ लवे वेद ४
भागाँल्लवस्य १ विंशांशाश्चांद्रिचंद्रा १७ न्धनदयमदिशोरर्द्धशः
प्रोक्ष्य चिह्ने ॥ संपाद्यावाच्यचिह्नाच्छुभवलयदलं शिष्टसूत्रेण कृत्वा
सौम्येज्यासूत्रदानाद्भवति शशिदलं मारणे याम्यकुंडम् ॥ ६० ॥
कोणास्रव्याससूत्रे करगजविधु १८२ भिर्भाजिते खाभ्रचंद्रान् १००
पादोनाच्छ्रोणिभागे यमधनददिशोरर्द्धशो वर्धयित्वा ॥ पादोनांश्चंद्र-
कर्णान्मघवादिशि तथा चिह्नयित्वा समानै रामैः सूत्रैस्त्रिकोणं भवति
कुणपदिक्संस्थितं वैरकारि ॥ ६१ ॥ जिनलवलवितायां मध्यरज्ज्वां
लवस्य शरकरलवयुक्तैः सार्द्धरामेंदुभागैः ॥ सममितिकृतसूत्रभ्रामणा-
न्मध्यचिह्नाद्भवति वरुणदिक्स्थं शांतिदं वृत्तकुंडम् ॥ ६२ ॥
अष्टांशीकृतवेद ४ कोणविततेरर्द्धस्वभांशोनितं क्षिप्त्वैकं लवमित्यनेन

वितितेरर्द्धेन वृत्तं भ्रमात् ॥ कृत्वा तेन च षट्कचिह्नितमथो ज्याषट्कदाने कृते वृत्तस्यापि च मार्जने पवनदिक्संस्थं षडस्रं भवेत् ॥ ६३ ॥ कोणास्रव्याससूत्रे जलधिकरलवे कर्णिकावृत्तमाद्यं रामांशैः केसरार्थं बहिरपि च ततः षड्भिरंशैर्द्वितीयम् ॥ मध्यावन्यैर्दलानां बहिरपि च ततो नंद ९ भागैस्तृतीयं सूर्या १२ शैः स्याच्चतुर्थं बहिरपि च ततो वक्रगार्थे दलानाम् ॥ ६४ ॥ भागस्याग्नींदुनोनैः शरविधु १५ लवकैः पंच पं तद्यदर्धे संपाद्यंते दलानां चरमपरिधिनाग्राणि लग्नानि सम्यक् ॥ कृत्वा व्यासार्द्धतुंगां परित इह खनेत्कर्णिकां प्रोज्झ्य मध्ये किंजल्कानष्ट कुर्यान्नृपतिपरिमितान्वांबुजं पुष्टिदं स्यात् ॥ ६५ ॥ कोणास्रव्याससूत्रे करनवविधुभि १९२ र्भाजिते नंदचंद्रा १९ न्संवद्धचैतद्वितत्या बहिरपि च चरेदन्यमस्रास्रमस्य ॥ प्रत्यस्रं पार्श्वयुग्मे युगुल २ रस ६ लवैर्व्यंघ्रिभिश्चांकयित्वा युग्मे युग्मेऽङ्घिसूत्रैर्जनितवसु ८ भुजं जायतेऽष्टास्रमीशे ॥ ६६ ॥ प्रकारांतरेण ॥ वेदास्रव्याससूत्रे जिनलवलविते वह्निसंख्यैर्दशांशैः सार्द्धं भागस्य भागैः श्रुतिधरणिमितैर्वृत्तमालिख्य मध्यात् ॥ मध्येऽन्योन्यं प्रलग्नैर्दिशि दिशि विधृतैरष्टभिर्ज्यागुणैः स्यादष्टास्रं वृत्तलोपात्समभुजमिति वेशानकोणेऽष्टमं तत् ॥ ६७ ॥ प्राचीशान्योरंतराचार्यकुंडं वेदास्रं वा वर्तुलं वा विधेयम् ॥ योनिस्तस्मिन्दक्षिणस्यां निवेश्य होता तद्वत्सौम्यवक्त्रावुभौ च ॥ ६८ ॥ अत्युत्तमोऽयं नवकुंडपक्षस्तेषामभावे सकलानि तानि ॥ वेदास्रवृत्तान्यतराणि कुर्यादेषैव रीतिः खलु मध्यमे स्यात् ॥ ६९ ॥ वेदास्रमर्द्धेन्दुनिभं च वृत्तं पद्माभमेतानि चतुर्षु दिक्षु ॥ वेदास्रवृत्तानतवत्तु रौद्र्यां प्रोक्तोऽपरो मध्यम एष पक्षः ॥ ७० ॥ एकं प्रतीच्यामथवोत्तरस्यां रौद्र्यामथैंद्र्यां गदितं महद्भिः ॥ वेदास्रवृत्तान्यतरत्तदत्र पक्षोऽधमोऽयं गदितस्तृतीयः ॥ ७१ ॥ पिंगलमतेऽपि ॥ कुंडमेककरं वृत्तं मेखलाकंठनाभिवत् ॥ नित्यकर्माणि दीक्षायां शांतौ पुष्टौ समं शुभम् ॥ ७२ ॥ उत्तमा

नवकुंडी स्यात्सप्तकुंडी च मध्यमा ॥ पञ्चकुंड्यधमा प्रोक्ता कैश्चि-न्मात्स्यवचोबलात् ॥ ७३ ॥ नित्यहोमे च दीक्षायां देवतास्थापने तथा ॥ शांतौ पुष्टौ च साहस्रे होमे कुंडं करात्मकम् ॥ ७४ ॥ कोणा-स्रांतरवर्गसूत्रविमितक्षेत्रे तु तस्मिन्फलं तद्विघ्नादिकमेव तद्विगुणि-तादिक्षेत्र इष्टे फलम् ॥ तत्तन्मूलमितो गुणो निगदितस्तास्मिंश्च तस्मिन्पुनः क्षेत्रे मध्यगुणस्तु तेन रचयेत्प्राग्वद्युगास्रादिकम् ॥ ७५ ॥ दत्त्वा प्रागपरं तथैव च गुणं याम्योत्तरं मध्यतो दत्त्वैकत्र करस्य सूत्र-मथ तत्प्रान्त्येऽङ्कयित्वान्यतः ॥ एको नेष्टगुणं प्रसार्य च ततः प्रान्त्येऽ-ङ्कयित्वोभयोर्दत्तः कर्णगुणो भवेदभिमतक्षेत्रे गुणो मध्यमः ॥ ७६ ॥ आरभ्यैककरं क्रमाद्दशकरं यावत्करं त्वांगुलैः कुण्डानां युगबाहुभिर्यु-गगुणैर्व्योमाग्निलिक्षोनितैः ॥ लिक्षाभिर्गगनांघ्रिभिर्विरहितैर्नेत्रार्णवैश्चा-प्युदन्वद्भिर्नैत्रमुनींदुभिर्विरहितैर्लिक्षाभिरब्धीषुभिः ॥ ७७ ॥ लिक्षा-ष्टाभ्रविधूनितैर्नवशरैः सार्द्धैर्हविर्भुग्रसैर्यूकासार्द्धहयोनितैर्वसुरसैर्द्वचर्थै-स्तथांगाद्रिभिः ॥ लिक्षावेदशरोनितैरिति गणैः कुंडं चतुःकोणकं कृत्वा प्राग्वदथो भगाकृतिमुखान्यप्युक्तरीत्याचरेत् ॥ ७८ ॥ अन्तः-सूत्रदले रसांकलविते संवर्द्ध्य सार्द्धाद्रिदृग्भागान्विंशलवाधिकांस्तु लवयोर्वृत्तं विरच्यांततः ॥ तावन्मानगुणेन विस्तृतिगुणाक्षांशप्रमाणाः शरज्याः संपाद्य विलोक्य वृत्तपरिधिं बाणास्रिकुंडं भवेत् ॥७९॥ अंतः-सूत्रदले रसांकल ६ विते संवर्ध्य धृत्यंशकान्सार्द्धं द्व्यंशतृतीयकेन वलयं कृत्वा गुणांस्तन्मितान् ॥ केन त्यक्तदशांशकेन वलयेज्या सप्त दत्त्वा मिथो लग्नावृत्तविलोपने भवति तत्सप्तास्रिकुंडं स्फुटम् ॥ ८० ॥ न्यूनं वाप्यधिकं वापि क्षेत्रं कृत्वा प्रयत्नतः ॥ आनयेत्सर्वकुंडेषु ध्वजायमिति केचन ॥ ८१ ॥ न्यूनाधिक्ये दोषसाम्याद्विहस्तविघ्यादीनां व्यर्थ-तापत्तिभीत्या ॥ स्तुत्यर्थं त्वं स्थापने सर्वमित्याद्युक्तेर्वक्तुं युक्तमि-त्याहुरन्ये ॥ ८२ ॥ मितारत्नुल्यं खननं प्रदिष्टं योन्यादिकुंडे चतुर-

स्वविस्तृतिः ॥ यदाद्यया मेखलया सहोत्थं तदल्पहोमे विनिवेशनीयम् ॥ ८३ ॥ विस्तारवेदांह्रिलवोऽगुलं स्यात्तेनैव कंठादिकमत्र कुर्यात् ॥ एकांगुलं खातबहिस्तु कंठः प्रोक्तो बुधैर्द्व्यंगुलतस्तु कैश्चित् ॥ ८४ ॥ अंगुलैर्नवशरांघ्रिभिः क्रमात् ९ । ५ । २ मेखला गलबहिःसमुन्नता ॥ वेदरामनयनैस्तु विस्तृता तिस्र एव बहुभिः समीरिताः ॥ ८५ ॥ यदर्कनागाब्धिभिरंगुलैस्तता उपर्युपर्यब्धिभिरुन्नताश्च ॥ इत्युक्तमाचार्यमुखैस्तदुक्तफलेच्छया तत्करणस्य बुद्ध्या ॥ ८६ ॥ अंगबाणयुगरामपाणिभिः पंच वोन्नतता गलाद्बहिः ॥ अंगुलैः क्रमत एव मेखलाः कुंडवन्निगदितास्तथाल्पकैः ॥८७॥ कैश्चित्षडंशेन तथाष्टमांशतो द्वे एव तूक्ते विबुधैस्तु मेखले ॥ षडंगुलोच्चा वितता तथैकेत्युक्तं क्वचिद्वेदमितैस्तु सोक्ता ॥ ८८ ॥ तिस्रः श्रेष्ठा मेखला मध्यमे द्वे हीना चैकेत्यत्र बोध्या व्यवस्था ॥ यद्वा श्रेष्ठाः पंच ता मध्यमास्तु तिस्रः प्रोक्ता मेखले द्वेऽधमे स्तः ॥ ८९ ॥ यद्वा तिस्रो मेखला ब्राह्मणानां प्रोक्ता द्वे ते क्षत्रियाणां प्रदिष्टे ॥ एकैवोक्ता वैश्यजातेस्तु सेति कैश्चित्प्रोक्ता तंत्रविद्भिर्व्यवस्था ॥ ९० ॥ वेदांगुलोच्छ्रिता तस्या ऊर्ध्वमूर्ध्वं स्थिता अपि ॥ तथा त्र्यंगुलविस्तारा नर्यादीनां[1] तु मेखलाः ॥ ९१ ॥ योनिः स्याद्योनिकुंडाकृतिरियमथवा बोधिपत्राकृतिः सा कुंडार्द्धांशेन दीर्घांगुललववितता द्वादशांशेन तुंगा ॥ यद्वा स्वार्कांशतुंगा निजरविलवतः कुंडमध्ये प्रविष्टा मध्ये गर्तेन युक्ता बहिरपि च ततः प्रोन्नतादर्शवत्तु ॥ ९२ ॥ उन्नतत्वमपि दैर्घ्यमानतः कैश्चिदुक्तमपरैः समंततः ॥ मेखलापि गदितांगुलमित्या प्रोक्तयोनिमितिमेव भजन्ति ॥ ९३ ॥ द्वादशांगुलमेखलाविधौ व्योमचंद्रविमितांगुलैस्तथा ॥ बाणचंद्र १५ विमितैस्तथायता रामचंद्रविमि १३ तैस्तु योन्नता ॥ ९४ ॥ योनिनालमभिपद्मनालवद्भूमिलग्नमिह कैश्चिदीरितम् ॥ नैव योनिरुदिता

१ नर्यादीनाम् अग्न्यादीनाम् । "नर्यप्रजां मे गोपाय" इत्यादिमन्त्रलिङ्गात् ।

भगांकृतौ नापि सा शुभफला त्वधिकोणा ॥ ९५ ॥ प्राग्याम्ययोर्दक्षिणमेखलायां सौम्यानना मध्यत एव योनिः ॥ अत्र्यादिके पश्चिममेखलायां प्रागानना सा विनिवेशनीया ॥ ९६ ॥ कुंडाकृतिर्वा कमलाकृतिर्वा विनांबुजं पद्मत एव नाभिः ॥ तस्योन्नतिर्द्व्यंगुलतः प्रदिष्टा विस्तार उक्तश्चतुरंगुलैस्तु ॥ ९७ ॥ कुंडाभावेऽल्पहोमे शरमितमथवा स्थंडिलं हस्तमात्रं यद्वारत्निप्रमाणं विततमपि तथैवायतं वेदकोणम् ॥ अष्टांगुष्ठं तदुच्चं शरमितमथ वोदक्प्लवे प्राक्प्लवे वा सूक्ष्माभिर्वालुकाभिः समभुजमथवा रक्तमृच्चूर्णकैस्तत् ॥ ९८ ॥ अल्पो होमो वेदिकायां लोहपात्रेऽथवा भवेत् ॥ मृन्मये वा हस्तकृते कैश्चिदेवं समीरितम् ॥ ९९ ॥ कुंभा प्रोक्ता हेमजा राजता वा यद्वा ताम्रा मृन्मया वा ह्यभेद्याः ॥ रक्ताः पक्का वर्जिताः कृष्णचिह्नैरच्छिद्राः स्वैर्लक्षणैश्चापि युक्ताः ॥ १०० ॥ बाणे द्व्यंगुलवैतुल्या उन्नताः षोडशांगुलैः ॥ द्वादशांगुलमूलाश्च तथा वस्वंगुलास्यकाः ॥ १०१ ॥ पाषाणस्फोटरहितास्तथा वस्त्राद्यलंकृताः ॥ इत्येवं कलशा प्रोक्ताः पात्रोद्वाहादिकर्मसु ॥ १०२ ॥ पुच्छं त्र्यस्त्रित्रिहस्तं तदुपरि च भवेद्धस्तमात्रं युगास्रं तस्योर्ध्वं मत्स्यतुल्यं भवति करमितं मूलभागे द्व्यरत्नि ॥ एवं ते पंचहस्ता लिखितगजमुखैर्भूषिता वाहनैश्च शक्रादीनां ध्वजाः स्युर्दशकरविमितैर्वेष्टिता वंशदंडैः ॥ १०३ ॥ लोकेशवर्णा हयहस्तदीर्घास्ततास्तथांशेन तु सप्तमेन ॥ नखांगुलैर्वा दशहस्तदीर्घैर्दंडैस्तथा वंशमयैः सुवेष्टिताः ॥ १०४ ॥ स्वपंचमांशेन च गंधपुष्पैः सुभूषिताश्चायुधचिह्नयुक्ताः ॥ कार्याः पताकाः परितश्च मंडपे निवेशनीया बहिरेव मंत्रैः ॥ १०५ ॥

इति श्रीविश्वनाथदेवविरचिता कुंडमंडपकौमुदी समाप्ता ॥ ५ ॥

---

१ भगाकृतौ कुण्डे योनिकुण्डे इत्यर्थः ।

अथ कुण्डकारिकाख्यो ग्रन्थः षष्ठः ६ ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ कुंडकारिका ॥ एकहस्तादिके कुंडे योन्यादिविविधाकृतौ ॥ सुगमेन विधानेन कर्तव्यांशेन चोच्यते ॥ १ ॥ चतुर्विंशांगुलैः साध्ये द्वि ४८ गुणा रज्जुर्मीयते ॥ अंते पाशद्वयं तस्यास्तस्यार्द्धे लांछनं ततः ॥ २ ॥ मध्यात्षडंगुले चैकं ततः षडंगुलेऽपरम् ॥ साध्ये पूर्वापरौ शंकू तयोः पाशौ निधाय च ॥ ३ ॥ मध्यात्षडंगुलं नीत्वा विदिशाकर्षयेत्ततः ॥ षडंगुलेऽशके शंकुः स्याच्चैवं त्रिविदिक्षु च ॥ ४ ॥ दत्ते शंकुत्रये चैव चतुरस्रं च साधयेत् ॥ इति चतुरस्रसाधनोपायः ॥ १ ॥ अष्टाविंशांगुला रेखा वोदीची षड्यवाधिका २८। ६ ॥ तन्मध्यत १४ । ३ स्तथा प्राची २८। ६ सूत्रयुग्मे त्रिकोणकम् ॥ अर्द्धतः श्रोणियुग्मार्द्धाद्बहिर्भागे वरांगकम् ॥ इति योनिकुंडम् ॥२॥ यवार्द्धादधिकेनैव ग्रहचंद्राङ्गुलेन वै १९ ऽऽ४॥ वृत्तं कृत्वा द्विधा भक्तमर्द्धचंद्रं भवेत्तु तत् ॥ इत्यर्द्धचंद्रम् ॥ ३ ॥ चतुस्त्रिंशांगुला चोदक् ३४ प्राचीनमध्यतस्तथा ॥ यवोना तु लिखेत्तत्र २६ । ७ पार्श्वसूत्रे त्रिकोणकम् ॥ इति त्र्यस्त्रिकुंडम् ॥४॥ सप्तविंशांगुलार्द्धेन १३ ।४ सूत्रेण रचयेद्भूमिम् ॥ इति वृत्तकुंडम् ॥ ५ ॥ प्राचीत्रिंशांगुला ३० मध्ये वोदीची वरदांगुला ३२ ॥ तस्याः प्रांतद्वये प्रत्यक्प्राक्च चांकं त्रिभिस्त्रिभिः ॥ अंकात्पार्श्वद्वये प्राच्याः सूत्रषट्के षडस्रकम् ॥ इति षट्कोणम् ॥ ६ ॥ द्वादशांगुलसूत्रेण मध्यतो वृत्तमालिखेत् ॥ सार्द्धपंचयवैर्युक्तं मन्वंगुलमितं बहिः १४ । ५ । ४ ॥ ७ ॥ दिशां च विदिशां चैव वसुसूत्राणि पातयेत् ॥ दिक्ष्वष्टसु च मध्यांकाच्छंकुं वसुदशांगुले ॥ दत्वा दलाग्रमर्यादां सूत्रेणादिभ्रमाद्भ्रमिम् ॥ कृत्वा चंद्रार्द्धभाकारान्दलांश्च वसुसंख्यकान् ॥ शिष्टा बहिष्ठसंत्यागात्पद्माभं कुण्डमीदृशम् ॥ इति पद्मकुंडम् ॥ ७ ॥ वसुनेत्रांगुलं सूत्रं २८। ३ । २

सपादत्रियवाधिकम् ॥ कृत्वा वेदास्त्रिसंसाध्यं दिग्विदिक्ष्वंतरावसु ८ ॥ अंकेषु मध्यमं हित्वा वसु ८ सूत्राणि पातयेत् ॥ वसुकोणा ८ न्विशिष्यंते मार्जनाद्वसुकोणकम् ॥ इत्यष्टकोणम् ॥ ८ ॥ वेदचंद्रांगुलं सूत्रं १४ । २ । ६ पादोनत्रियवाधिकम् ॥ मित्वा मंडलकं साध्यं तस्यार्द्धं दशधा भजेत् ॥ नवभागमितनैवे सूत्रेण वापि सप्तकम् ॥ दत्त्वा च धनुषां भंगाज्ज्याभिश्च सप्तकोणकम् ॥ इति सप्तास्त्रिकुंडम् ॥ ९ ॥ पंचदशांगुलेनैव सार्द्धं वह्नियुतेन वै १५ । ३ । ४ ॥ सूत्रेण मंडलं कृत्वा वृत्तप्राची च पंचधा ॥ भित्वा त्र्यंशमितेनैव सूत्रेण चापपंचके ॥ दत्ते पंचास्त्रिसंज्ञं तु कुंडं वै भूतनाशनम् ॥ इति पंचास्त्रिकुंडम् ॥१०॥ पञ्चदशांगुलं खाते भित्त्वा बाह्ये च मेखलाः ॥ सर्वतोऽगुलमात्रा भूस्त्यक्त्वा तिस्रो बहिर्बहिः ॥ १ ॥ नवषट्त्र्यंगुलोच्चास्ताश्चतुस्त्रिद्व्यंगुलाः पृथक् ॥ तासामुपर्यधोभागे दैर्घ्यं कुंडार्द्धसंमिता ॥ २ ॥ कुंडत्र्यंशेन विपुला तुंगा जिनांककेन च ॥ तावत्परिधिसंयुक्ता चाधोवृत्तदलान्विता ॥ ३ ॥ अंगुलाग्रगता कुंडे अधो नालेन संवृता ॥ चतुरंशमिता नाभिद्व्यंशोच्चा कुंडमध्यगा ॥ ४ ॥ कुंडाकारा च सर्वेषु कुंडेषु पद्मभापि वा ॥ पद्मे षडंगुला दीर्घा तथैवोच्चा च वर्तुला ॥ ५ ॥ परितः केसराग्रा सा नाभिः कार्या विचक्षणैः ॥ द्वित्र्यादिकुंडहस्तेषु तावत्काष्ठां च कारयेत् ॥ ६ ॥ तत्र जिनांशकाः कार्या यवयूकादिकं ततः ॥ कुंडनाभिस्तथा योनिः कंठः खातश्च मेखलाः ॥७॥ तेन काष्ठेन कर्तव्यं योन्यादिकुंडमंशकान् ॥ अंगुले चांगुलावापश्चैवंकृते भवेद्ध्रुवम् ॥८॥ कुंडनिर्माणकाले तु गरिष्ठं वाजपेयिनाम् ॥ प्रोक्तं शब्दान्तरेणैव लक्ष्मीधरो लिखत्ययम् ॥ ९॥ उदराणि कृशानूनां कुंडाख्यानीति कथ्यते ॥ सर्वांगेणोपयुक्तानि कर्तव्यानि विचार्य च ॥ १० ॥ न्यूनेनाप्यधिकेनापि प्रत्यवैति यतो विभुः ॥ ११ ॥

इति श्रीभट्टलक्ष्मीधरकृता कुंडकारिका समाप्ता ॥ ६ ॥

अथ कुंडशुल्बकारिकाख्यो ग्रन्थः सप्तमः ७।

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीयज्ञपुरुषाय नमः ॥ अथ कुंडशुल्बकारिकाया ॥ ब्राह्मीमविभ्रंशवतीं परीक्ष्य संशोध्य भूमिं सुसमां समुच्चाम् ॥ प्रगृह्य तस्यामनुलिप्य शालां कृत्वा निहन्याद्दृढमाद्यशंकुम् ॥ १ ॥ प्राचीं ततः पूर्ववदुक्तयुक्त्या संसाध्य देशे परितः प्रशस्ते ॥ नर्यस्य विश्वाब्धिगुणांगुलादिव्यासार्द्धमित्या विलिखेत्सुवृत्ताम् ॥ २ ॥ तन्मध्याचिह्नाद्वसुविक्रमेषु वैकादशद्वादशसु स्वमत्या ॥ वांशस्य मध्यं परिकल्प्य कुर्यात्कुंडं चतुष्कोणमरत्निमात्रम् ॥ ३ ॥ मध्यं च नर्याहवनीययोस्तु विभज्य षोढाप्यथ सप्तधा वा ॥ लब्धांशकागंतुसमं त्रिधा भूत्र्यंशं च हित्वा परदक्षिणेऽग्निः ॥४॥ अग्नेरुदक्सार्द्धनवांगुलेऽस्मिन्यूकेषुभिर्वार्धितभूस्थशंकौ ॥ एकोनविंशांगुलिभिर्यवैकयूकाद्वयव्यासदलेषु वृत्तम् ॥ ५ ॥ विलिख्य पूर्वापरसंस्थजीवां कृत्वा च हित्वोत्तरकार्मुकं हि ॥ याम्यां भवेत्कुंडमथर्यसंज्ञं सभ्यं सभाया चतुरस्रमुक्तम् ॥ ६ ॥ औपासनं चैवमथो गृहांतः कुंडद्वयं नर्यमिवोक्तवद्वा ॥ उपर्युपर्यापितमेखलाभिस्त्रिभिस्त्रिभिः सर्वस्वरेषु भित्तीः ॥ ७ ॥ वेदांगुलोच्चारमितो विदध्याद्ध्रुवश्च तान्त्र्यंगुलिविस्तृताभिः ॥ प्राचीभवादाहवनीयशंकोः पश्चाद्र्यरत्न्या प्रतिमुंच शंकुम् ॥ ८ ॥ रज्जुं द्विपाशां षडरत्निदीर्घां विचिह्नितां पंचसु मध्यभागे ॥ हस्तद्वयं चांगुलषट्कचिह्ने ह्यष्टादशेषु त्रिषु लक्षिता च ॥ ९ ॥ पाशद्वयं संप्रतिमुच्य शंकोर्विकर्षयेदंगुलषट्कचिह्नम् ॥ पाश्चात्यहस्तद्वयरज्जुचिह्ने शंकू च याम्योत्तरगौ निखेयौ ॥ १० ॥ तच्छ्रोणियुग्मं त्वथ पूर्वपाशादष्टादशांकेन विकृष्य रज्जुम् ॥ अग्नीशयोरंसयुगं तथा स्याच्छंकुद्वयं सार्द्धकरस्य चिह्ने ॥ ११ ॥ सूत्रार्पणात्कोणचतुष्टये तु क्षेत्रं भवेत्तद्विषमं हि वेद्याः ॥ पूर्वार्धशंकोरेथ चापरार्द्धं यावच्च कोणौ परिवेष्ट्य रज्ज्वा ॥१२॥ अर्द्धी-

कृतां तामनुवेष्टय शंकू याम्योत्तरौ मध्यगमौ निखेयौ ॥ तुरीयभागेन दलीकृताया रज्जोः पृषत्कादथवापि शंकोः ॥ १३ ॥ वृत्तार्द्धमानेन विलिख्य संग्रहौ कृत्वा खनेत्र्यंगुलवेदिमध्यम् ॥ वितानपूर्वापरसौम्यदिक्षु द्वारैर्युतं शस्यगृहं पुरस्तात् ॥ १४ ॥ याम्येंद्रदिग्द्वारगृहं द्वयोश्च श्वभ्रं च भस्मोद्धरणाय कुर्यात् ॥ एवं हविर्यज्ञविधौ वितानकुंडानि साध्यानि समानि सद्भिः ॥ १५ ॥ वृत्ते पूर्वविनिर्मिते त्रियवयुक्षड्भिः शराश्चांगुलैर्मित्वा यष्टिभिरंगुलैश्च तिसृभिर्ज्याभिर्भजेन्मंडलम् ॥ द्वाभ्यां मध्यशरद्वयं यवयुतं द्वाभ्यां च बाणद्वयं कृत्वा पूर्ववदष्टपत्रविधिना पद्मं चतुर्भिर्दलैः ॥ १६ ॥

इति कुंडशुल्बकारिका समाप्ता ॥ ७ ॥

अथ कुंडप्रदीपाख्यो ग्रंथोऽष्टमः ८ ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ कुंडप्रदीपप्रारंभः ॥ प्रणम्यैकरदं देवं शारदां गुरुमेव च ॥ कुंडप्रदीपकं कुर्वे बालाज्ञानतमोपहम् ॥ १ ॥ अथ कुंडमंडपादिगुणदोषानाह ॥ आयुःकीर्तिकलत्रपुत्रसुखकृत्कुंडं स्वमानान्वितं न्यूनाधिक्ययुतं रुगादि कुरुते दिङ्मूढमर्थक्षयम् ॥ तस्मात्कुंडसुनिर्मितिं विरचयेत्पूर्णं पुरा याथ सा पात्रं यत्तलचालितं जलमिलं नोज्झेत्तथर्ज्वीकुरु ॥ २ ॥ अथ दिक्साधनमाह ॥ याम्योदग्गतकुंतयष्टिगदृशा विद्धा ध्रुवं तत्तलात्तावन्मत्स्यसमागमात्स्फुटतरे प्राचीप्रतीच्यौ दिशौ ॥ उद्बाहुप्रपदस्थयज्वमितितोऽक्षांशे भुजोऽस्यांगुलं वेदाक्ष्यंश इतो यवोऽष्टमलवो यूकाथ लिक्षा ततः ॥ ३ ॥ अथ मंडपादिमानमाह ॥ धृत्यष्टयोर्मनुसूर्ययोरिनदिशोर्मानात्करैर्मंडपः श्रेष्ठो मध्य इहाल्पको नखकरैः प्रोक्तस्तुलाद्ये विधौ ॥ वेदास्रो नवधाष्टरज्जुभिरिमं भक्तांतरा वेदिका कार्योच्चा त्रियुगेश्वगाङ्कुरभिर्ग्रामैश्चतुःस्तंभ-

युक् ॥ ४ ॥ अथ स्तंभादिमानमाह ॥ कोणस्तंभचतुष्टयं वसुकरैरुच्चं बहिर्द्वादश स्तंभाः पंचकरोन्मिता युतिगता रज्ज्वोरवेधान्विताः ॥ तच्छल्येषु वलीः क्षिपेत्प्रतिदिशं द्वारं द्विहस्तायतं मध्येऽभ्यंगुलयुग्वरे द्विगुणयुग्घस्ते पुरस्तोरणम् ॥ ५ ॥ अथ तोरणफलककीलानाह ॥ बोधिः प्लक्ष उदुंबरो वट इतः शाखा शरांगाद्रिभिर्हस्तैः कन्यसमध्यमोत्तमगताः प्राक्पश्चिमेऽपागुदक् ॥ मूर्ध्नि स्यात्फलकं द्विहस्तमथ हस्तांघ्र्यर्द्धवृद्ध्यान्ययोर्वेदैः सार्द्धयुगैः शरैर्विरचयेन्मून्र्ध्यंगुलैः कीलकान् ॥६॥ अथ कीलानां प्रकारः ॥ शैवे शूलनिभांश्च कंब्वरिगदापद्मप्रभान्वैष्णवे वक्रौ द्वौ सममंतरा नवमितास्तुर्यांशविस्तारिणः ॥ द्विर्द्विर्वृद्धिरथान्ययोः फलकके स्वल्पे विशेद्व्यंगुलं भूवृद्ध्या परयोः क्षितौ शरलवैः स्तंभांश्च शाखाः क्षिपेत् ॥ ७ ॥ अथ मंडपाच्छादनमाह ॥ कोणोच्चस्तंभमूर्ध्वस्वभिहितवलिकाभिर्विधेयोच्छ्रितिः प्रागूर्ध्वं ता दारुकुंभे विनिहितवदनाः स्युः कटैश्छाद्य एषः ॥ पीतो रक्तोऽथ कृष्णः शुकतनुसदृशः श्वेतधूम्रौ सिताभः शुक्लो धूम्रो विचित्रो ध्वज इति हरितां पालकानां महेंद्रात् ॥ ८ ॥ क्षेपकः ॥ पंचहस्तमिता दैर्घ्ये द्विहस्तायतयो ध्वजाः ॥ दिग्घस्तदंडसंबंधा स्वेशवाहनतोऽकिताः ॥ १ ॥ प्रतिदिशं पताकाः स्युः सप्तहस्तमितास्तथा ॥ हस्तमात्रायता लोकपालाभाः सायुधांकिताः ॥ २ ॥ अथ होमसंख्यायां कुंडमाह ॥ पंचाशत्सु सुमूर्छनां २१ गुलमिदं सार्धांगुला २२।४ द्व्यं शते हस्तो दिक्छतकेऽयुता दशगुणे द्वाभ्यां द्विवृद्ध्या पुरः ॥ कुंडं हस्तमितं च लक्षहवने हस्तैर्धनं लक्षतो यांवत्पक्ति पदावनिं परिहरेद्वेद्याश्वदिक्ष्वारभेत् ॥९॥ अथ कुंडानां स्थानं कामनाविषयं चाह ॥ प्राक्स्तंभे चतुरस्रमग्निविषये भोगे वरांगं त्वपाग्वृत्तार्द्धं रिपुमारणाय निर्ऋतौ द्वेषे त्रिकोणं परे ॥ शांत्यै वृत्तमथो षडस्रयनिलदिश्युच्चाटने पुष्टये सौम्येऽब्जं वसुकोणमीशविषये मुक्त्यै तदत्रो-

च्यते ॥ १० ॥ अथ कुंडान्याह ॥ स्याद्वेदास्रि जिनांगुलैरथ भगं सार्द्धं द्विधान्याधिकैस्त्रिंशद्भिस्त्रिभुजैः परार्द्धदलतो भ्रम्या नितंबौ बहिः ॥ वृत्तं सांघ्रियवाढ्यगोकुभिरतोऽर्द्धं सार्द्धषड्वर्गतस्त्र्यस्रं पादसमेतवेदयवयुग्विश्वैर्भ्रमाद्वृत्तकम् ॥ ११ ॥ सार्द्धांभोधियवाढ्यशीतगुगुणैस्त्र्यस्रद्वये प्राक्परे षट्कोणं रचिते त्रिभागयुजि च प्राग्वृत्तमार्कां १२ गुलैः ॥ बाह्यं सांघ्रियवाढ्यबाणविधुभिः केंद्रादिशश्चांकयेद्बाह्ये भानुमितादिगर्द्धवशतस्त्र्यस्रैः कृतैरंबुजम् ॥ १२ ॥ आकृत्या चतुरस्रके प्रतिदिशं वेदांगुलार्द्धाग्रतः कर्णौ पादविहीनषट्सु रचयेदष्टास्रि कुंडं हि तत् ॥ वृत्तं रुद्रमितं दलाढ्यधृतिभिर्मध्याच्छरांशांकतो बाह्ये त्र्यस्रकपंचके यवयुतैरीशैः शरास्रं भवेत् ॥ १३ ॥ अथ सप्तास्रिकुंडं मेखलालक्षणं चाह ॥ शक्रैः सत्रियवैर्वृतिं विरचयेदर्कांगुलैः सांघ्रिभिर्दोर्भ्यैः सप्त च सप्तकोणकमभिचाराय कुंडद्वयम् ॥ कुंडान्यष्टदिशां क्रमादथ ९ नवत्र्यंग्र्यं ३ गुलैरुच्छ्रिता वेदाग्नीक्षणविस्तृता जिनलवात्कंठाद्बहिर्मेखलाः ॥ १४ ॥ त्रिमेखलापक्षे केचिन्मतम् ॥ एकमेखलापंचमेखलापक्षौ योनिं चाह ॥ वांछत्युच्छ्रितिविस्तृतिं समतया के चैककार्चीं यदा वेदैरुच्छ्रितविस्तृता रसशराब्ध्यग्निद्विभागैर्मिताः ॥ पंचैव स्युरिनांगुला यतिरथाष्टाविस्तृतैकांगुला तुंगैकांगुलकांशकेन विंशती कुंडांतरेऽन्तर्बिला ॥ १५ ॥ अथ योनिनाभिखातादिमानम् ॥ योनिर्नालनितंबयुङ् नहि भगे नाभिस्तथाक्ष्युच्छ्रितिर्वेदायामयुतः सकुंडसदृशः खातोऽपि कांच्यन्वितः ॥ कार्यस्तुल्यभुजो ह्यधः प्रतिदिशं चेत्पंचकुंडी मता प्रागीशानदिगंतरा शरमितं गोष्वंकतुल्यं तथा ॥ १६ ॥ अथ नवकुंडेषु योनिनिवेशनम् ॥ एकहस्तादिकुंडानां भुजमानं चाह ॥ प्रागादित्रिषु कुंडकेषु यमदिग्योनिस्तथान्येषु सा पश्चात्स्यादधिमेखलं च परदिश्युच्चैः पुरस्तान्नता ॥ वेदास्रे द्विभुजाहतिः फलमदोऽगाद्रीषु

६७६ तुल्यं हिताद्वित्र्याद्येषु तदाहतं पदमतो द्वित्र्यादिकेष्वेष

दोः ॥१७॥ एकस्यैव जिना २४ द्वयोर्युगगुणा बाहुस्त्रियूको ३३ । ७। ५ ज्झिता यूकाः पंचचतुर्यवाः कुनिगमाः मानं त्रिहस्ते भुजः ॥ तुर्येऽष्टाब्धिमिताः शरे गुणशरास्त्रिःपंचयूकायवाः षष्ठचामष्टशरा यवा रसमिताः सार्द्धद्वियूकाधिकाः ॥ १८ ॥ सप्तानां सदलाग्निषष्टिमितयोऽष्टानां च यूका विपातसप्तांगांगुल्यो यवा नगमिता ब्ध्यश्वा नवानां दिशाम् ॥ यूकापंचकवर्जिता रसनगा यावद्भुजाः संमतास्तन्मानं समकाष्ठमत्र च जिनैरंकैस्ततः प्रोक्तवत् ॥ १९ ॥ स्पष्टचक्रं च ॥ अथ विनायकस्नपने वेदिपीठस्थंडिलादि विरच्यते ॥

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	ह.
२४	३३	४१	४८	५३	५८	६३	६७	७२	७५	अं.
०	७	४	०	५	६	०	७	०	७	य.
०	५	५	०	३	२॥	०	०	०	३	यू.

वेदीहेरंबशांतौ रचय रसगजैरंगुलैः शक्रमूले पीठे खेटात्मवार्थे हरदिशि मरुति द्विःकरेऽर्वाकपुरस्तात् ॥ आंबं पंचाग्रुलौज्झं करमितमनलेऽर्कांगुलैः स्त्रीण्यथोच्चैस्त्रिस्त्रिस्त्यक्त्वास्तयाम्ये निर्ऋतिजमनलस्याष्टनेत्रैर्युगोच्चम् ॥ २० ॥ अथ ग्रंथालंकारः ॥ आद्यानामनवद्यपद्यरचनानानाविचित्यात्मनां लोकानां व्यवहारदर्शनविधावेकद्विवृत्तेः स्फुटम् ॥ श्रीमद्रैवतराजपूजितपदः श्रीकाह्नजिद्वाडवः सूनुस्तस्य सुकुंडदीपमकरोदेनं महादेवकः ॥ २१ ॥

इति श्रीराजगुरुमहादेवविरचितः कुंडप्रदीपकः समाप्तः ॥ ८ ॥

अथ कुंडोदधिसंज्ञको ग्रंथो नवमः ९ ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ कुंडोदधिप्रारंभः ॥ नत्वेशं वच्मि कुंडं खखखकुयजनात्तत्स्वकुध्रोत्तरे स्यात्क्ष्माब्ध्यब्ध्ययेष्टहस्तं कराजिनलवकं त्वंगुलं तद्गजांशः ॥ धान्यं यूका च लिक्षा क्रमश इति हरित्साधनं वृत्तकेंद्रं शंकुं संस्थाप्य भूमौ स्पृशति परपुरः शंकुभाग्रं तु

पूर्वा ॥ १ ॥ व्यासार्धार्धाधिकेन कृतमिति युगुलं कर्कटेनोत्तरा स्यात्कुंडं व्यासार्धकेन विदिशझषयुगैस्तद्भवेद्वेदकोणम् ॥ कुंडं सार्धद्विधान्याधिकवियदनलै रामदोर्भिर्यमार्धभ्रम्यर्धाभ्यां भगाख्यं सदलकरयवेनाष्टरामैः कृतार्द्धम् ॥ २ ॥ त्र्यस्रं कुंडं त्रिदोर्भिः सदलषडनलैर्वेदयूकाधिकामैर्वृत्तं कुंडं षडस्रं सदलकृतयवाब्यैकरामैस्त्रिभागे ॥ याम्योदक्त्र्यस्रयोगे वसुदलजलजं कर्णिकाकेसरांतःपत्रक्ष्मामंडलानि स्युरुत रविजनैः सार्धभूवह्निनांत्यम् ॥ ३ ॥ अष्टौ त्र्यस्राणि बाह्ये श्रवदलगुणको द्विघ्नमौर्वीभ्रमाच्च बाह्यांतर्ज्यौ विदध्याद्धनुषि रसमिता कर्णिकोच्चाग्रवृत्ते ॥ सार्धाक्षीशेश्वगाङ्ग्यंगुलमितवृतिकं षोडशांशांकितं तद्वह्नींद्राङ्कादगांके वसुगणगुणकैः कार्यमेवाष्टकास्रम् ॥ ४ ॥ अष्टौ कुण्डानि शाक्र्याः प्रथमचरमयोरंतरे वेदकोणं त्यक्त्वा कुंडेषु चैकं द्विदिश इति परेशानयोः कुंडमेकम् ॥ कुर्याद्वेद्याः पदांते स्वभमितखननं तन्निनांशस्तु कंठे तद्वाह्ये मेखला स्युर्नवरसगुणकोच्चाङ्घिवह्न्यक्षियामाः ॥ ५ ॥ स्वाभानाभिर्द्विवेदोच्चततिपरिमितानाब्जके वाब्जभा च द्व्यष्टेन व्यासदैर्घ्यौ जलपतिहरितो नालकाग्रा तु योनिः ॥ एकां शंकंशमध्ये नतमुपरिभवाप्युन्नता मेखला या नो कार्या योनिकुंडे प्रथमकरगुणानां भगं दक्षिणे स्यात् ॥ ६ ॥ दिक्सूर्यैः सूर्यशक्रै रसकुधृतिकरैर्मंडपोल्पः समोऽग्र्यो वेदैर्दोर्भिस्त्रिभागा नवसमरचिता मध्यभागे तु वेदिः ॥ हस्तोच्चा मध्यखंडे विदिशि वसुकरं तद्बहिर्बाणहस्तं स्तंभौघं भूपसंख्यं द्व्यसु ९ लवखनितं क्ष्मासु सर्वत्र कार्यम् ॥ ७ ॥ दंतास्ताः स्तंभचूडास्वधिनववलिकाः सिद्धकः खंडदोःस्त्रिभाः स्युर्वै मंडपस्य श्रवसमशिखरो मध्यमांशोऽस्ति यस्मात् ॥ ऐंद्र्या द्वारोऽक्षिहस्तास्तदुपरि निगमाभैर्युता अंगुलैस्तैः संछाद्योऽयं कटाद्यैः कदलिजलघटैः शोभयत्वं ध्वजाद्यैः ॥ ८ ॥ अस्माच्छात्र्याः करांते शरषडगकरस्तोरणोऽश्वत्थजंतुप्लक्षन्यग्रोधजः के स्वदलफलककाविष्णुयागे तु मध्ये ॥

पंक्त्यर्केन्द्रांगुलैः स्वांबुधिलवपृथुलं शंखचक्रं गदाब्जं कूनं शैवे त्रिशूलं व्यक्तसुलघुकुंडोदधिं रामचंद्रः ॥ ९ ॥

इति श्रीरामचंद्राचार्यविरचितः स्रग्धरावृत्तरचितनवश्लोकात्मकः कुंडोदधिः समाप्तः ॥ ९ ॥

अथ कुंडरत्नाकराख्यो ग्रंथो दशमः १० ।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ कुंडरत्नाकरप्रारंभः ॥ चंचच्चारुनिबद्धचंद्रशकलश्चोतत्सुधामिश्रिताः स्फूर्ज्जद्धूर्ज्जटिना जटासु निभृता गंगातरंगालयः ॥ साक्षाद्ब्रह्मपदप्रदायिपदवीचूडामणिश्रेणयस्त्रैलोक्यं विधिवत्पुनंतु नयनानंदैककन्दोदयाः ॥ १ ॥ इदानीं विवक्षितार्थं प्रतिजानीते ॥ गूढार्थागमशास्त्रजालजलधिं निर्मथ्य धीमंथनैराचार्यानुपमोपदेशगुणतः सत्कुंडरत्नानि तु ॥ नानाभेदविभेदितानि सहितान्यंगैः प्रवक्ति स्फुटं श्रीमच्छ्रीपतिसूनुरुन्नतमतिः श्रीविश्वनाथः कृती ॥२॥ अथ हस्तादिपरिभाषा ॥ चतुरुपचितविंशत्या करोऽङ्गुलीनां गजांशहीनोऽसौ ॥ रत्निर्मुष्टिश्चोक्तः कलांशहीनोऽप्यसावरत्निः स्यात् ॥३॥ अंगुलयवयूकालिक्षावालाग्रं ततोऽपि रथरेणुः॥त्रसरेणुः परमाणुर्यथाक्रमं चाष्टमांशमिताः ॥ ४ ॥ अंगुलभेदो विविच्यते प्रथमतो मयात्रासौ ॥ कर्तुर्दक्षकरांगुष्ठबृहत्पर्वमितमेकमपरं तु ॥ ५॥ कर्तृकरमध्यमांगुलिमध्यपर्वणि च दैर्घ्यम् ॥ संप्रोक्तमात्रांगुलमथ तनुलब्धांगुलं प्रोक्तम् ॥ ६ ॥ प्रपदोच्छ्रिते समस्थे वोर्ध्वकरे पुंसि विंशतिशतांशः ॥ मुष्टेस्तुर्यांशो मुष्ट्यंगुलमुक्तपरिमाणम् ॥ ७ ॥ अष्टयवैस्तिर्यक्स्थैर्मानांतरमंगुलं निगदितम् ॥ यूकायवादिक्लृप्तं प्रोक्तं मानांगुलमितीह ॥ ८ ॥ देहलब्धांगुलेनैव मात्रांगुलमितेन वा ॥ मुष्ट्यंगुलेन वा तत्र कुंडादीनि प्रकल्पयेत् ॥ ९ ॥ अथ कुंडादिसाधनार्थं रज्जुमाह ॥ गुणं मुंजकौशे-

यकार्पाससूत्रप्रभूतं च गोवालवेण्वादिभूतम् ॥ दृढं ग्रंथिखोडादिहीनं च कुर्याच्चतुर्भिर्यवैस्तत्परीणाह इष्टः ॥ १० ॥ अथ शंकुलक्षणम् ॥ रम्यं वृत्तं कुशाग्रं खदिरतरुभवं यज्ञदारूद्भवं वा दीर्घं मासांगुलीभिः पृथुलतरतले षट्परीणाहभाजम् ॥ श्लक्ष्णं मूलैकतष्टं समतरमभितः कोटरग्रंथिहीनं रेखासंधिप्रहीणं तनुतरतलकं वापि कुर्वीत शंकुम् ॥ ११ ॥ अथ भूसाम्यकरणमाह ॥ दंडद्वंद्वे कीलकाबद्धमूले सूक्ष्माग्रे तत्किचिदूनाग्रभागे ॥ मध्यांकाढ्यं दंडमाबध्य साम्यान्मूलप्रोतं भारवल्लंबसूत्रम् ॥ १२ ॥ क्ष्मामस्पृष्टं साधनी सा प्रदिष्टा भूम्यग्रायां यत्र यात्यङ्कमध्यात् ॥ पूर्णं कुर्यान्निम्नपादन्यतो वांकस्थे सूत्रे भूः समा संप्रदिष्टा ॥ १३ ॥ अथ मंडपादिपूर्वकृत्यम् ॥ पूर्वं भूमिं परीक्ष्य स्मृतिविहितदिशा तत्र शस्तां गृहीत्वा विप्रादिः शोधयेत्तां निखननदहनाद्येन शास्त्रोदितेन ॥ पुण्याहं वाचयित्वा द्विजवरनिचयैराह्नि पंचांगशुद्धे प्रारंभं मंडपस्यानुविदधत बुधाः कर्मणः पूर्वमेव ॥ १४ ॥ मंडपद्वितये स्वेष्टे मंडपोन्मितमंतरम् ॥ गृहांतिके गृहोन्मानं त्यक्त्वा मंडपसाधनम् ॥ १५ ॥ अथ प्राचीसाधनार्थं शंकुसमत्वसाधनम् ॥ कल्पां प्राचीमुदीचीमपि च विरचयेद्वेदभागाढ्यशंकुं तन्मध्ये स्थापयित्वा त्रिलवमितगुणभ्रांत्तवृत्तं च कुर्यात् ॥ १६ ॥ पंचांशैर्वेदकीलैर्वलयपरिधिसंस्पृष्टमूलैर्दिगंते शंक्वंतस्पष्टपुच्छैर्भवति हि समता शंकुवर्यस्य तत्र ॥ १७ ॥ अथ दिक्षु द्वाराणि तदर्थं प्राचीसाधनमाह ॥ शंकुप्रमाणाधिकसूत्रनिर्मितं वृत्तं स्पृशेच्छंकुरुचिः समस्थले ॥ पार्श्वद्वये तत्र गुणे प्रसारिते प्राची प्रदिष्टा महती मुनीश्वरैः ॥ १८ ॥ अथ प्रकारांतरेण प्राचीसाधनम् ॥ वेधेन ध्रुवसंभवेन शशिनो निश्चित्य दिङ्मंडलं प्राचीं साधय वा युगं समुदितैः श्रुत्यग्निपुष्यर्क्षभैः ॥ चित्रास्वातिविमध्यतोऽपि च तथा यंत्रादिना साधयेत्सन्मार्गेण कुरूत्तमोदितदिशा शिल्प्युक्तमार्गेण च ॥ १९ ॥ अथ सूक्ष्मप्राचीसाधनम् ॥ पूर्वस्मिन्दिवसे यथा परदिनेऽ-

प्येवं विधायांकनं छायासंगमनिर्गमान्तरघटीनिघ्नं दिनद्वंद्वजम् ॥ निर्गत्यंतरमिष्टकूतलवकं षष्ट्याहृताप्तांशकं प्राच्यां चालयताद्रवेर्गतिवशात्सूक्ष्मेंद्रकाष्ठा स्फुटम् ॥ २० ॥ अथोदक्सूत्रसाधनम् ॥ विस्तारद्विगुणे गुणेऽकितदले प्राच्यंतपाशद्वये केनाकृष्य विधेयमेकामिलितक्षोण्यांतसोदक्स्मृता ॥ प्राच्यंतात्त्ववधिकेन विस्तृतिदलात्सूत्रेण वृत्तार्द्धके कृत्वा तद्भवमत्स्यमध्यगुणतो वा स्यादुदीची स्फुटा ॥ २१ ॥ अथ चतुरस्रसाधनम् ॥ विस्तारद्विगुणीकृते समगुणे प्रांतस्थपाशद्वये श्रोण्यंसार्द्धेनिरुञ्छनं वितनुयाद्व्यासार्द्धतः सार्द्धतः ॥ कर्षाद्धि स्वमनीषितेंद्रवरुणप्रांते निहन्यात्ततः शंकुं चोत्तरदक्षयोरियमभूत्सार्वत्रिकी प्रक्रिया ॥ २२ ॥ अथ मंडपाद्यर्थं चतुरस्रम् ॥ पुरः प्रत्यक्छंकोर्गुणरचितपाशौ वितनुयाद्विकर्षैणाकर्षैच्छिखिशिवदिशोः सन्मुखमपि ॥ तथा श्रोण्यंसांके विखन नतशंकूनपि मिथश्चतुर्लेखाल्लेखान्समविषमवेदास्रमुदितम् ॥२३॥ अथ मंडपमानम् ॥ दिग्भिर्द्वादशभिः कनिष्ठ उदितो मध्यश्चतुर्भिः समो दिग्भि १४ द्वादशभिः करैर्धृति १८ मितैः स्यात्षोडशप्रोन्मितैः ॥ ज्येष्ठो विंशतिसंमितैरपि तुलादानेऽथ विस्तीर्णताप्यायत्यापि च तत्र मंडलचरः श्रुत्यस्रवत्साधितः ॥ २४ ॥ अथ स्तंभनिवेशनम् ॥ तत्कोणे पंचहस्तान्दृढतरसरलान्सारदारुप्रभूतान्स्थूलान्स्तंभान्सुतुल्यानपि शिखिहरिदारंभतो गर्तमध्ये ॥ त्रेधाभक्तेऽतराले युगलयुगलतो रोपयेत्पंचमांशैर्वेद्याः कोणेष्वपीत्थं निखनतु चतुरश्चाष्टहस्तान्समंतात् ॥ २५ ॥ अथ वलिकानिवेशनम् ॥ वेदिस्तंभस्थचूडाधृतवलिवलिकास्तिर्यगुन्मुच्य सम्यक्कूटं वा मंडपं वा रचतु तदितरस्तंभकर्णेऽथवात्र ॥ तस्योर्ध्वे नालिकेरीदलकटनिचयैश्छादयेद्वाथ वंशैर्हित्वा द्वाराणि पार्श्वाण्यपि खलु परितः सांद्रमाच्छादयेच्च ॥ २६ ॥ अथ वेदिकामाह ॥ तिर्यङ्मान्यां पार्श्वमान्यां त्रिभागे सूत्राद्बन्धान्मध्यकोष्ठे नवांशे ॥ वेदिर्वेदाश्चोच्छ्रिता स्व ३ त्रिभागाद्वेदे ९ ध्वंशाः ११७

सप्तनं ९ दांशतो वा ॥ २७ ॥ अथ द्वारमानम् । द्वाराणि चत्वारि दिगंतभागे द्विहस्तविस्तारयुतानि मध्ये ॥ वेदांगुलैरष्टभिरेधितानि कनिष्ठमध्योत्तममंडपेषु ॥ २८ ॥ अथ तोरणमाह । न्यग्रोधोदुंबराणां चलदलजटिनां निस्त्वचं सत्वचं वा स्तंभद्वंद्वं सुरम्यं कुगुणपरिधियुग्दिक्परीणाहयुक्तम् ॥ बाणैः षड्भिश्च हस्तैश्चरणपरिमितैर्युक्तमुक्तं गुणाढ्यं भूम्ये गर्ते निवेश्यं निजशरलवतोऽखंडितैः पंडितैस्तत् ॥२९॥ पूर्वाशादिक्रमेण प्रथमचरमयोर्व्यत्ययादेकतो वाऽभावे जंबूशमीजं खदिरतरुभवं तोरणं द्वारबाह्ये ॥ हस्तोन्माने प्रदेशे द्विकरपरिमितं त्वंतरं स्यात्क्रमात्तद्धस्तांघ्रिद्व्यंघ्रिवृद्धं तदुपरि फलकं चार्द्धतः स्वल्पमुख्ये ॥ ३० ॥ अत्र विशेषमाह ॥ कीलान्मध्ये समंतात्फलकसमतरूंस्तंभमासांशमानान्स्वांभोध्यंशप्रकीर्णान्दशरथचरणश्रीगदापद्मचिह्नान् ॥ विष्णोर्यागेऽथ शैवे त्रिषु च करमितान्पादविस्तारभाजो वस्वंशाढ्ये च खाते विनिखनतु तथा शूलश्लक्ष्णं त्र्यांकान् ॥ ३१ ॥ अथ प्रकारांतरेण शूलमानम् ॥ यद्वा दैर्घ्येऽङ्गुलीभिर्नवभिरभिमितान्पादविस्तीर्णताढ्यान्व्यंगुष्टं सन्निखातान्समशिखरयुतान्वक्रशृंगद्वयांतः ॥ स्वल्पे मध्येऽथ पूज्ये द्विकनिगममितैरंगुलैर्वृद्धिमिष्टा खातस्यैकाद्विवृद्ध्या विनिखननमपि स्पष्टमाचष्ट सर्वः ॥ ३२ ॥ अथ मंडपालंकारः ॥ दुकूलाढ्यस्तंभो ग्रथितकुशमालापरिवृतो वितानादर्शाढ्यः सफलकदलीस्तंभनिचितः ॥ फलैर्नानाभेदैः क्रमुकफलगुच्छैरपि युतो रसालानां पत्रैः परिवृतवपुर्मंडपवरः ॥ ३३ ॥ अथ ध्वजानिवेशनम् ॥ अष्टाशासु ध्वजाग्र्यान्करयुगलततान्पंचहस्ताढ्यदैर्घ्यान्दीर्घैस्तैर्वंशदंडैरुपचितशिरसः स्वस्वलोकेशवर्णान् ॥ दध्यात्तेषु क्रमेणालिखितगजवरच्छागयाम्याश्वसिंहं मीनैणांश्च वृषांश्चाप्यथ च हरिदिभान्युक्तधातुद्रवेण ॥ ३४ ॥ अथ पताकानिवेशनम् ॥ कुंडं कुंडं प्रति मुनिकरा हस्तमात्रं विशाला लोकेशानैस्तुलितरुचयो वज्रमुख्यायुधाढ्याः ॥

हस्तद्वंद्वं खनितनिहितैर्दिक्करैर्दंडवर्यैरिंद्रे शांतिर्हिमगिरिनिभा संविधेया पताका ॥३९॥ अथ नवकुंडीपक्षमाह ॥ प्रागाद्यं चतुरस्रयोनिदलितेंद्वाभं त्रिकोणप्रभं वृत्ताभं च षडस्रपंकजनिभाष्टास्राणि वेद्याः पदे ॥ पूर्वैशानविमध्यतोऽपि नवमं वेदास्रि वा वर्तुलं सर्वत्रैव सवर्तुलानि तु चतुःकोणानि वा कल्पयेत् ॥ ३६ ॥ अथ पंचकुंडीपक्षमाह ॥ दिक्षु शंभुदिशि पंचकुंडकं वेदकोणशशिखंडवर्तुलम् ॥ पद्मयुक्तमपि वेदकोणकं वर्तुलं त्वथ च सर्वदिक्षु वा ॥ ३७ ॥ अथ एककुंडीपक्षमाह ॥ अथवा कुंडमेकं स्यादीशान्यां स्वल्पहोमके ॥ वर्तुलं चतुरस्रं वा वारुण्यामुत्तरेऽथ वा ॥ ३८ ॥ अथ वर्णविशेषे कुंडानि ॥ वेदास्रवृत्तं चंद्रार्द्धं त्र्यस्रीणि ब्राह्मणादितः ॥ मुख्यानि सर्वतो वापि चतुरस्रं प्रशस्यते ॥ ३९ ॥ अथ मंडपेष्टकुंड्यां संयोगपृथक्त्वन्यायेनाष्टानां कुंडानां निवेशनपूर्वकं फलमाह ॥ वेदकोणमखिलार्थसिद्धिकृद्योनिकुंडमपि भोगमोक्षदम् ॥ अर्धचंद्रमरिमृत्यवे शुभे त्र्यस्रि वैरिकृतिवैरनाशने ॥ ४० ॥ वृत्तकुंडमथ शांतिदं त्वरोच्चाटमृत्युदमथारिकोणकम् ॥ पद्मकुंडमपि वृष्टिपुष्टिदं त्वष्टकोणमपि मुक्तिदं क्रमात् ॥ ४१ ॥ अथ होमसंख्यया कुंडप्रमाणम् ॥ शतार्द्धे मुष्ट्याद्यं शतपरिमितेऽरत्निविमितं सहस्रे हस्ताढ्यं दशकुगुणिते हस्तयुगलम् ॥ चतुर्हस्तं लक्षे प्रयुतहवने षट्करमितं ककुद्भिर्वा कोटौ दशकरमितं वात्र हवने ॥ ४२ ॥ अथ पक्षांतराणि ॥ लक्षैकवृद्धितो लक्षादेकैककरवृद्धिदः ॥ लक्षाणां दशकांतं वा कुंडं दशकरांतकम् ॥ ४३ ॥ लक्षार्द्धे त्रिकरमितं वदंति केचिद्दिग्लक्षाहुतिहवनेऽपि पंचहस्तम् ॥ षट्हस्तं द्विक २०००००० गुणिताहुतौ च केचित्कोट्यर्द्धे हुतिहवनेऽपि सप्तहस्तम् ॥ ४४ ॥ अथ क्वचिद्व्यवस्थामाह ॥ यत्षोडशकरं कुंडं कोटिहोमे समीरितम् ॥ स्थूलाहुतिहुतौ तत्स्यादन्यथा पूर्ववद्भवेत् ॥ ४५ ॥ अथ चतुरस्रकुंडमाह ॥ प्राक्सूत्रोत्तरसूत्रमध्यमभुवो व्यासार्धसूत्रभ्रमा-

लवकैर्लवैः षड्विंशत्या विलिखतु चतुःकोणमपरम् ॥ तदस्रा सप्तांशैः सगुणयुगलैर्दंतलवकैर्गुणांकात्पार्श्वेषु द्विरदगुणमष्टास्रमुदितम् ॥ ५४॥ अथ प्रकारांतरेणाष्टास्रिकुंडम् ॥ जिनांशेऽतः सूत्रे वसुयुगमितैरंगुलवरे रसैश्चैकांशांशैः सहितमपि वृत्तं विरचयेत् ॥ दिगंशैरेकस्याप्यथ धृतिलवैः सप्तदशभिर्गुणैरष्टाभिस्तच्छमरहितमष्टास्रि कथितम् ॥ ५५ ॥ अथ पंचास्रिकुंडमाह ॥ क्षेत्रव्यासे जिनलवयुते पंचचंद्रैर्मितेन द्वात्रिंशांशैः सह तिथिमितैर्भ्रांतसूत्रेण वृत्तम् ॥ व्यासेष्वंशैस्त्रिभिरथ गुणांस्तांश्च कृत्वा पिशाचोत्सादे बाणे गुणरसलवैः पंचकोणं सुकुंडम् ॥५६॥ अथ परकृताभिचारशांत्यर्थं सप्तास्रिकुंडमाह ॥ क्षेत्रव्यासे जिनांशे गजयुगललवैरेकविंशांशकैः स्वैः सप्तक्ष्मामिश्च सार्द्धं मितमपि वलयं व्यासविंशांशकाढ्ये ॥ बाणे तद्विंशभागैर्नवभिरथ मिताः पातयेत्सप्त जीवा मूलं प्रांतप्रबाधा अभिचरणशमे सप्तकोणं सुकुंडम् ॥ ५७॥ क्षेपकः ॥ क्षेत्रव्यासदलेऽगरामलवजुष्यश्चांशवृद्ध्याविततयर्द्धेन भ्रमयेदनेन वलयं तद्व्यासविंशो लवः ॥ येषु स्याद्द्विशिखोनवाहनशरेणैव ज्यया तादृशश्चापान्सप्त मिथो मिलद्गुणमुखान् सप्ताश्रिणी त्वावहेत् ॥ रामवाजपेयः ॥ ५८ ॥ अथ खातमानमाह ॥ चतुरस्रस्य विस्तारमितं खातं विपश्चितः ॥ आहुरन्येऽन्यथाप्याहुराद्यमेखलया सह ॥ ५९ ॥ अथ नाभिः ॥ युगलांगुल उच्छ्रितास्ततो द्विगुणोंऽभोजनिभाकृतिस्तथा ॥ इदमध्यभुवि स्थितोऽथवाखिलकुंडाकृतिनाभिरिष्यते ॥ ६० ॥ अथ नाभेः पद्माकारमाह ॥ द्वादशांशं बहिस्त्यक्त्वा तृतीयांशेन कर्णिका ॥ बहिः केसरपत्राणि त्यक्तांशेन दलाग्रकम् ॥ ६१ ॥ अथ कंठः ॥ इष्टस्य च चतुरस्रस्य जिनांशेनैव संमितः ॥ खाताद्बहिः कंठ उक्तो द्वादशांशेन वा भवेत् ॥ ६२ ॥ अथ मेखला ॥ कुंडव्यासे जिनलवयुते मेखलास्तिस्र उक्ता वेदै ४ रामै ३ र्युगल २ लवतो विस्तृता उन्नताश्च॥ यद्वा सर्वा जलनिधिलवै ४ रुन्नता विस्तृताः

स्युर्यद्वैका स्याद्रसमितलवैर्विस्तृतोच्चा च बाह्ये ॥ ६३ ॥ अथ पक्षांतराणि ॥ पञ्च स्युर्वा मेखलाः षट्शराब्धिरामाक्ष्यंशैर्विस्तृताः कण्ठबाह्ये ॥ नन्दांशोच्चा कण्ठलग्नाथ शेषास्तद्बाणांशन्यूनिताः कुण्डरूपाः ॥ ६४ ॥ पुनरपि पक्षांतरम् ॥ अथ षष्ठांशमानेनाप्यष्टमांशमितेन च ॥ मेखलाद्वितयं प्रोक्तं कैश्चिदेव मुनीश्वरैः ॥ ६५ ॥ अत्र विशेषः ॥ वैश्यः शूद्रः क्षत्रियो वा ताम्रेण परिबंधयेत् ॥ इष्टकाभिर्मृदा वापि सुधिया वा स्वशक्तितः ॥ ६६ ॥ अथ योनिलक्षणमाह ॥ विस्तारार्द्धेन दीर्घा विततिगुणलवा मूलतो विस्तृतास्मिन्वृत्तार्द्धद्वंद्वयुक्ता जिनलवपरिधिर्मध्यगर्त्तेन युक्ता ॥ कुण्डांतर्विष्टसूक्ष्मा नमितजिनलवप्रांतभागा तथोच्चा द्विघ्ना वा मेखलानामुपरि यमधृताश्वत्थपत्राभयोनिः ॥ ६७ ॥ अथ द्वादशांगुलमेखलापक्षे योनिमाह ॥ अथ तिथ्यंगुलैर्नदीर्घा विस्तृतापि दशांगुलैः ॥ मेखलायास्तथांशा प्रोच्चत्वे योनिरीरिता ॥ ६८ ॥ अथ योनिवेशनमाह ॥ प्रागग्निदक्षिकुंडेषु योनिं दक्षिणतो न्यसेत् ॥ इतरेषु तथा पश्चात्प्राग्वन्नवम इष्यते ॥ ६९ ॥ अथ होमकर्तुरुपवेशनम् ॥ प्रागाग्नेयीदक्षिणास्येषु कुंडेष्वग्रं सौम्यां होमकर्त्तोत्तरास्यः ॥ प्रागग्राणि स्युस्तथान्यानि होता प्रागास्यः स्यात्प्राग्वदाचार्यकुंडे ॥ ७० ॥ अथ नालमाह ॥ योनिमूलमिलितं सरंध्रकं नालमत्र चतुरंगुलैस्ततम् ॥ वेदभागमितवेदिकोपरि स्थापयेत्परिधिबाह्यतः स्थले ॥ ७१ ॥ अथ प्रसंगात्परिभाषामाह ॥ कुंडव्यासचतुर्विंशत्यंशमित्यंगुलं स्मृतम् ॥ यजमानप्रमाणेन करादिपरिकल्पना ॥ ७२ ॥ अथ द्विहस्तादिकुंडनिर्माणप्रकारः ॥ चतुःकोणे कुंडे समभुजयुते तत्कृतिमितं फलं प्रोक्तं द्वंद्वादिकगुणितमुक्तं फलमपि ॥ द्विहस्ताद्ये तस्माद्विरचितपदं मध्यगुणितं ततो निष्पन्नं सत्प्रभवति चतुःकोणमखिलम् ॥ ७३ ॥ अथ द्विहस्ते प्रकारांतरमाह ॥ चतुःकोणाक्षणका रज्जुकर्णिका यत्र जायते ॥ फलं

द्विगुणितं तत्र चतुरस्रे समीरितम् ॥ ७४ ॥ तिर्यङ्गानि पार्श्वमानि तन्मध्ये मध्यसूत्रके ॥ चतुरस्रे समे दीर्घे चतुरस्रमुदीरितम् ॥ ७५ ॥ अथ प्रकारांतरेण द्विहस्तादिप्रकारः ॥ इष्टान्हस्तान्संविभज्य स्वरुच्या तत्तन्मध्यं पार्श्वयोर्विन्यसेत्तत् ॥ कर्णे मानं मध्यसूत्रं विदध्याद्वेदास्रं स्यादिष्टहस्तं च कुंडम् ॥ ७६ ॥ अथ दशहस्तानां मध्यसूत्रमानमाह ॥ एकहस्तमुखरे दशांतगे मध्यसूत्रमखिले मयोच्यते ॥ वेदयुग्ममितमेव सप्तभूभागहीननिगमत्रिसंमितम् ॥ ७७ ॥ एकस्याष्टाविंशतिशतांशकेषु त्रिसप्ततिमितांशैः ॥ एकचतुर्भिः करनिगमैस्त्र्यंशोनैः समुद्रबाणैश्च ॥ ७८ ॥ एकोनविंशतितमैर्वेदैर्हीनोनषष्टिश्च ॥ सार्द्धत्रिषष्टिरथ सप्तदशांगुलहीननागरसाः ॥ ७९ ॥ द्वासप्ततिरंगुलयश्चैकोनविंशतिलवान्या ॥ हीना षट्सप्ततिरिति यथाक्रमं निगदिता करिणी ॥ ८० ॥ न्यासः ॥ अथ कुंडे आयकल्पमाह ॥ व्यासे विस्तृतिसंगुणेऽष्टविहृते

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
२४	३४	४१	४८	५४	५९	६३	६८	७२	७३
०	१	७२	०	१	४	१	२	०	२
०	७	१२८	०	३	१०	२	१७	०	१९

स्यादायको दंडतो हस्तेंऽगुलतोंऽशतोऽपि विमिते हस्तांगुलांशादिकः ॥ शेषः स ध्वजधूमसिंहश्वभषणप्रख्यो वृषो गर्दभो दंती ध्वांक्ष इति क्रमात्सुविहितः कुंडे ध्वजो धूमकः ॥ ८१ ॥ अथ क्वचिद्विशेषः ॥ नो दद्यात्कुंडकोणेषु योनिं होतुः पुरो न्यसेत् ॥ योनौ योनिं तथा पद्मकुंडे नाभिं विवर्जयेत् ॥ ८२ ॥ अथ कुंडकरणाशक्तौ स्थंडिलमाह ॥ यद्वा शक्तौ स्थंडिलं स्वल्पहोमे रक्तैर्वा मृच्चूर्णकैर्वालुकाभिः ॥ अंगुष्ठोच्चं वेदमानांगुलैर्वा वेदास्रं तद्धस्तमात्रं विशालम् ॥ ८३ ॥ नैमित्तिके च नित्ये वेदी वाप्यायसंपात्रम् ॥ नूतनमृन्मयपात्रं कैश्चिदभिहितं प्रशस्तं तत् ॥ ८४ ॥ अथ ग्रंथालंकारः ॥ इह निखिलविचारे न्यूनमन्यादृशं वा यदधिकमखिलं तत्सर्वमार्यैर्विचार्यम् ॥ उपकृतिमपरेषां संविधातुं प्रवीणा जगति कतिचिदस्मिन्नारदाद्याश्चरांति ॥ ८५ ॥ अस्ति त्रैलोक्यवंद्या पर-

मकरुणयापांगसंदत्तमुक्तिः काश्यत्र श्रीपतिर्यो व्यजनयदतुलं विश्वनाथं स्वसूनुम् ॥ तेजस्विन्यां च तेन स्वमतिमनुकृतः कुंडरत्नाकराख्यः शंभुः प्रीणातु तेनाप्यखिलजनपिता बालवाचेव तातः ॥ ८६ ॥ नानाशास्त्रीयशुल्बागणनिपुणमतिर्वेदवेदार्थवेत्ता ज्योतिःसिद्धांतपाटीगणितसुगणकः कश्चिदेव श्रमं मे ॥ विज्ञायांगीकरोतु त्यजतु कृतिमिमां वांजलिर्बांध एषः (?) ॥८७॥ येषां नात्राधिकारः पिकस्वरविरुतं बद्धकर्णस्य तुल्यं ज्योतिःसिद्धांतवेत्ता यदपि निजमनस्तुष्टिपुष्टिं न धत्ते ॥ नाधत्ते वागमग्नः क्रतुरसनिचयक्लिन्नसर्वांगयाष्टिर्नो धत्तेऽस्मच्छ्रमे वै सुकृतचयवशात्सर्वविद्यानिनादी ॥ ८८ ॥ धत्तां धत्ते च नेर्षान्वयनिचितमनाश्चंद्रचूडो दधातु वेदत्रय्यामधीना गणगणगणनारंभग्रण्याग्रगण्यः ॥ वेदव्याख्यातविख्यापितचतुरचमत्कारकारी स्वकीर्तिर्मीमांसान्यायवैशेषिकभणिभणितांभोधिसंतारपोतः ॥ ८९ ॥

इति श्रीमत्सकलविद्याविशारदश्रीश्रीपतिद्विवेदितनयविश्वनाथद्विवेदिकृतौ कुंडरत्नाकरः समाप्तः ॥ १० ॥

अथ कुंडार्णवग्रंथः ११ ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ नमस्कार माझा असो मोरयाला ॥ महाकालिके सुंदरे शारदेला ॥ मनीं वंदिले सर्वदा सद्गुरू ते ॥ क्रियातीत व्यापूनि राहे जगातें ॥ १ ॥ अनेकग्रंथार्थ बहूत यत्नें ॥ पाहोनियां गुंफिलीं शब्दरत्नें ॥ यागांगकुंडें असतीं प्रमाणें ॥ तीं बोलिलीं साधुनी श्रीधरानें ॥ २ ॥ समान वर्तूलहि रेशिमाची ॥ दोरी करावी अथवा सुताची ॥ जे वोढितां दीर्घ नव्हे कदापि ॥ ते सोडितां ह्रस्व नव्हे कदापि ॥ ३ ॥ अणुद्वयाचा परमाणु एक ॥ ते अष्ट तो हि त्रसरेणु एक ॥ ते अष्ट तो ही रथरेणु जाणे ॥ वालाग्रता जाण तयाप्रमाणें ॥४॥

ती अष्ट लिक्षा वसु ८ संख्य यूका ॥ यूकाष्टकें तो यव एक लेखा ॥ यवाष्टकें अंगुल एक मत्तें ॥ अंगुष्ठरेखा मधिली मतातें ॥ ५ ॥ मध्यांगुलीचे मधलें च पर्व ॥ त्या अंगुलातें वदताति सर्व ॥ तिर्यक्‌यवाचीं उदरेंच अष्ट ॥ तें एक अंगूल वदोत श्रेष्ठ ॥ ६ ॥ उभे व्रीहि मांडूनि ते तीन नीट ॥ तेही असे अंगुल सर्वश्रेष्ठ ॥ मुष्टिप्रमाणें करि एक दोरी ॥ समानभागें करि भाग चारी ॥ ७ ॥ हेंही असे अंगुल सर्व शास्त्रीं ॥ देहांगुलें बोलिलीं शुल्बसूत्रीं ॥ तीं बोलतो श्रीधर वत्सगोत्री ॥ जीं बोलिलीं सर्वेहि ग्रंथमात्रीं ॥ ८ ॥ पादाग्रमात्रीं अथवा समस्तीं ॥ पदीं उभें राहुनि ऊर्ध्वहस्ती ॥ तेणेप्रमाणें रशना धरावी ॥ ते पंचधा सर्वजनीं करावी ॥ ९ ॥ तो एकहस्त मग भाग त्याचे ॥ करून चोवीस समान साचे ॥ ते एक अंगूल तथा अष्टमांशें ॥ यवादिकें होत असेति शेषे ॥ १० ॥ जो अष्टमांशें कर न्यून केला ॥ प्रकोष्ठ तो मुष्टिहि रत्नि बोला ॥ जो षोडशांशें असे न्यून हस्त ॥ अरत्नि त्यातें वदती प्रशस्त ॥ ११ ॥ सायादिकाचे सरले समान ॥ दंड द्वयाचे मुलहि खिळून ॥ दंडद्वयाग्रीं च समान थोडी ॥ सोडूनियां दंड तृतीय जोडी ॥ १२ ॥ उभेच मध्यें करि चिह्न त्यासी ॥ अग्रद्वये ठेउनियां भुमीसि ॥ दोरीस वोढूनि मणी शिलाचा ॥ दंडद्वयाचे मुळिं बांध साचा ॥ १३ ॥ जो अग्र त्याचा न लगे भुमीसि ॥ तो लांब बांधे अतिआदरेसी ॥ तृतीयदंडासहि मध्यदेशी ॥ जें चिह्न केलें त्यजुनी तयासी ॥ १४ ॥ तो ज्या प्रदेशाप्रति जात आहे ॥ तो देश संपूर्ण भरूनि पाहे ॥ जो होय मध्यें स्थिर तो भरावे ॥ उंचप्रदेशीं अथवा खणावें ॥ १५ ॥ येणेंरितीनें अथवा जलानें ॥ समानभूमी करि सावधानें ॥ पूजूनि वास्तु बलिदान द्यावें ॥ हें सर्वग्रंथीं कथिलें स्वभावें ॥ १६ ॥ प्राचीस आरंभहि तो धरावा ॥ त्याकारणें शंकु असा करावा ॥ सुईप्रमाणें अतिसूक्ष्म अग्र ॥ मोटा मुळीं वर्तुल

तो समग्र ॥१७॥ जो ठेवितां भूतळीं स्थीर राहे ॥ तो लांबही द्वादश पर्व आहे ॥ शंकुप्रमाणें करि जे गुणातें ॥ तेणेंकरोनी करि मंडलातें ॥१८॥ ऐसें वदे श्रीधर शुद्धचित्तें ॥ यवादिके मंडल राममत्तें ॥ मांडोनियां तो बहु मध्यभागीं ॥ असा नसे शंकु तये प्रसंगीं ॥ १९॥ कनिष्ठिकातुल्य हि वेळवाचा ॥ शंकू असे बारिक अग्र त्याचा ॥ कांड्याप्रमाणें करि मूल त्यासी ॥ तो टाकितां नीट रुते भुमीसी ॥२०॥ त्यजूनि मूलासहि शंकुमानें ॥ धरूनि दोरी करि वृत्त तीनें ॥ छाया प्रवेशासहि निर्गमासी ॥ हें वृत्त पूर्वीं कथिलें विशेषीं ॥ २१ ॥ यानंतरें तें दुसरें करावें ॥ जें पूर्व ग्रंथीं लिहिलें स्वभावें ॥ शंकुप्रमाणें धरि दीर्घ दोरी ॥ समान भागें करि भाग चारी ॥ २२ ॥ भागत्रयें मंडलमध्यदेशीं ॥ रोंवूनि शंकू सरला विशेषी ॥ शंकुप्रमाणासहि एक भाग ॥ जोडूनियां तन्मित चारि सांग ॥२३॥ करूनि कील मग मंडलाचे ॥ समान वांटे करि च्यारि त्याचे ॥ दिशापरत्वें मग कील नीट ॥ मांडूनि अग्रें करि एकवाट ॥ २४ ॥ ठेवूनि शंकू पहिला स्वभावें ॥ वरील चारी किल ते त्यजावे ॥ यानंतरें मंडलही पुसावे ॥ छाया कला या पहिले असावे ॥ २५ ॥ जे पश्चिमे सुंदर वृत्त रेख ॥ शंकग्रछाया शिवतां च देख ॥ रोवूनियां बारिक येक मेखा ॥ प्रवेश होतां शिवता च देखा (घटि सर्व लेखा) ॥ २६ ॥ ह्या मंडलाची शुभ पूर्वरेखा ॥ छाया शिवे तो घटि सर्व लेखा ॥ करूनि चिह्नें अतिसूक्ष्म तेथें ॥ दिनांतरीं निर्गम होय जेथें ॥ २७ ॥ त्या अंतराचे मग भाग तीन ॥ करूनि च्यारी अथवा समान ॥ ज्या पूर्वनाडी तिहि सर्वभाग ॥ गुणून साठीं प्रमितेचि भाग ॥ २८ ॥ देवूनि लब्धांकहि एक भाग ॥ यथायने टाकुनि चिह्न सांग ॥ करूनि तेची अति शुद्ध प्राची ॥ छायाप्रवेशा वदती प्रतीची ॥ २९ ॥ त्या पूर्वदेशाहुनि वृत्त अर्द्धं ॥ उल्लंघुनि प्रोक्त वृत्तमध्य ॥ तसं प्रतीचीहुनिही करावें ॥ संपातयुग्मावरि सूत्र

द्यावें ॥ ३० ॥ प्राची प्रतीची सम दीर्घरेखा ॥ वोढोनि रोवीं सम च्यारि मेखा ॥ प्रागानना दक्षिणदक्षभागीं ॥ ते उत्तरा उत्तम वामभागीं ॥ ३१ ॥ इष्टप्रमाणें करिजे गुणातें ॥ प्रांतद्वयीं पाश असेति जातें ॥ समानभागें करि चारि भाग ॥ संधिस्थलीं चिह्न करोनि सांग ॥ ३२ ॥ पूर्वप्रदेशीं अणि दक्षिणेसीं ॥ ज्यायुग्ममेखा अचला विशेषी ॥ घांलूनि पाशद्वयही तयासीं ॥ मध्यास वोढी मग बाह्यदेशीं ॥३३॥ तो अग्निकोण अति सप्रमाण ॥ येणेरितीनें करि सर्वकोण ॥ जो दक्षिणे तो करि उत्तरेसी ॥ वोढूनि मध्यासहि ईशदेशीं ॥३४ ॥ पूर्वस्थ पाशीसहि पश्चिमेसीं ॥ घालूनि वोढी गुण मध्यदेशीं ॥ तो वायुकोण मग उत्तरेसी ॥ जो पाश तो घालुन दक्षिणेसी ॥ ३५ ॥ वोढूनि मध्यासहि सर्वमाने ॥ नैर्ऋत्यकोणादिक शुद्ध जाणे ॥ रोवूनि कोणीं सरल्या सुमेखा ॥ वेष्टूनि दोरी करि वेद रेखा ॥३६॥ येणेरितीनें करि वेदकोण ॥ इष्टार्द्धमानें सम च्यारि मीन॥ मच्छप्रकारासहि बोलताहे ॥ हें सर्व ग्रंथीं कथिलेंच आहे ॥ ३७ ॥ प्रत्यक्सुपूर्वायमउत्तरेसी ॥ रोंवूनि मेखा सरल्या विशेषी ॥ इष्टार्धमानें करिजे गुणासी ॥ प्रांतद्वयीं पाश असोनि ज्यासी ॥ ३८ ॥ पूर्वेस जो कील तयासि पाश ॥ घालोनियां तो दुसरा सलीस ॥ वोढून मध्यासहि वृत्त तेणें ॥ समान रेखा करि सावधानें ॥ ३९ ॥ दिशापरत्वें सम वेद ४ वृत्तें ॥ करूनियां सावध शुद्धचित्तें ॥ संपात होती मग जेथजेथें ॥ देऊनि सूत्रें सरलीं च तेथें ॥ ४० ॥ येणेरितीनें करि वेद कोण ॥ यानंतरें मंडप सर्वमान ॥ तीं बोलतो श्रीधरवत्सगोत्री ॥ जें बोलिले सर्वही ग्रंथमात्रीं ॥ ४१ ॥ कनिष्ठ तो मंडप अष्ट हस्त ॥ दाहाथवा द्वादश हीनहस्त ॥ यानंतरें मंडप हस्त बारा ॥ चौदाथवा षोडश मध्य सारा ॥ ४२ ॥ सोळाथवाष्टादश वीस हस्त ॥ बावीस चोवीसहि तो प्रशस्त ॥ स्थलप्रमाणें करि मंडपातें ॥ ऐसें वदे श्रीधर शुद्ध-

चित्तें ॥ ४३ ॥ समान वांटे नव मंडपाचे ॥ करूनि मध्यस्थल वेदिकेचे ॥ जें मंडपाचें मधिलें च सूत्र ॥ करी तयाचें समभाग नेत्र ॥४४॥ मधील भागें करि वेदिकेची ॥ लांबीथवा रुंदि वदे न उंची ॥ तृतीय वा तुर्यीहि पंचमांशें ॥ षट्सप्तमांशे अथवा नवांशें ॥ ४५ ॥ एकादशांशें करि उंच वेदी ॥ लांबी सभागादिक सूत्रवेदी ॥ वर्त्तूल वा वेद ४ समान कोण ॥ करून वेदी अतिसप्रमाण ॥४६॥ पक्वेष्टकानीं करि वेदिकेच्या ॥ भिंती समा घालुनि मृत्तिकेच्या ॥ कोणीं तयांचे पृथु चारि खांब ॥ रोंवीं ऋजु द्वादशहस्त लांब ॥ ४७ ॥ पक्षांतरीं उत्तम मंडपाचे ॥ मानार्द्धमानें करि चार साचे ॥ स्वपंचमांशें दृढ सर्व रोंवी ॥ कुसें समस्तासहि तीं करावीं ॥ ४८ ॥ ईशानकोणीं आणि अग्निकोणीं ॥ नैर्ऋत्यकोणीं मग वायुकोणीं ॥ दिशापरत्वें मग दोनि दोनी ॥ त्रिभागसूत्रें बरवी धरूनी ॥ ४९ ॥ समान वर्तूलहि पंच हस्त ॥ करूनियां द्वादश खांब शस्त ॥ सायादिकाचे सरले समस्त ॥ भूमींत रोंवी ऋजु एक हस्त ॥ ५० ॥ प्रांतद्वयीं छिद्र असे जयांतें ॥ सोळा सुकाष्ठें सम त्या कुसातें ॥ घालूनि घाली मग कर्णकाष्ठें ॥ चत्वारि कोणीं सरला वरिष्ठें ॥ ५१ ॥ जैसें असे शीखर देउळासी ॥ तैसा करी मंडप मध्यदेशीं ॥ सायादिकाचे सरले सुदंड ॥ ते वेळवाचे अथवा उदंड ॥ ५२ ॥ प्रांतद्वयीं सर्वहि ते खिळावे ॥ स्थलस्थलीं वा बहु आवळावे ॥ तृणादिकीं मंडप तो शहावा ॥ सर्वत्रही निर्गल तो करावा ॥ ५३ ॥ कनिष्ठ मध्योत्तम मंडपासी ॥ द्वारें करावीं द्विकरें तयासी ॥ वेदांगुलें वर्द्धन मध्यमासी ॥ अष्टांगुलें वर्धन उत्तमासी ॥ ५४ ॥ दिशापरत्वें शुभ वेदद्वारें ॥ करोनियां सर्वहि तीं विचारें ॥ द्वाराहुनी बाहिर हस्तमात्रें ॥ तीं तोरणेंही बरवीं विचित्रें ॥ ५५ ॥ अश्वत्थ औदुंबरपिंपरीची ॥ दिशापरत्वें सरळी वडाची ॥ रोंवून काष्ठें ऋजु पंचहस्तें ॥ तीं षट्करेखा शुभ सप्त-

हस्तें ॥ ५६ ॥ करूनि काष्ठासहि दीर्घचूडा ॥ यानंतरे काष्ठ तृतीय जोडा ॥ द्विहस्त ते काष्ठ कनिष्ठ जाणें ॥ षडंगुळे अधिकमध्यमानें ॥ ५७ ॥ यानंतरे उत्तम मंडपाचे ॥ सुकाष्ठ ते अडिच हस्त साचे ॥ प्रांतद्वयीं छिद्र असे जयाचे ॥ ते काष्ठ जोडी सरले शिखाते ॥ ५८ ॥ जोडूनियां मस्तक मध्यभागीं ॥ सुशंखपूर्वासवि विष्णुयागीं ॥ स्वरक्षणाचक्रहि दक्षिणेसी ॥ गदा सदा रक्षण पश्चिमेसी ॥ ५९ ॥ जे उत्तरे पद्म हरूनि छद्म ॥ ते रक्षिता सर्वहि यज्ञसद्म ॥ हेरंबदुर्गाशिवसूर्ययागीं ॥ त्रिशूल सर्वत्र दिशा प्रसंगीं ॥ ६० ॥ नवांगुळे लांब मधील शृंग ॥ अडीचपर्वे ऋजु रुंद सांग ॥ वक्रे करावी मग दोन्हि शृंगे ॥ ऐसें वदे श्रीधरही प्रसंगें ॥ ६१ ॥ द्वारें वरीं सोडुनि मंडपासी भींती समा घालुनि बाह्यदेशीं ॥ केळी विशाला मग खांब मात्रीं ॥ रोवी वदे श्रीधर वत्सगोत्री ॥ ६२ ॥ वस्त्रें विचित्रें सुनवीं सुताचीं ॥ अनेकवर्णें वर रेसिमाचीं ॥ मुक्ताफळाचें बहुसाल गुष्ट ॥ जयापुढें शुक्रसमूह तुष्ट ॥ ६३ ॥ घंटा प्रचंडा लघु घंटिकाही ॥ सुवर्णदंडांकित चामरेंही ॥ सुस्वादखाद्यें चणकादिकांचीं ॥ फळें फुलें फारहि चंपकाचीं ॥ ६४ ॥ विशाल नारेळ रसाळ केळें ॥ पत्रें पवित्रे रुचिरे प्रवाळें ॥ अनेक शोभाकर वस्तुमात्र ॥ जे पूर्वग्रंथीं कथिले पवित्र ॥ ६५ ॥ या मंडनीं मंडित मंडतपाते ॥ करी वदे श्रीधर स्वस्थाचित्तें ॥ टाकून वेदीसहि हस्तमात्र ॥ दूरी करावे शुभ कुंडमात्र ॥ ६६ ॥ संपूर्णसिद्धी चतुरस्रकुंडीं ॥ ज्या सर्वग्रंथीं कथिले उदंडी ॥ योन्याख्य कुंडीं बहुसाल पुत्र ॥ खंडेंदुकुंडी शुभ होय चित्त ॥ ६७ ॥ शत्रूसही नाश घडे त्रिकोणे ॥ वृत्ते बहू शांति घडेल जाणे ॥ षट्कोणकुंडीं रिपु सर्व नाशे ॥ उच्छेद वा होत असे विशेषे ॥ ६८ ॥ पद्मे पडे पाउस सर्वदेशीं ॥ अष्टास्र रोगादिक दुःख नाशी ॥ दिशापरत्वें कारि अष्टकुंडे ॥ हें सर्व शास्त्रीं कथिलें उदंडे ॥ ६९ ॥ आचार्यकुंडासहि ईश पूर्व ॥ मध्ये

करावें वदताति सर्व ॥ वेदास्त्र वा वर्तुल तें करावें ॥ हीं अंककुंडे कथिलीं स्वभावें ॥ ७० ॥ सप्तास्त्रिकुंडें अभिचारनाशे ॥ पंचास्त्रिने दैवत भूत नाशे ॥ ईशान्यकोणीं करि कुंड एक ॥ मध्येथवा हे वदती अनेक ॥ ७१ ॥ वेदी करावी मग ईशकोणीं ॥ व्यासादिकें हें कथिलें पुराणीं ॥ हेमाद्रिकल्पद्रुमखंडसूत्रीं ॥ श्रीशंकरें हें कथिलें स्वतंत्रीं ॥ ७२ ॥ भूदेव राजन्यहि वैश्य शूद्र ॥ यालागि कुंडे कथि रामचंद्र ॥ वेदास्त्र तें वर्तुल अर्धचंद्र ॥ त्रिकोणकुंडे वदला वितंद्र ॥ ७३ ॥ चतुर्दशाज्याहुति नेम जेथें ॥ प्रदेशसंख्या करि कुंड तेथें ॥ याहूनिही न्यून नसेचि होम ॥ कात्यायने हा कथिला च नेम ॥ ७४ ॥ हा लौकिकाग्नीवरि नेम जाणे ॥ कुंडासही वर्द्धन याप्रमाणें ॥ ग्रासा न ग्रासी करि वृद्धि येका ॥ यवद्वयायुक्ताहि तीन यूका ॥ ७५ ॥ येणे रितीनें बहुता प्रयत्नीं ॥ शतार्द्धहोमीं करि कुंड रत्नी ॥ यानंतरें वर्द्धनग्रास-मात्रीं ॥ जे बोलिले शंकर सर्वतंत्रीं ॥७६॥ यूकाद्वये वर्द्धनही प्रयत्नीं ॥ शांती करी कुंडहि ते अरत्नी ॥ येथूनही वर्द्धन ग्रासमात्रीं ॥ जे पूर्व-ग्रंथी कथिलें पवित्रीं ॥ ७७ ॥ वालाग्र साहा रथरेणु साहा ॥ पंचप्र-माणें त्रसरेणु पाहा ॥ प्रत्याहुती मान वदोति शस्त ॥ सहस्रहोमी करि कुंड हस्त ॥ ७८ ॥ एकाहुतीला मग हेचि मान ॥ वालाग्र केसांतसमान जाण ॥ दाहा सहस्रासहि दोन हस्त ॥ साधूनियां कुंड करी प्रशस्त ॥ ७९ ॥ येथूनही वर्द्धन ग्रासमात्रीं ॥ वालाग्र केसांत समस्त तंत्रीं ॥ लक्षाहुतीला शुभ वेदहस्त ॥ यानंतरें वर्द्धन हे प्रशस्त ॥ ८० ॥ एकाव-दाना त्रसरेणु तीन ॥ दाहा सुलक्षा रस ६ हस्त जाण ॥ कोटीस मोठे वसु ८ हस्त कुंड ॥ पक्षांतरातें वदती उदंड ॥ ८१ ॥ एकैकलक्षासहि एकहस्त ॥ कुंडप्रवृद्धी वदती प्रशस्त ॥ कोटीस दाहाकरकुंड जाण ॥ पक्षांतरीं स्कंद वदेल मान ॥ ८२ ॥ जे चारि हस्त ऋजु लांब रुंद ॥ हे कोटिहोमी जरि हव्य मंद ॥ लक्षासही हस्तप्रमाण कुंड ॥ घृतादि-

होमी वदती उदंड ॥ ८३ ॥ प्रादेश तो अर्धप्रकोष्ठ जाणे ॥ वितस्ति-हस्तार्द्धेंहि याचि मानें ॥ दाहा सुपर्वें यव चारि माने ॥ प्रादेशसंख्या वदताति जाणे ॥ ८४ ॥ वितस्ति तो द्वादश पर्व सर्व ॥ जो रत्नि तो विंशाति एक पर्व ॥ अडीचपर्वें अणि वीसपर्व ॥ अरत्नि त्याते वदिजेल सर्व ॥ ८५ ॥ हस्तास चोवीसहि पर्व मान ॥ हस्तद्वया चौतिस पर्व जाण ॥ चाळीस ४० एक १ यवपंचयुक्त ॥ हस्तत्रया मान वदेति युक्त ॥ ८६ ॥ चतुःकराला गुणि पर्वमान ॥ अष्टाधिकें चाळिस ४८ शुद्ध जाण ॥ चौपन्नपर्वें यव दोनि न्यून ॥ हे पंचहस्तासहि शुद्ध मान ॥ ८७ ॥ पन्नासपर्वें अणि आठपर्वें ॥ यवाद्रि ७ माने करषट्क सर्वें ॥ यव च्यारि त्रिषष्टि ६३ हि शुद्धपर्वें ॥ हे हस्तसातासहि मान सर्वें ॥ ८८ ॥ यव सात साताधिक साठि पर्वें ६७ । ७ ॥ हे अष्टहस्ता-सहि मान सर्वें ॥ यव सात ७ एकाधिक सत्तरीने ७१ ॥ नवा सुहस्ता-साहि मान तेणें ॥ ८९ ॥ षड्डुत्तरी ७६ सत्तरिं पूर्वपंक्ती ॥ दाहा करी हें कथिलें सुयुक्ती ॥ याहूनिहीं कुंड नसेल थोर ॥ मानी बरा हा करुनी विचार ॥ ९० ॥ समाप्त केलें शुभ कुंडमान ॥ ऐसे वदे श्रीधर सावधान ॥ वेदास्र सर्वांस

ह.	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
अं.	२४	३४	४१	४८	५३	५८	६३	६७	७१	७६
य.	०	०	५	०	६	७	४	७	७	०

हि मूल कुंड ॥ याचेंच योन्यादिक ते प्रचंड ॥ ९१ ॥ पूर्वप्रकारें करि वेदकोण ॥ पूर्वेसहि स्वेष्ट धरूनि मान ॥ असे तया योनिहि दक्षिणेसी ॥ स्तंभार्थ ते अग्रहि उत्तरेसी ॥ ९२ ॥ वेदास्रसूत्रास स्वपंचमांश ॥ अग्रास योजी शुभ उत्तरेस ॥ पार्श्वद्वयापासुनि दोनि सूत्रें ॥ देवूनि अग्रे करि एक तंत्रें ॥ ९३ ॥ कर्णार्द्धअर्द्धाहुनि अर्द्ध वृत्तें ॥ करूनि दोनी अतिशुद्धचित्तें ॥ वेदास्ररेखा सकला पुसाव्या ॥ अश्वत्थपत्राकृति त्या असाव्या ॥ ९४ ॥ हे अग्निकोणीं अतिभोग देतें ॥ अनंतमत्ते नसे योनि याते ॥ सौम्याग्रहे संततिवृद्धि कर्त्तें ॥ योन्याख्य हे कुंड सम-

स्तमत्तें ॥ ९५ ॥ पक्षांतरीं जे चतुरस्र सूत्र ॥ करी तयाचे मग भाग मित्र ॥ अठाउणें दोन शतें करावे ॥. अडतीस ३८ अग्नि मग भाग द्यावे ॥ ९६ ॥ एकाउणे वीसहि दक्षिश्रोणी ॥ तेणेंप्रमाणें मग वामश्रोणी ॥ श्रोणिद्वयापासुनि अग्र जेथें ॥ वोढोनि रेखाद्वय शुद्ध तेथें ॥ ९७ ॥ श्रोण्यर्द्धमानाहुन अर्द्धवृत्तें ॥ करूनि दोनी शुभ राममत्तें ॥ पूर्वप्रकारें चतुरस्र सिद्धी ॥ करून त्याचे नवभाग आधीं ॥ ९८ ॥ टाकूनियां एक वरील भाग ॥ तैसा त्यजी खालिल एक भाग ॥ ज्यासूत्र द्यावें मग उत्तरेसी ॥ सप्तांशमानें करि दक्षिणेसी ॥ ९९ ॥ ज्यामध्यदेशाहुन अर्द्धवृत्त ॥ साधूनिया सुंदर एकचित्त ॥ हें अर्द्धचंद्राख्यहि उत्तराग्र ॥ शत्रूस हे नाश करी समग्र ॥ १०० ॥ याला असे योनिहि दक्षिणेसी ॥ याम्येस हें कुंड असे विशेषीं ॥ पक्षांतरी जे सम वेदकोण ॥ करोनियां चोविस भाग पूर्ण ॥ १ ॥ त्यजूनि खालील अडीचभाग ॥ यूका उण्या चारि करूनि सांग ॥ तावत्प्रमाणें वरिही त्यजावे ॥ सौम्ये समोरी शुभ सूत्र द्यावें ॥ २ ॥ यूका उण्या च्यारि ४ हि वीस भाग ॥ याम्येस येणेंप्रमितेचि सांग ॥ ज्यामध्यदेशाहुनि अर्द्धवृत्त ॥ साधूनिया सुंदर एक चित्त ॥ ३ ॥ हें अर्द्धचंद्राख्यहि उत्तराग्र ॥ शत्रूस हे नाश करी समग्र ॥ याला असे योनिहि दक्षिणेसी ॥ याम्येस हें कुंड असे विशेषीं ॥ ४ ॥ हे तीन कुंडें करि उत्तराग्रें ॥ याम्येस योनी करिता समग्रे ॥ येकेच कुंडीं करितांच होम ॥ पूर्वाग्रके पश्चिम योनिनेम ॥ ५ ॥ करूनिया क्षेत्रविभाग साहा ॥ देवूनि अग्नी दहनास पाहा ॥ एकैक श्रोणीसहि भिन्नभिन्न ॥ सूत्रत्रयें तें घडतें त्रिकोण ॥ ६ ॥ नैर्ऋत्यकोणीं करि शत्रुनाश ॥ याला असे योनिहि पश्चिमेस ॥ पूर्वाग्र हे कुंड अतिप्रचंड ॥ चंडीशतंत्रीं कथि चंद्रचूड ॥ ७ ॥ आगाउने दोनि शतें विभाग ॥ करूनियां क्षेत्रि विभाग सांग ॥ पादोन पन्नासहि दक्षश्रोणी ॥ तेणेंप्रमाणें

मग वाम श्रोणी ॥८॥ अग्रास योजी शुभ साठि भाग ॥ सुषट्क्यूका ६ समवेत सांग ॥ हे विश्वनाथें कथिलें प्रमाण ॥ सूत्रत्रयें ते घडत त्रिकोण ॥ ९ ॥ जिनांश क्षेत्रासहि पांचपांच ॥ श्रोणिद्वया योजुनि भाग साच ॥ विनाष्टमांशे दशभाग अग्रीं ॥ त्रिकोणसूत्रत्रयही समग्री ॥ ११० ॥ हे राममत्तें बहु शुद्ध कुंड ॥ नैर्ऋत्यकोणी वदती उदंड ॥ याला असे योनिहि पश्चिमेस ॥ पूर्वाग्र हें नाश करी रिपूस ॥ ११ ॥ करून अष्टादशक्षेत्रभाग ॥ अग्रास योजीं शुभ एक भाग॥ तेथून मध्याह्नवृत्त साधी ॥ हे शारदाकार वदे सुबुद्धी ॥ १२ ॥ करूनियां षोडशभाग क्षेत्रीं ॥ त्या एकभागा मग मध्यसूत्रीं॥ योजून मध्याहुन वृत्त साधी ॥ हें रामचंद्रें कथिलेंच आधीं ॥ १३ ॥ हें पश्चिमे सुंदर वृत्त कुंड ॥ पूर्वाग्र ऐसे वदती उदंड ॥ याला असे योनिहि पश्चिमेसी ॥ हें शांति देते सकला जनांसी ॥ १४ ॥ करूनियां क्षेत्रविभाग आठ ॥ अग्रास योजी ऋजु एक नीट ॥ यूका उण्या सप्त करून त्यांत ॥ येथून मध्याहुन नीट वृत्त ॥ १५ ॥ वृत्तांतरालीं शुभ पश्चिमेसी ॥ कदा नये कोण असे विशेषी ॥ करून ज्याषट्कहि तें करावें ॥ व्यासार्द्धमानें कथिलीं स्वभावें ॥ १६ ॥ एकैक ज्यामंडल अर्द्धतुल्य ॥ वोढून रेखा रस ६ सर्वतुल्य॥ वेदास्र वर्तूल हि तें पुसावें ॥ षट्कोण कुंडाकृति तें असावें ॥ १७॥ हे वायुकोणीं रसकोणकुंड ॥ पूर्वाग्र ऐसे वदती उदंड ॥ याला असे योनिहि पश्चिमेसी ॥ उच्चाट वा मारणकर्म यासी ॥ १८॥ हें विश्वनाथें कथिलें विशेषीं ॥ यानंतरें राम वदेल जोसी ॥ आठाउणे दोन शतें विभाग ॥ करून क्षेत्रीं सम शुद्ध सांग ॥ १९ ॥ यानंतरे दक्षिण उत्तरेचे ॥ जें सूत्र त्यातें अधऊर्ध्व साचें ॥ देऊनि सूरी सम पंचवीस ॥ ऊर्ध्वाधरी सात अधीक वीस ॥ १२० ॥ चिह्नद्वयापासुनि दोनि मच्छ ॥ मध्यस्थसूत्रीं समलग्नस्वस्थ ॥ येणे रितीनें दूसरेकडेही ॥ करूनि मच्छद्वय शुद्ध पाही ॥ २१॥ पूर्वे प्रतीचीहुनि चारि रेखा ॥ वोढुन मच्छावरि दोन देखा॥

वेदास्त्ररेखा सगळ्या पुसून ॥ येणेंरितीनें रसकोण जाण ॥ २२ ॥ हें वायुकोणीं रसकोणकुंड ॥ पूर्वाग्र ऐसे वदती उदंड ॥ याला असे योनिहि पश्चिमेसी ॥ उच्चाट वा मारणकर्म यासी ॥ २३ ॥ करूनि चोवीसही क्षेत्रभाग ॥ रामांशके ३ वृत्त मधील सांग ॥ ते कर्णिका के शरभूमिवृत्त ॥ रसांशकी साधुनि शुद्धचित्त ॥ २४ ॥ यानंतरे तें तिसरे करावें ॥ नवांशके ते दलमध्य भावें ॥ सूर्यां १२ शके वृत्त चतुर्थ आहे ॥ तेणें करी ते दल वक्रता हे ॥ २५ ॥ जे पांचवें वृत्त तयासमान ॥ पंधरांगुलें व्यास तयास न्यून ॥ समान यूका करि पांच त्यासी ॥ दलाग्रताहे कथिली विशेषी ॥ २६ ॥ जो कर्णिकेचा शुभ अर्द्ध व्यास ॥ ते उच्चता सांगहि कर्णिकेस ॥ त्यजून मध्येंचहि कर्णिकेस ॥ यानंतरें खात करा विशेष ॥ २७ ॥ ते कर्णिकेचे शुभ मूल देशीं ॥ ते केसरेही बरवीं विशेषीं ॥ ती केशरें आठ चतुर्दलासी ॥ सोलासमेतें वसुपत्रकासी ॥ २८ ॥ हे उत्तरे पुष्टिकरी जनासी ॥ पूर्वाग्रहें योनिहि पश्चिमेसी ॥ पद्माख्य हें नाभि नसोचि जाण ॥ हें विश्वनाथें कथिलें प्रमाण ॥ २९ ॥ करूनियां क्षेत्रविभाग आठ ॥ त्या अष्टमांशें करि वृत्त नीट ॥ ते कर्णिका विस्तृति तुल्य उच्च ॥ षडंगुलें केशर वृत्त साच ॥ १३० ॥ नवांगुलें सूत्र धरूनि नेमीं ॥ तेणें सुवृत्तें दलमध्य भूमी ॥ बारांगुलें सूत्र करूनि वृत्तें ॥ तेणे दलोर्ध्वा वसुधा सुचित्तें ॥ ३१ ॥ चौदांगुलें सात यवप्र-माणें ॥ धरूनि दोरी करि वृत्त तीणे ॥ दलाग्रके सुंदरसी करावीं ॥ वृत्तार्थ भूते सहजे त्यजावीं ॥ ३२ ॥ त्यजून मध्येंचहि कर्णिकेस ॥ यानंतरें खात करी विशेष ॥ ते कर्णिकेचे शुभ मूलदेशीं ॥ ती केश-रेंही बरवीं विशेषीं ॥ ३३ ॥ हीं केशरें अष्टचतुर्दलेंशी ॥ सोला समेती वसुपत्रकासी ॥ हे उत्तरे पुष्टि करी जनासी ॥ पूर्वाग्र हे योनिहि पश्चिमेसी ॥ ३४ ॥ पूर्वाग्र हे नाभि नसोच जाण ॥ हे नैमिषस्थे

कथिलें प्रमाणें ॥ साधूनियां चोविस भाग क्षेत्रीं ॥ अर्डीच ते भागहि मध्यसूत्रीं ॥ ३५ ॥ योजून मध्याहनवृत्त कीजे ॥ ज्या अष्टदाने वसुकोण राजे ॥ ज्या अष्टदानास हि नेम आहे ॥ दिशापरत्वें वसुसंख्य पाहें ॥ ३६ ॥ प्रांतद्वयीं ज्या समलग्न सूक्ष्म ॥ वृत्तांतरी हे वसुकोण लक्ष्म ॥ ईशानकोणीं अतिमोक्ष देते ॥ प्रागग्निका पश्चिमयोनि याते ॥ ३७ ॥ हें विश्वनाथें कथिलें सुचित्तें ॥ यानंतरे राम वदे तयाते ॥ चोवीस वाटे करि वेद कोणीं ॥ यवद्वयायुक्तहि भाग दोनी ॥ ३८ ॥ दिशापरत्वें इतकेच भाग ॥ योजूनियां सर्वसमान सांग ॥ याम्योत्तरे पश्चिम पूर्वदेशीं ॥ योजूनवेदास्र दुजे विशेषीं ॥ ३९ ॥ करूनियां शुद्ध समान कोण ॥ वेदास्ररेखा समही करून ॥ तया सचिन्हें भुजमध्यदेशीं ॥ करूनियां अष्टहि तीं विशेषी ॥ १४० ॥ आद्य तृतीयासहि एक रेखा ॥ वोढूनियां अष्ट समक्ष देखा ॥ वेदास्रयुग्मासहि ते पुसावे ॥ संपातरेखाष्टक लोपवावे ॥ ४१ ॥ येणें रितीनें वसुकोण कुंड ॥ श्रीरामचंद्रें कथिलें प्रचंड ॥ ईशानकोणीं अतिमोक्ष देते ॥ प्रागग्निकापश्चिमयोनि याते ४२ ॥ आचार्य कुंडाकृति वेद कोण ॥ पक्षांतरीं वर्त्तुल वा समान ॥ ईशान्यपूर्वेसहि मध्यदेशी ॥ याला असे योनिहि दक्षिणेसीं ॥ ४३॥ हे अंक ९ कुंडें कथिलीं प्रमाण ॥ पंचास्रिसप्तास्रिहि भिन्न जाण ॥ क्षेत्रार्द्धं त्याचें करि सूर्यभाग ॥ यवत्रयायुक्तहि तीन भाग ॥ ४४ ॥ चत्वारियूकावरि त्यास जाणें ॥ योजून दोरी करि त्या प्रमाणें ॥ करून मध्याहुन वृत्त तीणे ॥ ज्या पंचधा व्यासमयाप्रमाणें ॥ ४५ ॥ त्या मंडलाचा मग सर्व व्यास ॥ करूनियां पंचविभाग त्यास ॥ टाकून भाग द्वय या प्रमाणें ॥ ज्यामान भागत्रय शुद्ध जाणें ॥४६॥ पूर्वेस आरंभ धरून देणें ॥ ज्याषष्ठमांशे शर त्यास जाणें ॥ येणें रितीनें सम पंच चापें ॥ होतांचि पंचास्रि घडे स्वरूपें ॥ ४७ ॥ वेदास्रवर्तूल हि तें पुसावें ॥ पूर्वाग्र हें कुंड असे स्वभावें ॥

याला असे योनिहि पश्चिमेसी ॥ हे साधकाचा अभिचार नासी ॥ ४८ ॥ व्यासार्धे छत्तीस विभाग कीजे ॥ सातांविभागीं मग आड-वीजे ॥ तन्मान दोरी कारि वृत्त तीणें ॥ तयांत ज्या सातहि या प्रमाणें ॥ ४९ ॥ करूनियां व्यासविभाग वीस ॥ नवांशका ज्या पडताति त्यास ॥ एकैक अंशें सम सात बाणा ॥ सुसात चार्वासुनि ७ कोन जाणा ॥ १५० ॥ पूर्वाग्र हें योनिहि पश्चिमेसी ॥ भूतें समस्तें सहजेंचि नासी ॥ हें श्रीधरानें कथिलें प्रसंगें ॥ यानंतरें क्षेत्रफळास सांगे ॥ ५१ ॥ एके सुहस्तीशतपंच साग्र ॥ शाहात्तरि ५७६ आधिक ते समग्र ॥ सहस्र एक शत एक जाण ॥ बावन्नपर्वें ११५२ द्विकरा-समान ॥ ५२ ॥ सत्रा शते आणिक वीस आठ १७२८ ॥ हस्त त्रया मान वदंति श्रेष्ठ ॥ तेवीसशे च्यारि २३०४ चतुःकराचे ॥ हें मानहि क्षेत्रफळींच साचें ॥ ५३ ॥ सहस्र दोन्ही शत आठ ऐसी २८८० ॥ हे पञ्चहस्तीं वदताति जीसी ॥ सहस्र तीन शता चारि जाण ॥ छप्पन्नपर्वी ३४५६ रसहस्तमान ॥५४॥ चाळीससें बत्तीस पर्वं ४०३२ पंक्ति ॥ हे सप्तहस्तासहि थोर युक्ति ॥ सेताळसे आठ ४६०८ हि अष्टहस्त ॥ हे बोलिले क्षेत्रफळीं प्रशस्त ॥ ५५ ॥ सहस्र पांच शत एक ऐसी ॥ वेदांगुळें ५१८४ ती नवहस्तकासी ॥ सहस्रपांचशत सात साठीं ५७६० ॥ दाहाकरि क्षेत्रफळीं च गोठी ॥ ५६ ॥ क्षेत्रानुसारें फळ वर्तवावें ॥ हें श्रीधरानें कथिलें स्वभावें ॥ जन्मानसे क्षेत्रफळीं च ज्ञान ॥ तेणें धरावे मग कर्णमान ॥ ५७ ॥ पूर्वप्रकारें करि हस्तमात्र ॥ वेदास्र त्याचे ऋजुकर्णसूत्र ॥ हस्तद्वया-लागुन तेंच मान ॥ येणे रितीनें दशहस्त जाण ॥ ५८ ॥ हस्तद्वया-चे मधिलेंच सूत्र ॥ यामोत्तरें योजुन हस्तमात्र ॥ पूर्वप्रतीचीसहि दीर्घ द्यावें ॥ तत्कर्णसूत्रे कर तीन भावें ॥ ५९ ॥ हस्तत्रयाचे मधिले च सूत्र ॥ येरी कडे लावुन हस्तमात्र ॥ धरून त्यातें मग कर्ण सूत्र ॥ ते

वेदहस्तासहि मात्र चित्र ॥ १६० ॥ चतुः कराचा माधिला च व्यास ॥ दुजेकडे हस्तहि सावकाश ॥ योजून त्याचा मग जोच कर्णं ॥ ते पंचहस्ताहि मान पूर्ण ॥ ६१ ॥ साहा करा पासुनि हस्त दाहा ॥ येणेरितीनें करुनीच पाहा ॥ ध्वजायकुंडासहि शुद्ध देता ॥ हे एकहस्ती वदताति वार्ता ॥ ६२ ॥ तिथ्यंश १५ ते खात समस्त मतें ॥ विस्तारतां तुल्यहिं वाम तीतें ॥ त्या मेखलाची शुभ उच्चता जे ॥ टाकून शेषांशक खात कीजे ॥ ६३ ॥ त्या मेखला टाकुनि व्यासमात्र ॥ पक्षांतरीं खात करीं पवित्र ॥ ऐसे वदे श्रीधर एक भावें ॥ कुंडास कंठादिक तें करावें ॥ ६४ ॥ करूनियां व्यास जिनांश २४ श्रेष्ठ ॥ एकांशकें तो करि नीट कंठ ॥ खाताहुनी बाहिर सर्वदेशीं ॥ सूर्यांशके वा वदती तयांसी ॥ ६५ ॥ त्या मेखला तीन करी तयांस ॥ करूनियां चौविस भाग व्यास ॥ नवांश तेही वरलीच उंच ॥ वेदांशकीं ते ऋजु रुंद साच ॥ ६६ ॥ रसांशकी उंच मधील मेखला ॥ रामांशकी रुंद समा विशाला ॥ अंशत्रयें उंचहि रुंदभाग ॥ द्वये करूनी शुभ सर्व सांग ॥ ६७ ॥ पक्षांतरी बाहिर अंग उंच ॥ विस्तारतुल्या वदताति साच ॥ पक्षांतरीं ते दश अंश उंच ॥ कंठाहुनी आंतिल भाग साच ॥ ६८ ॥ त्या मेखला बाहिर रुंद उंचा ॥ वेदांगुलें सर्वहि वेद वाचा ॥ पक्षांतरीं पांच तयास मेखला ॥ त्या उक्त मानें बरव्या विशाला ॥ ६९ ॥ सा ६ पांच ५ च्यारी ४ तिन ३ दोनि २ अंश ॥ यथाक्रमें रुंद करी विशेष ॥ एकांश १ साहा ६ यव तीन यूका ॥ ही उच्चतेनें कारि एक एका ॥ १७० ॥ षडंशके उंचहि रुंद एका ॥ ते मेखला मान्य समस्त लोका ॥ कुंडस्वरूपाकृति मेखलासी ॥ योन्यादिकुंडीं कथिली विशेषीं ॥ ७१ ॥ कंठाहुनी उंच सुसात भाग ॥ वेदांशकी रुंद करूनि सांग ॥ रामांशकी उच्च दुजी करावी ॥ विस्तारता तेचि तये धरावी ॥ ७२ ॥ द्विमेखलापक्ष समस्त मान्य ॥ करील तो सर्वजनांत धन्य ॥

हे मेखलाचे बहुसाल पक्ष ॥ जाणोनि संपादिल तोचि दक्ष ॥ ७३ ॥ यानंतरें चोविस भाग व्यास ॥ करूनियां सुंदर सावकाश ॥ व्यासार्द्ध मानें करि दीर्घयोनी ॥ अष्टांश रुंदी बरवी धरूनि ॥ ७४ ॥ ते येक अंशे वरि मेखलासी ॥ हे उच्चताही कथिली तयासी ॥ एकांश कुंडांतरिं तीस अग्र ॥ कंठास संलग्न असे समग्र ॥ ७५ ॥ हा अग्र दीर्घाहुनि भिन्न नाहीं ॥ एकांशकें वेष्टण दे तिलाही ॥ सरंध्रनालाहुनि अग्र तीचा ॥ ग्रंथांतरीं सूक्ष्म करूनि साचा ॥ ७६ ॥ वार्त्तार्द्धयुग्में करि मूलदेशीं ॥ अश्वत्थपत्राकृति ते विशेषीं ॥ अधःप्रदेशीं करि वेष्टनास ॥ एकांशमानें कथि पर्व तीस ॥ ७७ ॥ हे मेखलात्रे बहु मध्यभागीं ॥ कुंडापरत्वें करि दिग्विभागीं ॥ योनीसमूली करि माल नीट ॥ सरंध्रवृत्तद्वय लग्न श्रेष्ठ ॥ ७८ ॥ उर्वीहुनी वर्तुल नाल साधीं ॥ योनीप्रमाणें करि उंच आधीं ॥ हे योनिकुंडासहि योनि नाहीं ॥ पद्माख्यकुंडासहि नाभि नाहीं ॥ ७९ ॥ यानंतरें नाभिहि कुंडमात्री ॥ करी वदे श्रीधर अग्निहोत्री ॥ ते अष्टकुंडासहि मध्य देशीं ॥ करूं तया चोविसभाग व्यासीं ॥ १८० ॥ करूनि अंशद्वय नाभि उंच ॥ वेदांशकें ४ लांबहि रुंद साच ॥ वेदास्त्र वा वर्तुल याच मानें ॥ वा पद्मिनीपुष्पसमाकृतीनें ॥ ८१ ॥ हा श्रेष्ठ जाणा नवकुंडपक्ष ॥ जाणोन संपादिल तोचि दक्ष ॥ यानंतरें मध्यम पक्ष पंच ॥ कुंडें करावीं वदताति साच ॥ ८२ ॥ पूर्वेस वेदास्त्रहि दक्षिणेसी ॥ खंडेंदुवर्त्तूलहि पश्चिमेसी ॥ पद्माक्ष सौम्ये हरइंद्रमध्य ॥ आचार्यकुंडा करिजे प्रसिद्ध ॥ ८३ ॥ वेदास्त्र वा वर्तुल तें करावें ॥ हे पंचकुंडी कथिली स्वभावें ॥ ८४ ॥ हाही असे मध्यम पक्ष सर्व ॥ पूर्वार्द्ध देतां वदताति सर्व ॥ मध्यें ईशान्यकोणीं करि एक कुंड ॥ तें पश्चिमे वा वदती उदंड ॥ ८५ ॥ या करावें बहुसाल मत्तें ॥ कनिष्ठपक्षा कथिलें सुचित्तें ॥ सातावेिणें नंतरें स्थंडिल मान नीट ॥ पक्षांतरीं हे कथि नीलकंठ ॥

नाभिरहीत कंठ । त्रिमेखलायोनि समेत श्रेष्ठ ॥ ८६ ॥ याला असे मंडपमान पूर्व ॥ तीं तोरणें द्वारसमेत सर्व ॥ होमानुसारें करि मध्य-सूत्र ॥ पूर्वप्रकारें कथितें विचित्र ॥ ८७ ॥ वेदांगुले उंच षडंगुले वा ॥ वेदास्त्र वोटा बरवा करावा ॥ श्वेताथवा रक्तहि मृत्तिकेचा ॥ पक्षांतरीं बारिक वाळवेचा ॥ ८८ ॥ होमानुसारें करि युक्त माने ॥ हा स्थंडिली मध्यम पक्ष जाणे ॥ कनिष्ठपक्षीं करि कुंकुमाचे ॥ वेदास्त्रयूका सम उच्च साचे॥ ८९॥ निशासुचूर्णं अणि शालिचूर्णं ॥ पक्षांतरीं गोधुमशुद्धचूर्णं॥ योन्यादिकुंडाकृति यासि नाहीं ॥ तैसेच कुंडांगहि सर्व नाहीं ॥ १९०॥ खातांतरीं श्वेत समस्त कुंड ॥ ते नाभिरक्ता वदती उदंड ॥ यानंतरें योनिहि रक्तपीता ॥ त्रिमेखलावर्ण वदेन आतां ॥ ९१॥ वरील ते श्वेत करूनि मेखला ॥ मधील रक्तासह जे विशाला ॥ तृतीय ते कृष्ण स-मस्त जाण ॥ त्याखालिली भूमिहि पीतवर्ण ॥ ९२॥ सुश्वेतवर्णा अणि रक्तवर्णा ॥ सुकृष्णवर्णा मग पीतवर्णा ॥ हरिन्मणीवर्ण समानवर्णा ॥ सर्वत्रही भूमि सुवर्णवर्णा ॥ ९३॥ हे मेखला पंचकवर्ण जाणे ॥ द्विमेखला श्वेत सुरक्तवर्णें ॥ षडंशकें उंचहि रुंद मेखला ॥ ते श्वेतवर्णा बरवी विशा-ला ॥ ९४ ॥ श्रीरामभट्टात्मज श्री लघू जो ॥ शिवार्चनी तत्पर सर्वदा जो ॥ त्याला असे पुत्रहि कृष्णभट्ट ॥ तत्पुत्र नागेशहि सर्व-श्रेष्ठ ॥ ९५ ॥ तत्पुत्र श्रीसूर्यहि वत्सगोत्री ॥ तत्पुत्र जो श्रीधर अग्निहोत्री ॥ तेणें असे मंदमतीस केला ॥ संपूर्ण कुंडार्णव सिद्ध झाला ॥ १९६ ॥

इति कुंडार्णवः समाप्तः ॥ ११ ॥

अथ कुंडाङ्कुशाख्यो ग्रन्थः १२।

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीसरस्वत्यै नमः ॥ श्रीवेदमात्रे गायत्र्यै नमः ॥ वन्दूनि पादांबुज शांभवाचे ॥ तुटे कृपेनें भवबंधजीचे ॥ कृता सुशब्द

स्तव शामजींचें ॥ बांधीन कुंडांकुश नाम ज्याचें ॥ १ ॥ समपदोच्च-
पदीपुरुषप्रभा ॥ करूनि पंचम भाग कर प्रभा ॥ तदुनिवृद्धि दशांगुल
त्या करा ॥ वर व व्यासद्विहस्तक चातुरा ॥ २ ॥ करूनि दुना शेवटिं
पाश कीजे ॥ तदर्धीं बरे शंकुचें चिह्न दीजे ॥ द्वितीयार्द्धे अर्धीं करीं
चिह्नकर्षा ॥ असा व्यास मल्लारजी पाव हर्षा ॥ ३ ॥ उदक्सूत्र प्राक्सूत्र
हातीं धरावें ॥ वरा मध्य साधूनि शंकूसि द्यावें ॥ तेथें पाश ठेऊन
व्यासार्द्धमानें ॥ धरी शंकुनें च्यार सूत्र प्रमाणें ॥ ४ ॥ प्राची प्रतीची
वरि पाश ठेवीं ॥ कर्शासि वोढूनि वरि शंकु रोवीं ॥ शंकुप्रमाणें करि
च्यार रेखा ॥ होईल वेदास्रक कुंड देखा ॥ ५ ॥ करी भाग चोवीस
व्यासप्रमाणें ॥ तसे पंधरा भाग तूं खात खानें ॥ वरी कंठ टाकून
भागप्रमाणें ॥ पुढें मेखला तीन ती भाग मानें ॥ ६ ॥ खातादिकांगुल
त्यक्त्वा मेखलां त्रिनवांगुलैः ॥ द्वि २ त्रि ३ वेदां ४ गुलोच्चा सा खातं
पंचदशांगुलम् ॥ ७ ॥ विस्तारार्द्धें उच्चता दीर्घताही ॥ व्यासत्र्यंशें
विस्तृता मूळ पाहीं ॥ मध्येगर्ता दोनि वृत्तें सनाळा ॥ कंठीं माळा
योनि होते सुशीळा ॥ ८ ॥ नवागाईसूत्रें करूनि करणें मंडप वरा ॥
अथो स्तंभारंभांसह रविमित स्थापन करा ॥ तसे मध्यें चाही वसुमित
करे ते शर करी ॥ भुमीमध्ये पंचांशकवरि सपाटी कारि वरी ॥ ९ ॥
तत्कोणे पंचहस्तान्दृढतरसरलान्सारदारुप्रभूतान्स्थूलान्स्तंभान्सुतु-
ल्यान्पितृशिखिहरिदारंभतो गर्त्तमध्ये ॥ त्रेधा भक्तेऽन्तराले युगलयु-
गलतो रोपणं पंचमांशैर्वेद्याःकोणेऽश्वपिच्छं निखनतु चतुरश्चाष्टहस्ता-
न्समंतात् ॥ १० ॥ इति स्तंभाः ॥ द्वाराणि चत्वारि दिगंतभागे द्विहस्त-
विस्तारयुतानि मध्ये ॥ वेदांगुलैरष्टाभिः साधितानि कनिष्ठमध्योत्तममंड-
पेषु ॥ ११ ॥ इति द्वाराणि ॥ न्यग्रोधोदुंबराणां चलदलजटिनां यज्ञयु-
क्छाखिनां वा स्तंभद्वंद्वं सुरम्यं कुगुणपरिधियुग्दिक्परीणाहयुक्तम् ॥
बाणैः षड्भिश्च हस्तैरचलपरिमितैर्युक्तमुक्तं गुणाढ्यं भूमीगर्त्ते निवेश्यं

निजशरलवतोऽखंडितैः पंडितैः स्यात् ॥१२॥ इति तोरणम् ॥ परिधिमानमुदाहृतमित्थं दशजिनलवः परितस्ततमध्यंतम् ॥ विरचनं च भागाकृतिगर्त्तकां युगगुणा द्विलवैर्नैलिका भवेत् ॥ १३ ॥ चतुर्द्धा करीं तूं चतुष्कोण आधीं ॥ परे भाग दोचा बरा मध्य साधीं ॥ तेथें कर्क ठेऊनि चंद्रार्द्ध रेखीं ॥ शरांशां पुढे वृद्धि द्यावी विवेकीं ॥१४॥ स्वमध्याहुनी वृद्धिपर्यंत तेंही ॥ सूत्र साधूनियां रेखिजे तिथेंही ॥ कुंड होइल अश्वत्थपत्राकृति ॥ यादवा सांगतो श्याम जोइयाप्रति ॥ १५ ॥ सामर्थ्यें गंगाधर नंदनाचें ॥ ग्रंथीं गतीबुद्धिसुसिद्ध वाचे ॥ ऐकूं नका लहान हो म्हणोनी ॥ अर्थीं धरा दृष्टि असे सुवाणी ॥१६॥

इति कुंडांकुशः समाप्तः ॥ १२ ॥

अथ कुंडोद्योतप्रारंभः ॥ १३ ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ देवर्षिरक्षःसंघानामवाङ्मनसगोचरम् ॥ प्रत्यक्षमपि तद्धाम सर्वदा समुपास्महे ॥ १ ॥ द्विजराजैकमूर्द्धन्यं वृषाध्यक्षं शिवान्वितम् ॥ काश्यां सर्वोपदेष्टारं भावये शंकरं गुरुम् ॥ २ ॥ विरोधमार्गाद्वयदर्शनार्थं द्वेधा बभूवात्र परः पुमान्यः ॥ श्रीशंकरो भट्ट इहैकरूपो मीमांसकाद्वैतमुरीचकार ॥ ३ ॥ अथ कुंडमंडपमानोपयोगिनीपरिभाषामाह ॥ कुंडमंडपनिर्माणकारिका उपकारिकाः ॥ नीलकंठकृताः संतु कंठे ताः कर्मठैः कृताः ॥४॥ रविरस्मिगतो गवाक्षगो वसुभिर्यः परमाणुभिर्मतः ॥ त्रसरेणुरयं तदष्टभी रथरेणुर्विबुधास्तथा वदन् ॥ ५ ॥ बालाग्रं लिक्षा यूका च यवोंऽगुलमिति क्रमात् ॥ वितस्तिद्वादशाग्रोंऽत्यो हस्तोऽसौ द्विगुणस्ततः ॥ ६ ॥ सार्द्धांगुलोऽरत्निः स्यात्सरत्निस्त्र्यंगुलाल्पकः ॥ ७ ॥ अथ भूशुद्धिः ॥ भूः शोध्या केशभस्मास्थिकपालाद्यापसारणैः ॥ हस्तोन्नतं तदर्धं

वा मण्डपस्थलमत्र तु ॥ ८ ॥ भूसमत्वसाधनमाह ॥ समं हि दण्डद्वयमत्र योज्यं कीलादीनां प्रांतसमीपतोऽन्यः ॥ दण्डस्तिर्यग्योज्य इतीदमित्थं त्र्यस्रं तु तन्मूलनिबद्धसूत्रम् ॥ ९ ॥ भारेण युक्तं च विधाय भूमौ निधाय दंडद्वयमग्रतोऽस्य ॥ सूत्रे तृतीयस्य हि मध्यचिह्ने कुं न स्पृशेचेत्सुसमा क्षितिः स्यात् ॥ १० ॥ अथ शंकुनिष्पत्तिपूर्वं प्राचीसाधनमाह ॥ दीर्घोऽत्रार्कांशकः शंकुः सूक्ष्माग्रः सरलः पृथुः ॥ मूलेऽथवापि सूक्ष्मोऽसौ निखेयो मूलतोऽत्र च ॥ ११ ॥ व्यासस्यार्द्धं शंकुमानाधिकं स्यादेवं कार्यं वृत्तमेकं हि पूर्वम् ॥ शंकोः सूर्यांशोनविस्तारसूत्रेणान्यत्कार्यं तत्र वांशाः प्रकल्प्याः ॥ १२ ॥ तासु स्थाप्या वै चतस्रः शलाका ऋज्वी कांत्या शंकुपादाधिकास्ताः ॥ शंकोरग्रं स्वाग्रतः संस्पृशंत्यस्ताहृच्छंकोरग्रतश्छायया या ॥ १३ ॥ अथ सूक्ष्मप्राचीसाधनम् ॥ पृष्ठाज्यायो वृत्तरेखा हि पूर्वाह्ने सा प्रत्यक्प्राक्तथैवापराह्णे ॥१४॥ यां काष्ठां रविरेति तत्र चलनं पूर्वादथो यूकया कीटे कर्कटके वृषेऽपि मकरे नो चालनं कार्मुके ॥ युग्मेऽन्यासु तु चालनं परिमितं यूकाद्वयेनोत्तमं प्राक्चिह्नस्य ततस्थिरांबुपदिशः सूत्रस्य पातोऽकतः ॥ १५ ॥ अथ रात्रौ प्राचीसाधनम् ॥ कृत्तिकाश्रवणं पुष्यं दृष्ट्वा नलिकयाथ वा ॥ ऋज्वा तदंतयोः कार्याववलंबौ तु सेंद्रदिक् ॥ १६ ॥ त्र्यस्रं स्यान्नलिकाद्वयेन च तथा दंडांतरेणात्र तौ नलयंतौ तु तथैकयत्नत इमां स्वातीं च चित्रामपि ॥ पश्येत्प्राग्नुमयोगयोगमिह तं दंडं च मध्येऽकयेदंकादन्तयुगावलंबयुगलं कुर्यादियं चेंद्रदिक् ॥ १७ ॥ पश्येदिमानि खे भानि युगमात्रोर्ध्वगानि चेत् ॥ स्वस्थानस्थं ध्रुवं वापि दृष्ट्वोदीचीं प्रसाधयेत् ॥१८॥ सल्लेहेन तु यत्र कं वितनुयात्पाषाण उद्घर्षणाद्यत्स्याद्वारितरं तवदि (?) तदा तत्कीतिंतौ द्वौ तिर्मी ॥ चुंबंग्रावनिघृष्टसंमुखयुतौ स्थालस्थवास्सारितौ तिष्ठेतामथ दक्षिणोत्तरतया सान्मुख्यतस्योत्तरा ॥ १९ ॥ अथ मंडप-

परिमाणद्याह ॥ स्यान्मंडपोऽष्टादिकरान्नखांतो द्विहस्तवृद्धद्यात्र तु कर्मपाके ॥ आद्यस्तुलादानविधौ तथांत्यौ सर्वेषु कार्येषु विकल्पतोऽन्ये ॥ २० ॥ द्विमुखदशमुखशतमुखकोटिहोमेषु मंडपपरिमाणमाह ॥ द्विमुखेऽत्र दशानन उक्ता करपंचविंशतिः ॥ द्विगुणापि चतुर्गुणान्यथा न हि कुंडानि विशंति मंडपे ॥२१॥ मंडपप्रारंभमाह ॥ विप्रान्संपूज्य सुदिने संवाच्य स्वस्ति पूजयेत् ॥ भूवराहानंतकूर्मानथ मंडपमालिखेत् ॥ २२ ॥ स्तंभस्थानान्याह ॥ कृत्वा चतुःकोणमथ त्रिभागे कोणेषु खेया वसुसंख्यया तथा ॥ स्तंभाः ककुद्वारविधायकाः स्युः करद्वयं द्वारमिहाल्पमंडपे ॥ २३ ॥ मध्यमोत्तमयोर्द्वारविस्तारमाह ॥ मध्येंऽगुलैर्वेदमितैः प्रवृद्धिरंत्ये तु नागैरधमा मता सा ॥ स्तंभे च चूडे वलिकाः सरंध्राः कर्णेषु यद्वा विलकैर्विना स्युः ॥ २४ ॥ मध्यवेदीमाह ॥ अथ मंडपमध्यभागके नवमे वेदिरियन्मिता स्मृता ॥ इषुसप्तकरातुलाविधावथ तुंगां त्रिचतुर्मुनीषुभिः ॥ २५ ॥ नवमेश्वरभागतापि वाथो नवमांशास्त्रचतुष्टये निखेयाः ॥ वसुहस्ततयाल्पमध्यमे स्युर्नवभिर्वा वसुभिः करैरिहांत्ये ॥ २६ ॥ वलिकानिवेशनमंडपाच्छादने आह ॥ मध्यस्तंभचतुष्टयोपरि तथा तार्त्तीयभागादिमाः कोणेभ्यो वलिकाः कटांश्च तनुयात्संच्छादनं सर्वतः ॥ द्वावर्जं परितश्छादिर्वसुमितैः काष्ठैरथाप्युच्चयुङ्मध्ये कूटमथो कटैः समतया स्यान्मंडपश्छादितः ॥२७॥ पताकावर्णान्परिमाणं चाह ॥ पीता रक्ताः श्यामाः कृष्णाः श्वेताथ धूम्रहरिते स्तः ॥ रक्ते ह्यष्टौ दिक्षु प्रागीशान्यंतरेऽग्निभाः ॥ २८ ॥ रक्ता रक्षोऽबुपर्यन्ताहृयस्रा एता मुनिकरदीर्घा स्युः ॥ मुनिलवविस्तृतिमत्यो दशकरवंशैर्युताः कार्या ॥ २९ ॥ ध्वजानां मानमाह ॥ ध्वजवैपुल्यं द्विकरपंचकरा दीर्घाः सचतुष्कोणाः ॥ मध्ये सकिंणीको ध्वजोऽस्य दीर्घो भवेद्वंशः ॥ ३० ॥ मंडपमंडनमानम् ॥ रंभास्तंभैराम्रपत्रतोरणैः कुसुमैः फलैः ॥ चामरोल्लोचमुकुरैर्मंडनीयोऽथ मंडपः ॥ ३१ ॥ मंडप-

द्वारबहिस्थानि तोरणान्याह ॥ प्रागादितीश्वत्थ उदुंबरश्च जटी वटस्तोरणकारणानि ॥ करांतरे वा द्विकरांतरे वा द्वाभ्यां बहिस्तोरणरोपणं स्यात् ॥ ३२ ॥ तोरणस्तंभानां दैर्घ्यं फलकायतिं चाह ॥ स्तंभास्तदीयाः शरषट्स्वरैश्च कार्याः क्रमेणाधममध्यमोत्तमे ॥ तदंतरं द्वारवदेव मस्तके तेषां निधेयं फलकं स्वदारुजम् ॥ ३३॥ तस्यायतिः स्यात्प्रथमे द्विहस्ता मध्यांतयोर्हस्तपदर्धवृद्धाः ॥ तद्द्वादशांशान्निजदारुजं स्याच्छंखारिकौमोदकिकाब्जमेवम् ॥ ३४ ॥ प्रागादितो वैष्णवयाग उक्तं शैवे त्रिशूलास्तु नवांगुलोन्नताः ॥ स्वल्पेऽथ मध्यांतिमयोस्तु रुद्रत्रयोदशैस्तुर्यनिजांशविस्तृतः ॥ ३५ ॥ तेषां द्विवह्न्यब्धिभिरंगुलैः स्याच्छिद्रेषु वेशः क्रमतोऽधमादिषु ॥ सूत्रेण पंक्त्यंगुलविस्तृतेन संवेष्टचमाना विपुलास्तु शाखाः ॥ ३६ ॥ अथ नवकुंडस्थानान्याह । वेदास्त्रयोनिधनुराकृतिवह्निकोणवृत्तर्तुकोणकमलाभगजास्त्रयुक्ता ॥ प्रागादितोऽष्टककुभो नवमं महेंद्रेशानांतरे निगमकोणमुतापि कृत्ता॥३७॥ कुंडफलमाह ॥ सर्वसिद्धिः सुताभव्यमरिनाशश्च शांतिकम् ॥ उच्चाटो वृष्टिरोगित्वे चतुरस्रादितः स्मृतः ॥ ३८ ॥ पंचकुंडीं सप्तकुंडीं चाह ॥ चतुःकोणखंडेंदुवृत्ताब्जभानि चतुष्कोणकुंडान्यथेशानभागे ॥ चतुःकोणमेवापि वृत्तं हि पूर्वे विनांत्यं द्वयं सप्तकुंडी मता वा ॥ ३९ ॥ महादाने कुंडान्याह ॥ महादान उक्तानि हेमाद्रिणा तान्यथोंकांतहीनानि चत्वारि दिक्षु ॥ सपादः करो वेदितस्त्वंततः स्यादिदं चान्यपक्षे करो वा पदं वा ॥ ४० ॥ द्वादशांगुलमानं स्याद्यद्वा पंचदशांगुलम् ॥ पदं दशांगुलं केचित्प्रक्रमस्त्रिपदः स्मृतः ॥ ४१ ॥ अशक्तौ एककुंडस्थानमाह ॥ होमे स्यादयुतेऽथ लक्षगणिते कोटौ च रुद्रे महादाने क्वापि वचोबलादथ जगुः केचित्तु सर्वेष्वपि ॥ पूर्वे चैककरं त्वशक्तपुरुषं कुंडं तदीशानके सौम्ये वारुणकेऽथवा दिशि भवेन्मध्येऽपि केचिज्जगुः॥४२॥ होमसंख्यायां स्थंडिलकुंडयोर्मानमाह ॥ खबाणमर्यादकहोमे ईरितं

यवोनितं सप्तदशांगुलोन्मितम् ॥ पक्षेऽधिकस्थंडिलमस्य चोच्छ्रयेद्द्वित्रीणि चत्वार्यथ वैकमंगुलम् ॥ ४३ ॥ खखेंदुमर्यादकहोम उक्तं रत्न्युन्मितं खाभ्रखभूमितोऽर्वाक् ॥ अरत्निमात्रं त्वथ कोटिपंक्तेर्दशघ्नहोमे करतद्द्वयाब्धिभिः ॥ ४४ ॥ अंगाष्टसंख्यैरथवापि लक्षाद्दशघ्नवृद्ध्या करवृद्धिरुक्ता ॥ कोटौ कराः पंक्तिमितास्तु कुंडे भूयोऽल्पमानाहुतितो व्यवस्था ॥ ४५ ॥ चतुरस्रादिकुंडानामेकहस्तादिदशहस्तांतव्यासमाह ॥ जिनाश्चाधिकान्यंकवस्वाद्रिपंचाशुगा जिह्मगाघ्याशुगत्र्यंगुलानि ॥ यवाः खाद्रिवेदाभ्रपंचतुर्वेदषुनिव्योमषुन्युन्मिताश्चाथ यूकाः ॥ ४६ ॥

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
२४	३३	४१	४८	५२	५८	६३	६७	७२	७५
०	७	४	०	५	४	४	७	०	७
०	४	५	०	३	३	०	०	०	१
१	२	३	४	५	६	७	८	२	१०

खवेदाशुगाभ्रत्रिवज्ज्यभ्रखाभ्रेंदवोव्यास आपंक्तिहस्तप्रदिष्टः ॥ शाणतंतुराचिता नवा दृढा कर्षणेणुरपि या न वर्द्धते ॥ ४७ ॥ अंत्यपाशयुगलेन संमिता रज्जुरिष्टकरसम्मिता भवेत् ॥ त्रिभागसंध्योरथ मध्यसंधावंक्या प्रसार्या स्थलपंचकेऽस्याः ॥ ४८ ॥ शंकुं निहन्यादपसार्य चैनां त्रिभागशंकोरथ पाशयुग्मम् ॥ कृत्वाथ याम्येऽपि तदेव सौम्ये कर्षे उदग्दक्षिणसूत्रसिद्ध्यै ॥ ४९ ॥ सूत्रस्य मध्यं नवशंकुमध्यं संयोज्य तिर्यक् कचिदंत्यसूत्रम् ॥ तदंतयोः शंकुयुगं निखाय विदिक्चतुष्कक्रमतश्च साध्यम् ॥ ५० ॥ विदिक्चतुष्टयसधानमाह ॥ प्राक्छंकावथ दक्षिणं च युगलं पाशीयमासज्य तन्मध्याकर्षणतो विदिक्त्वथ पुनः प्राच्यं प्रतीचीं नयेत् ॥ एवं नैर्ऋतदिग्भवेदथ भवे याम्योप्युदीच्यास्ततो वायोरुत्तरपाशलंबकरणादिष्टम्यथो दिग्भवेत् ॥ ५१ ॥ अथ योनिकुंडमाह ॥ कृत्वेष्टं चतुरस्रकं प्रविभजेत्प्रागुदग्रेखया ये स्यातां चतुरस्रगे ह्युपरिगे तत्कोणसूत्रांतयोः ॥ ज्ञात्वा मध्यमितो भ्रमात्तु भवतः कोणार्द्धमानाद्बहिः कुंभौ

१ लंबः १२ फ० १४४ ।

द्वौ हरितौ यमस्य सुरराट्सूत्रस्य चैवांतयोः ॥ ५२ ॥ तत्प्रांतद्वयतो विवृद्धिमदुदग्दिश्यां ततः सूत्रयोः पाते योनिरिहैंधनं शरलवाः स्वद्वित्रिभागाधिकाः ॥ ५३ ॥ अथार्धचंद्राभमाह ॥ कृत्वेष्टं चतुरस्रकं च तदुदक्सूत्रे दशांशाः स्मृता हित्वैकैकमखंडविस्तृतिजिनांशार्धस्य पंक्त्यंशकम् ॥ जह्याच्चाधिकमेषु शिष्टवसुधामानेन याम्ये भ्रमात्सौम्यांकुस्थगुणाद्धनुर्निभमिदं कुंडं शुभं दक्षिणे ॥ ५४ ॥ अत्र दशहस्तांतं व्यासस्य संग्राहकः श्लोकः ॥ नंदक्ष्माभानि देवा गजदहनमिता द्व्यब्धयः षडगानि व्योमक्ष्मावेदबाणा नगविशिखमिताः षष्टिरत्रांगुलानि ॥ भूः खं भूर्नेत्रसप्ताद्विशरकुनिगमा वेदसंख्या यवाः स्युः क्ष्माक्षाग्न्यग्निवेदश्रुतिद्वियमखरवमितार्द्धचंद्रे (?) यूकाः ॥ १ ॥ अथ त्र्यस्रकुंडमाह ॥ श्रोण्योः सच्चतुरस्रके लवरदांशोनात्सपादाल्लवात्षट्षट्सार्द्धमुनीह्लँवाष्टमलवेनाधिक्यतो वर्द्धयेत् ॥ प्राक्सूत्रं च तदंतसूत्रयुगलं श्रोण्यंतयोः पातयेदस्तं निर्ऋतिभाग इंद्रहरिदग्रंपाश्चिमे योनियुक् ॥ ५५ ॥ अत्र दशहस्तांतं लंबानां संग्राहकः श्लोकः ॥

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
१९	२७	३३	३८	४२	४६	५०	५४	५७	६०
१	०	१	२	७	२	५	१	४	४
१	५	३	३	४	२	२	२	०	०
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०

भूरामावेदवेदाः श्रुतिविशिखमिता वह्निमित्राः खशैलाः शैलास्त्रिनागा नववसवयुताब्ध्यंकसंख्या नवांकाः ॥ पंचाक्षेष्विंदुपंचत्रियुगकररसग्रावसंख्या यवाश्च यूकाः खं खारिरामाभ्रकयुगशरखाक्ष्युन्मितात्र्यस्रलंबाः ॥ १ ॥ भूम्यर्द्धस्य संग्राहकः श्लोकः ॥ अष्टक्ष्मास्तत्त्वसंख्याः कनलरसगुणाः खाब्धयोऽभोधिवेदा वस्वब्धिक्ष्मेषवोऽथ श्रुतिविशिखनगाक्षाः क्रमेणांगुलानि ॥ क्षाभूरामेषुत्रिषट्द्वियुगशरशराः स्युर्यवाः सप्त खं भूभूषट्वेदाक्ष्यभ्रबाणविशिखयुगमितं भूदलं त्र्यस्रकुंडे ॥ २ ॥ अथ वृत्तकुंडमाह ॥ एकांशस्य

१ व्यासः १९ । १ । १ । ४ ।

जिनांशकेन सहितं व्यासस्य षट्भूलवं संवर्ध्योंभयतस्तदर्धगुणतो वृत्तं हि कुंडं भवेत् ॥ ५६ ॥ अत्र दशहस्तांतं व्यासस्य संग्राहकः

१	२	३	४	५	५	७	८	९	१०
३	१४४	५४	६३	७०	७७	८३	८९	९४	२९
५	५	५	५	५	३	४	२	६	७
०	०	५	३	०	०	४	५	०	२
१	२	३	४	५	६	७	२	९	१०

श्लोकः ॥ भान्यष्टज्वलनो रसांबुनिधयो वेदेषवो आरयः षट्षट्भूगिरयो रसर्षय इलानागा शरेभांगुलः ॥ खं द्वौ सप्तविधुर्युगानि करधीवेदा दृगक्षा यवाः पंच द्वे कुकुदृग्युगाभ्रशरखं खं वृत्तयूका मताः ॥ १ ॥ अथ षडस्रकुंडमाह ॥ इष्टं यच्चतुरस्रकं भवति तन्मध्यस्य सूत्रं

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
१८	२५	३१	३६	४०	४४	८	२०	५४	५७
१	३	५	३	६	८	७	४	५	५
७	१	१	६	४	२	०	५	५	४
१	२	३	४	२	६	७	८	०	१०

लवद्वंद्वेनाथ लवस्य चाष्टमलवैः पादाधिकैः सप्तभिः ॥ संवर्ध्योंभयतस्तदर्धगुणतो वृत्तं कृतं चांकयेत्तन्मानाद्दतुमागतोऽत्र गुणसंपाते षडस्रं समम् ॥ ५७ ॥ अथ दशहस्तांतं व्यासस्य संग्राहकः श्लोकः ॥ नंदाक्षीणि दृगग्धयः

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
२७	३८	४६	५४	६०	६६	७१	७६	८१	८५
०	२	७	१	४	२	५	४	२	५
५	२	१	१	२	४	०	५	०	४
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०

शशिशरानंदेशवोऽगारयोदृक्शैला वसुसप्तवेदवसवो नंदाष्टवेदाः ग्रहाः ॥ अंगुल्योऽथरसा रसाभ्रयुगवेदाब्धिद्विषट्भूद्विभूयूका दृङ्मुनिकं कधी-त्रिदृगरिष्वक्षााणि चागास्त्रिणि ॥

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
२९	४२	५१	५९	६६	७२	७८	८४	८९	९४
६	०	४	४	४	७	६	१	२	१
२	७	४	४	५	३	२	६	५	२
१	२	४	४	५	६	७	८	९	१

१ ॥ अथ पद्मकुंडमाह ॥ स्वस्येष्टे चतुरस्रकेष्वतुलवं वृत्तं हि सा कर्णिका भूरुतस्माद्द्विगुणं च केसरधरातद्विघ्नमन्यद्भवेत् ॥ पादोनांश्चतुरंशकाब्धिलवरसक्षोणीलवन्यूनितां संवर्ध्यो भयत-

१ व्यासः २७ । ० । ५ । २ ।

स्तदर्धगुणतो वृत्तं तुरीयं चरेत् ॥ ५८ ॥ दिग्विदिक्षु तदंतराले बाह्यसूत्रास्फालनमाह ॥ दिक्सूत्राणि विदिग्गतानि च तथा मध्ये च तेषां पुनर्यान्द्वाह्यविवृत्तकं भवति सत्सूत्राण्यथास्फालयेत् ॥ दिक्कोणस्थगुणैस्तृतीयपरिधौ संजातमत्स्याष्टकात्र्यस्राण्यष्ट लिखेत्तुरीयवलयं यावत्समंतात्समम् ॥ पत्राणां वक्रतार्थं मत्स्यकरणमाह ॥ ५९ ॥ कर्णत्र्यस्रस्य मध्ये कनसमवहितं स्यात्ततोंकाच्च मत्स्यादापात्कर्णार्द्धसूत्रात्तिमिरिह भवति त्र्यस्रमध्ये परोऽपि तस्मादंकास्त्रिकोणांतत इह च बहिर्त्र्यस्रतस्तत्र बाह्यान्मध्ये त्र्यस्रस्य चापं परातिमित इदं बाह्यतो वैपरीत्यात् ॥ ६० ॥ चतुर्थवृत्तस्यैककरादिदशकरांतं तस्य संग्राहकः श्लोकः ॥ भूरामा वेदवेदाः श्रुतिविशिखमिता दृष्टचमित्राः खशैलाः षट्शैला च द्विनागा वसुवसुप्रतिता वेदनंदा नवांकाः ॥ रामा नेत्रेऽक्षिषट्भूश्रुतिनगनिगमाखं द्विसंख्या यवाश्च यूकाः खवाभ्रं कररदहनापंचभूः पद्मकुंडे ॥ १ ॥ अथाष्टास्त्रिकुंडमाह ॥ इष्टं स्याच्चतुरस्रकं च तदुदक्प्राग्वाधिसूत्रं लवद्वंद्वे चाथ लवस्य तुर्यलवतः संवर्ध्य वृत्तं चरेत् ॥ अष्टाशासु तदंतरालगतचिह्नेषु दंत्युन्मितैः सूत्रैरुत्तरपार्श्वत इदं वस्वस्रि कुंडं भवेत् ॥ ६१ ॥ अत्र दशहस्तांतव्यासस्य संग्राहकश्लोकः ॥ वस्वक्षीणि खसागरा नवयुगा सतेषवो वाब्धिषट्नंदांगाः शरपर्वताः खवसवः पंचाहयो भूनव ॥ अंगुल्योऽथ यवा युगत्रियुगखव्योमाद्रिवेदांगधीखं यूका द्विकुखाब्धिखनगभूवक्ष्यंब्धभ्रमष्टास्त्रिणि ॥ १ ॥

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
३१	४४	५४	६२	७०	७६	८२	८८	९४	९९
३	२	२	६	१	४	७	४	०	२
०	६	०	०	०	२	५	३	५	१
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०

अथ खातं कुंडे मध्ये नाभिं चाह ॥ व्यासेन तुल्यं यदि मानवांशैरूनं खनेत्षड्लवकोऽस्य मध्ये ॥ तुंगत्वविस्तारसमस्य कुंडाकृतिर्हि नाभिर्न सपद्मकुंडे ॥ ६२ ॥ कंठमेखलायोनिराह ॥ खातेन लभैकलवाद्धरायां कंठाख्यभागात्परतोऽत्र मेखलाः ॥ स्थूलाथ मध्याथ

कनीयसी स्यात्ततोऽपि योनिर्भुवि पश्चिमे मता ॥ ६३ ॥ चतुस्त्रिद्व्यंशुविस्तारा उच्चाख्यंशैस्तुविस्तृताः ॥ यद्वा विस्तारतुल्योच्चा एका वा स्यात्षडंकका ॥ ६४ ॥ योनेर्मानमाह ॥ कुंभौ तु योन्याः परमेखलायाः परो द्विभागौ नवभागकास्तु ॥ स्युर्मेखलाः स्वभत एक इत्थं कुंडार्धदीर्घाविपुला त्रिभागात् ॥ ६५ ॥ सोच्चांगुलांतो परिमेखलातो वप्रस्तुतोऽत्यंगुलतोऽधिका स्यात् ॥ कुंभद्वयांतःक्षितितस्तदुच्चं नालं सरंध्रं परिधिक्षितौ स्यात् ॥ ६६ ॥ उपर्यथो गोलयुगं निधेयमेवं मताश्वत्थदलाकृतिर्वा ॥ गजोष्ठतुल्या सुषिरेण युक्ता षट्सप्तभागैर्विपुलार्घभिर्वा ॥ ६७ ॥ नवकुंडानां योनिनिवेशमाह ॥ प्रागादित्रिषु कुंडेषु याम्ये योनिस्तु पश्चिमे ॥ अन्येषु सा न योनौ स्यात्कुंडकोणे न सेष्यते ॥ ६८ ॥ कोटिहोमे योनिमाह ॥ योनिद्वयं कोटिहोमे पश्चिमायां च दक्षिणे ॥ कुंडाभाकरणाशक्तौ स्थंडिलमाह ॥ कुंडाभावे स्थंडिलं स्याद्वेद्यास्रं हस्तमानतः ॥ ६९ ॥ अत्र स्थंडिले मेखला योनिश्च कार्येति टीकायां बहुवचनानि संति द्वित्रिवेदांगुलोत्सेधं सैकं तदर्पणोन्नतम् ॥ कुंडोद्द्योतंमथुं भट्टनीलकंठो व्यचीकरत् ॥ ७० ॥

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
३१	४४	५४	६२	७२	७६	८२	८८	९४	२१
३	२	२	६	१	४	७	४	०	२
०	६	०	०	०	२	६	३	५	१
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०

इति नीलकंठकृतौ कुंडोद्द्योतः संपूर्णः ॥ १३ ॥

अथ कुण्डनारदपंचरात्रग्रंथः १४ ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ जपं कृत्वा यथाशक्ति जपांते पूजयेद्धरिम् ॥ भक्तितश्चार्घ्यपुष्पाभ्यां तथा धूपानुलेपनैः ॥ १ ॥ पश्चात्संतर्पयेद्देवमग्निमध्यगतं विभुम् ॥ देवादुत्तरदिग्भागे

कुंडं कुर्यात्सुलक्षणम् ॥ २ ॥ देवागारात्तथान्यत्र भूमिभागे सलक्षणम् ॥ धूपनिर्गमनोपेतं मंडपे सुसमे शुभे ॥ ३ ॥ तत्र कुर्यात्पुरा वेदीं चतुरस्त्रां समंततः ॥ सर्वलक्षणसंपूर्णां कुर्यात्कुंडं तदूर्ध्वतः ॥ ४ ॥ चतुरस्त्रं समं श्रेष्ठं वर्त्तुलं वा मनोहरम् ॥ दिग्विदिक्संस्थितं चैव काम्यानां कर्मणां हितम् ॥ ५ ॥ निष्कामो वा सकामो वा मध्यतः सर्वदिक्पुरा ॥ ईशानदिग्गते कुंडे मंत्रात्मापि ततो हरिः ॥ ६ ॥ ददाति सिद्धिं भूर्लोके तस्मिन्सिद्धिं महात्मनः ॥ वियत्प्रतिवियत्कुंडे शांत्यर्थं च समाचरेत् ॥ ७ ॥ उत्सादनाशमन्येषां कुंडमिच्छंति दिग्गदे ॥ अपमृत्युभयानां च सर्वद्वंद्वापनुत्तये ॥ ८ ॥ होमं वारुणदिक्कुंडे कुर्यात्साधकसत्तमः ॥ वायव्यादिगते कुंडे मंत्रः संतर्पितो यदा ॥ ९ ॥ निधारयेत्स विविधान्प्रयच्छति वीरान्सदा ॥ आरोग्यं संपदं तुष्टिं प्रददाति विमंत्रराट् ॥ १० ॥ तर्पितः सौम्यकुंडेन नात्र कार्या विचारणा ॥ शतार्द्धसंख्यहोमे च कुंडं स्याद्वादशांगुलम् ॥ ११ ॥ होमे सार्द्धशतं चैव मुष्टिरत्निं समाचरेत् ॥ हस्तं सहस्रहोमे च अयुताख्ये द्विहस्तकः ॥ १२ ॥ विस्तरार्द्धेन सर्वत्र खातं च प्रातहस्तकम् ॥ रेषावान्प्रान्तमेखलमानात्र्यंशखातोपगं सुराम् ॥ १३ ॥ तत्र तु मेखलाबंधं ततो विप्र समाचरेत ॥ प्रमाणं मेखलानां च यावद्वादशसंमितम् ॥ १४ ॥ द्वादशांगुलमानस्य कुंडस्य परिकीर्तिता ॥ विस्तारतुल्य उच्छ्रायो मेखलानां महामुने ॥ १५ ॥ मेखलात्रितयस्यैवमेकाकारेषु जायते ॥ विस्तरस्य ततोच्छ्रायः सार्द्धं च चतुरंगुलम् ॥ १६ ॥ अरत्निमात्रकुंडस्य मेखला द्व्यंगुला स्मृता ॥ अंगुला हस्तमात्रस्य मेखला समुदाहृता ॥ १७ ॥ द्विहस्तस्य द्विजश्रेष्ठ मेखला चतुरंगुला ॥ चतुर्हस्तस्य कर्त्तव्या सर्वा एव षडंगुलाः ॥ १८ ॥ अष्टांगुला अष्टहस्ते कुंडे च परिकीर्तिताः ॥ दिङ्मध्ये त्वत्र कुंडस्य नाभिं कुर्याद्द्विजोत्तम ॥ १९ ॥ अश्वत्थपत्रसदृशी मेखलोपरि

संस्थिता ॥ यदुक्तं प्राङ्मया मानं मेखलानां क्रमेण तु ॥२०॥ तथैव च ततः सर्वं मध्यसूत्रेण लांछयेत् ॥ अर्द्धमर्द्धार्द्धं च बाह्यात्ततः सूत्रद्वयेन तु ॥ २१ ॥ मुखादभ्यंतरं यावत्क्रमेणैव तु ह्रासयेत् ॥ उभयाक्षयोर्विप्र गजोष्ठाकृतिवत्तथा ॥ २२ ॥ अष्टतो मेखलामानं किंचित्कार्यं द्विजाधिपा ॥ एकमेखलमानस्य त्र्यंशेनार्द्धेऽथवा मुने ॥२३॥ क्रमेण ह्रसयेत्तावद्यावद्दै मेखलोच्छ्रितम् ॥ ईषदुत्क्रमेतद्दै मेखलोपरि संस्थितम्॥२४॥ एकमेखलयांशमानं कुंडांतरे द्विज ॥ योन्याश्चैव निस्सृताश्चा स एवाधोमुखः पुनः ॥ २५ ॥ आक्रम्य मेखलाभूमिं यावत्खातं तु संस्पृशेत् ॥ इत्येतल्लक्षणं तासां कथितं तु यथास्थितम् ॥२६॥ साधनं चतुरस्रस्य सिद्धिकुंडस्य यागवत् ॥ चतुरास्य स वै मध्ये सूत्रं कृत्वा भ्रमेत्ततः ॥२७॥ चतुरस्रसमं कुर्यात्सर्वदाक्रोडवर्जितम् ॥ नित्यनैमित्तिके होमे वृत्तं वा चतुरस्रके ॥ २८॥ विमेखलं तु कर्त्तव्यमुष्ट्रनाभिसमान्वितम् ॥ द्विमेखलं वा विप्रेंद्र सुश्लक्ष्णं च मनोरमम् ॥ २९ ॥ एकमेखलकं वापि कुंडं संक्षेपकर्मणि ॥ कुर्याच्चलं स्थिरं वापि न हि कुंडं विना शुभम् ॥३०॥ भवनं विप्रमंत्राणां तस्मात्कुंडं प्रसाधयेत् ॥ देशकालवशाच्चैव नद्यते यदि ॥ ३१ ॥ तद्विनाहंनवच्छेदो न कार्यः सिद्धिमिच्छता ॥ शोधिते वोपलिप्ते च स्थले वलमृदन्विते ॥ ३२ ॥ होमस्तु विहितः सम्यङ्मंत्रः स्यान्मंत्रितस्य वा ॥ पिंडिता चतुरस्रा तु बहिः सर्वत्र शस्यते ॥३३॥ मध्ये पद्मं प्रकुर्वीत श्रीपद्मपद्ममध्यकम् ॥ एवं कृते शुभे पिंडे अग्निकार्यं समाचरेत् ॥ ३४ ॥ यागगेहाद्यथान्यत्र वह्निगेहे महामुने ॥ पूर्ववद्द्वारयागं तु कृत्वा संप्रविशेत्ततः ॥ ३५ ॥ तत्रैव यदि वा कुर्याद्दत्त्वान्यच्चासनं शुभम् ॥ पूर्वोक्तेन विधानेन विशेत्तत्र समाहितः ॥ ३६ ॥ कुंडस्यारंभकाले तु संस्कारा न कृता यदि ॥ निष्पन्नस्य च ते सर्वे विधायां स्युः क्रमेण वै ॥ ३७ ॥ ताडयेदस्त्रमंत्रेण पुष्पैर्दक्षिणपाणिना ॥ गृहीत्वा एकदेशाद्दै कुंडमध्याच्च मृत्कणम् ॥ ३८ ॥

अंगुष्ठानामिकाभ्यां च हृदयेनाथ ते हरेत् ॥ अस्त्रेण च समाकार्या स्यात्त्रिभिन्नो यथाकृतम् ॥३९॥ शोधयेत्कवचेनैव कुट्टयेत्तदनंतरम् ॥ लेपयेद्गंधतोयेन अस्त्रेण परिशोधयेत् ॥४०॥ उल्लिखेदस्त्रराजेन दर्भकांडेन यत्नतः ॥ भूमावभ्यंतरे कुंडे दक्षिणाशादितः क्रमात् ॥४१॥ उत्तराशावधिं यावद्दद्याद्रेषामसत्रयम् ॥ प्रत्यग्भागान्समाहृत्य यावत्पूर्वामुखं रुतम् ॥ ४२ ॥ तन्मध्ये त्रितयं वान्यद्रेखाभ्यामुत्तरामुखा ॥ एवमुल्लिख्य विधिना प्रोक्षयेत्कवचेन तु ॥ ४३ ॥ आच्छिन्नयेत्ततो दर्भैरस्त्रमंत्राभिमंत्रितैः ॥ कुंडभित्तिगणं सर्वं प्रांततः परिभूषयेत् ॥ ४४ ॥ कृत्वैव पक्षताटांक्षा कुंडसंस्कारमुत्तमम् ॥ समभ्यर्च्य ततोऽर्घाद्यैर्मध्यतः प्रणवेन च ॥ ४५॥ तेनैव विधिना नाभिं पूजयेच्चंद्रसन्निभम् ॥ मेखलात्रयपूजायां हृन्मंत्रं तु प्रपूजयेत् ॥ ४६ ॥ ततः खल्वयं पूज्यं मेखलात्रितयोपरि ॥ प्रधानपुरुषे ज्ञानं प्रणवत्रितयेन तु ॥ ४७ ॥ अथैर्विलेपनैर्धूपैरिष्ट्वा कुंडं पुरा द्विज ॥ चतुष्पथे तु कुंडस्थे सपुष्पं दर्भविस्तरम् ॥ ४८ ॥ हृन्मंत्रेण च विन्यस्य ततो पर्यथ पूजयेत् ॥ आधारशक्तिपूर्वं तदासनं वैष्णवं परम् ॥ ४९॥ तत्र नारायणाख्या या शक्तिर्विद्योतलक्षणा ॥ लक्ष्माकृतिपदं प्राप्ता अमृतामृततेजिनी ॥ सर्वातिशयरूपाणां सर्वशक्तिसमन्विताम् ॥५०॥ सौक्ष्ममार्गेण रूपेण सर्वसत्वांतरं स्थिता ॥५१॥ शाश्वता सृष्टिमार्गेण अवतीर्य हृदंबुजे ॥ पुरा ध्यानक्रमेणैव हृन्मंत्रेण हृदंबुजात् ॥५२॥ तन्नामपदयुग्मेन नमः प्रणवादिना ॥ रेचकेन विनिक्षिप्य कुंडहृत्पद्ममध्यतः ॥ ५३ ॥ संपूज्य गंधपूष्पाद्यैः पद्ममुद्रां प्रदर्शयेत् ॥ उक्तमंत्रेण संयुक्तामेवं कुर्याच्च सन्निधिम् ॥५४॥ आदौ च भगवच्छक्तेर्वह्नेरुत्पादनाय च ॥ आदाय कार्णिजं वाग्निसूर्यकांतोद्भवं तु वा ॥ ५५ ॥ लोहपाषाणजं वाथ अदुष्टमथलौकिकम् ॥ तेजसे ताम्रपात्रे च मृन्मयेऽभिनवे तु वा ॥ ५६ ॥ संताड्य चास्त्रमंत्रेण संप्रोक्ष्य शिखया च तम् ॥ अर्चयेद्धृदयेनाथ कवचेनावगुंठयेत् ॥ प्लवयेदमृतेनाथ मैत्रमंत्रेण नारद ॥५७॥ पूरकेणोपसंहृत्य

स्वात्मन्युपशमं नयेत् ॥ क्रमादनंतशक्तौ तु प्राग्वदुद्धृत्य योजयेत्
॥५८॥ सृष्टिक्रमेण तं भूय अवतीर्य पदात्पदम् ॥ शब्दापदावधियों-
वत्स्मरेन्नाभिगतं तु तम् ॥ ५९ ॥ प्रणवेनाथ नाभिस्थमग्निषोमात्मको
यजेत् ॥ समिद्भिस्तिसृभिर्वेदा दत्तमात्मनिरादरात् ॥६०॥ त्रयाणामपि
बीजेन तेनाभिन्नेन वा द्विज ॥ एकाहुतिप्रमाणेन तत्रस्थोद्धृष्यते यथा
॥६१॥ तेन मार्गेण वै हुत्वा ध्यात्वा चाज्यामृतं हृदि ॥ ततः स्वमंत्रे-
णोत्थाप्य नाभिकुंडाद्धुताशनम् ॥ ६२ ॥ कृत्वादौ प्रणवं विप्र तदंते
त्वेधितं स्मरेत् ॥ अशेषभुवनाधारमध्यश्चाद्वैस्य योजयेत् ॥६३॥ अर्थ
अर्द्धेऽप्येतस्यैव भूधरोर्जे न्यसेत्ततः ॥ त्रैलोक्यैश्च पदैर्मूर्ध्नि बीजस्यास्य
महामुने ॥६४॥ ततः क्रमेण संयोज्य धरेशाद्यं च सप्तकम् ॥ सुर्वसंज्ञप-
र्यंतं सप्तकस्यास्य योजयेत् ॥६५॥ ऊर्ध्वोर्ध्वाभ्यामनलं च मायां व्या-
पिनमप्यथ ॥ तेजसेपदमादाय ततः सप्तार्चिषेपदम् ॥६६॥ स्वाहासम-
न्विता वह्नेर्मंत्रस्तावद्दशाक्षरः ॥ धूपशब्दशरीर तु सच्छन्दो लोकबो-
धकः ॥६७॥ विकल्पभूमनिर्मुक्तं सच्चैतन्यस्फुलिंगिनम् ॥ नादांतेन तु
विन्यस्य सिद्धिमात्रेण पूर्ववत् ॥६८॥ पुरा हृते च पात्रस्थवह्नो वह्नि-
विशुद्धये ॥ करद्वयेन संगृह्य कुंडे संभ्राम्य निक्षिपेत् ॥६९॥ कुंडमध्य-
स्थितायां च शक्तिर्नारायणी च सा ॥ नासाग्रेण तथा चाग्नौ या तं ध्या-
येत्सदागतम् ॥७०॥ त्रीन्सप्तपंचधा दद्यात्परिधीन्हृदयेन वै ॥ वह्नेस्त-
द्बोधनार्थं च नेत्रमंत्रेण नारद ॥७१॥ पर्यग्निकरणं कुर्याच्छादयेदार्द्र-
पाणिना ॥ ततः स्वतः स्वमंत्रेण चतुर्दिक्षु त्रिधा त्रिधा ॥७२॥ प्रागा-
दौ तु यथामूलं तदग्रे छंदिनं भवेत् ॥ कुर्यात्तैरसमाप्तं तु सर्वदात्मन
उत्तरे ॥ ७३ ॥ उत्तरेऽस्योपरि संस्थाय वह्निकार्योपि योषवत् ॥ प्रणी-
ताप्राणयुगले दर्भेण युगलं तथा ॥ ७४ ॥ स्रुक्स्रुचद्वितयं चैव
ततस्तत्स्थालिमेवच ॥ सुसंप्रोक्ष्य मूलेन तद्विदध्यात्स्थिरोपरि
॥ ७५ ॥ प्रणीतापात्रमापूर्य तोयेन तदनंतरम् ॥ तत्रासनवरे
विष्णुं ध्यात्वा मूलेन विन्यसेत् ॥ ७६ ॥ यागयज्ञपातिं देवमेवं

संस्थाप्य चोत्तरे ॥ प्रदध्याच्च ततो विप्र परिधिं हृदयेन तु ॥ ७७ ॥ यज्ञकाष्ठोद्भवस्याष्टौ स्रवणौ हस्तसंमिताः ॥ प्रपूर्य च परीणाहानाहरेद्धस्तसंमितान् ॥ ७८ ॥ अन्येषां द्व्यंगुलं विधिपरिवस्तनं द्विज ॥ यावदष्टकरं कुंडमतः कुर्यान्न कारयेत् ॥ ७९ ॥ विस्ताराणि ततो दृष्ट्वा तेषु पृष्ठे हृदा मुने ॥ स्रुक्स्रुवाणां च संस्कारमुपमाग्रजोशनैः ॥ ८० ॥ स्रुवं द्वादशधा शोध्यं मंत्रेणोष्णेन वारिणा ॥ तथैव द्विजशार्दूल स्रुक्सौतमद्विषेन च ॥ ८१ ॥ संक्षाल्य स्रुक्स्रुवं चैव शिखामंत्रेण वै ततः ॥ कुंडस्थेनाग्निना चोष्णतयोर्नृणं मुच्यते स्वतः ॥ ८२ ॥ हृद्दंडमानेन मंत्रज्ञतन्न कल्पयेत्पुरा ॥ दीर्घस्रुक्सिद्धये काष्ठं विस्तारश्च षडङ्गुलम् ॥ ८३ ॥ दैर्घ्याद्द्वयेनाप्यदंडमत इष्यताम् ॥ तथा सद्व्यंगुलमानं तु कृत्वा शेषं तु शोषयेत् ॥ ८४ ॥ कलत्संदंडमूले तु कुर्यात्वग्न्याननं शुभम् ॥ कर्णिकास्थि यथा दंडो जायते मुनिसत्तम ॥ ८५ ॥ त्रिवलित्वाथवा शंखं तथा दंडस्तथास्यगम् ॥ कृत्वाग्रस्थाद्विधिभारां समासेन प्रयत्नतः ॥ ८६ ॥ द्व्यंगुलं वा यथाभागस्य वैयुभ्यमग्रतः क्रमात् ॥ दंडोपस्थस्य भागस्य त्र्यंगुलः परितः समम् ॥ ८७ ॥ ततः कुर्यान्मितं खातं सुलक्षणसमन्वितम् ॥ तन्मध्ये पंकजं कुर्यात्प्रफुल्लं चोर्ध्वपल्लवम् ॥ ८८ ॥ आद्यकोशं तु संविद्धि पंचसप्तपलोद्भवम् ॥ पत्रमध्ये निमग्ना च कर्णिका वै सकेसरा ॥ ८९ ॥ द्वादशारं बहिश्चक्रं पद्मस्याष्ट दलस्य च ॥ चक्रबाह्ये तु कर्तव्यं शंखकोणे चतुष्टये ॥ ९० ॥ ततोऽग्रभागस्य मुने पार्श्वयोरुभयोरपि ॥ एकैकमंगुलं शोध्य संविभज्य त्रिधा ततः ॥ ९१ ॥ कण्ठमेकेन भागेन मध्यतोऽस्य द्वयेन वा ॥ ९२ ॥ विच्छिन्नमेव शंकुभ्यां मध्यमेकांगुलेन तु ॥ विस्तारकंठतुल्यं च वर्धयित्वाग्रतः पुरा ॥ ९३ ॥

इति कुण्डनारदपंचरात्रग्रंथः संपूर्णः ॥ १४ ॥

अथ कुण्डतत्त्वप्रदीपग्रन्थः १५ ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ नत्वाच्युतब्रह्ममहेशमूर्तीरिष्टेषु पूर्त्तेषु यदंगमाद्यम् ॥ सांगं समं कुण्डमनेकभेदं ब्रूते खिलं तद्बलभद्रसूरिः ॥ १ ॥ अष्टौ तु यस्मिन्परमाणवस्तत्सूक्ष्मं प्रमाणं त्रसरेणुराद्यम् ॥ अष्टाष्टघाताद्रथरेणुकेशलिक्षाह्वयूकायवकांगुलानि ॥ २ ॥ हस्तोंगुलैस्त्र जिनप्रसंख्यैर्मुष्टिश्च रत्निर्वसुभागहीनः ॥ कलांशहीनः प्रसृतः प्रकोष्ठः कनिष्ठिकायां तु समा च रत्निः ॥ ३ ॥ अंगुष्ठमध्यांकगमंगुलं स्यान्मध्यांगुलीमध्यमपर्वमात्रम् ॥ यवैश्च षट्सप्तभिरष्टभिर्वा कनिष्ठमध्योत्तमंगुलं च ॥ ४ ॥ ऊर्ध्वैस्त्रिभिः शालिभिरंगुलं वा यवस्तु गौरैः शरसर्षपैः स्यात् ॥ सिद्धांतमेतच्छ्रुतिमूललब्धं कल्पोक्तमाश्रित्य वदामहेऽत्र ॥ ५ ॥ यः पंचमोंऽशः प्रपदोच्छ्रितस्य समस्थितस्याप्यथ वोर्ध्वबाहोः ॥ यष्टुः स हस्तो जिनभागभक्तोंऽगुलं यवाद्याः क्रमशो गजांशाः ॥ ६ ॥ दंडौ समौ कीलकबद्धमूलावन्येन मध्यांकयुतेन तिर्यक् ॥ योज्यावुपाग्रे समतः पृथक्तौ कीलादिभिर्भारयुजां गुणाढ्यौ ॥ ७ ॥ भूलेग्रदंडाग्रयुगेऽकमध्यात्तिर्यग्गतान्मूलविलंबि सूत्रम् ॥ यस्यां स्खलेत्तद्दिशि पूरयेच्च यावत्समं स्यादितरत्खनेद्वा ॥ ८ ॥ सूत्रं यथा दंडगतांकमेति भूमिस्तथेयं समतां समेति ॥ प्राङ्मार्जनाद्यैः परिशोधितायां सन्मंडपादीन्रचयेच्च तस्याम् ॥ ९ ॥ भूमिं परीक्ष्य स्मृतिवाक्यदृष्ट्या शस्तां गृहीत्वा निजवर्णयोग्याम् ॥ पुण्याहमंत्रैर्द्विजवक्त्रसंस्थैः पूतश्च पंचांगशुभे विदध्यात् ॥ १० ॥ गुणं च मौंजं शणसूत्रवेणुगोवालकौशेयकुशादिभूतम् ॥ श्लक्ष्णं समं ग्रंथिविहीनमग्धियवैः परीणद्धमरोमशं च ॥ ११ ॥ सूचीसमाग्रः सरलैकतष्टः षडंगुलैर्मूलपृथुश्च शंकुः ॥ अधोऽपि सूक्ष्माग्रयुगार्कपर्वदीर्घो नवांशैः कृतमंडलेऽतः ॥ १२ ॥ स्थाप्यः समौर्दिक्स्थितकीलकैश्च सपादशं-

कुप्रमितैश्चतुर्भिः ॥ एकीकृताग्रश्च शिरःस्पृशद्भिः समत्वमेत्येकशिराः सशंकुः ॥ १३ ॥ शंकुप्रमाणाधिकविस्तरार्द्धे वृत्ते यतः संविशति प्रभाग्रम् ॥ यतो बहिर्याति च शंकुभाग्रं प्राचीतयोश्चिह्नगुणप्रदानात् ॥ १४ ॥ शंकुप्रभासंगवियोगमध्यघटीहतं श्वस्तनयानमिष्टैः ॥ भक्तांतरं खर्त्तुविभागलब्धे प्राक्चिह्नतश्चालनमायनांशम् ॥ १५ ॥ प्राच्यंतयोर्मध्यविलंघनेन वृत्तार्द्धयोर्मत्स्यगतामुदीचीम् ॥ मित्वा दिगग्रद्वयतो विदिक्षु झषेषु सूत्रैश्चतुरस्रमुक्तम् ॥ १६ ॥ अथाधममध्यमोत्तमा मंडपाः ॥ वसुदिग्रविशक्रकलाद्युतिभिर्यशोलघुमध्यमतस्तूत्तमकान् ॥ इह मंडपमध्यगुणान्विबुधाः कथयंति यथायतविस्तृतिभिः ॥ १७ ॥ करविंशतिजं निजहस्तततं दशनैः परमोत्तममत्रकैः ॥ भुव उच्छ्रितिमर्द्धकरामथवैतकरां परितः सुसमां च सृजेत् ॥ १८ ॥ त्रिषु वक्रचतुष्कमिह क्रमशः ककुबंतरतः करयुग्मततम् ॥ चतुरष्टमितांगुलिकाद्वियुगुच्छ्रितिरत्र हि मंडपसंप्रमिता ॥ १९ ॥ त्रेधा मध्यगुणं विभज्य परितोऽष्टौ कोष्ठकान्संलिखन्मध्ये वेदिमिहाब्धिकोणसहितां पक्वेष्टकाभिः सृजेत् ॥ उच्छ्रायोऽत्र गुणाब्धिभूतनगनिध्येकादशांशेन वा कोणपूत्तममंडपार्द्धविमितान्स्तंभान्सचूडान्वितान् ॥ २० ॥ क्षोणीरोपितपंचमांशकलितानाग्नेयगर्त्तादितो मध्येऽलपेष्टकराग्छिखासु वलिकां रंध्रार्पितां सर्वतः ॥ अन्यान्कोटिषु पंचहस्तविमितांस्त्रेधा विभक्तांतरैः स्तंभान्स्थूलसमर्जुतुल्यसरलान्कोणेषु सारद्रुजान् ॥ २१ ॥ स्तंभचूडगतमध्यगसूत्रं मूलकेन्द्रगतमप्यवनिस्थम् ॥ तच्च कोणमभिकल्प्य विदध्याद्वेदिपीठगृहमंडपकोणान् ॥ २२ ॥ उत्तमेषु सकलेषु मंडपेश्वात्मविस्तृतिदलोच्छ्रितान्यपि ॥ वेदिकोणसहितान्दृढान्खनेन्मध्य उन्नतिमिहार्थतो नयेत् ॥ २३ ॥ स्तंभकर्णमधिरूढदारुकाश्छिद्ररोपितवलिः शिखासु वा ॥ कोणकाष्ठरचनाभिमंडितश्छादयेदुपरि मंडपं कटैः ॥ २४ ॥ सांद्रमेव तृणजैश्च वंशजैर्नारिकेलकदलीजपल्लवैः ॥

द्वारवर्जमिह तैः परिश्रयेत्क्षौमचामरवितानभूषणैः ॥ २५ ॥ मार्गकोणतरुकूपविभ्रमस्तंभविद्धदरामिष्टनाशकृत् ॥ अंतरं तु यदि भित्तिमार्गयोरुच्छ्रयाद्द्विगुणमूनं दुष्यति ॥ २६ ॥ अश्वत्थमौज्यं जटिवृक्षजं च न्यग्रोधजं पूर्वमुखासु दिक्षु ॥ वृक्षाद्यमाश्वत्थतृतीयकं वा न्यग्रोधकल्पक्षविपर्ययं वा ॥ २७ ॥ त्रिषु क्रमात्पंचरसाद्रिहस्तदीर्घं च तत्त्वग्वियुतं युतं वा ॥ सुदृढदशाखं त्वचनौनिखेयं शरांशकं वा करसंमितं वा ॥ २८ ॥ कान्यंगुलैस्तत्परिधिः पृथुत्वं दिग्भिश्च जंबूखदिराम्रतालम् ॥ शमीभवं तोरणमेकजं वा यज्ञार्हवृक्षोद्भवमन्यजं वा ॥ २९ ॥ द्वाभ्यां बहिर्युग्मकरैकहस्तवेद्युच्चमानेऽप्यथ सन्निधौ वा ॥ निश्छिद्रमार्द्रेक्षुसमं सचूडमृगादिभिर्मंत्रितमव्रणं च ॥ ३० ॥ द्विहस्तदीर्घं फलकं कराङ्घिकरार्द्धवृद्धं त्रिषु तिर्यगं न्यसेत् ॥ शाखादलं वात्मबिलेन चूडासूपांत्यभागं सरलं क्रमेण ॥ ३१ ॥ कीलस्तु मध्ये फलकस्य वेदैः सार्द्धाङ्घिभिः पंचभिरंगुलैश्च ॥ विष्णुप्रिये कर्मणि शंखचक्रगदाब्जवत्तरुसंभवाः स्युः ॥ ३२ ॥ स्तंभार्कमानेन च कीलकास्ते यद्वार्कमानाः फलकस्य दैर्घ्यात् ॥ चक्रं हि सर्वासु च दिक्षु वा स्यान्मूलं घटद्वंद्वमथांकुशश्च ॥ ३३ ॥ शैवे शूलनिभा नवांगुलिमिता साङ्घ्यंशविस्तारिताः शल्यद्व्यंगुलयोऽतशृंगरुजवो वक्राग्रपार्श्वद्वयाः ॥ हीने मध्यम उत्तमेऽश्युगलं युग्मं प्रवृद्धाश्च ते शल्येशैकवृद्धिगाः करमिताः सर्वे च केचिज्जगुः ॥ ३४ ॥ शूलत्रयं भवति चेत्फलकस्य मध्ये प्रांतद्वयं प्रतिदिशं विशति त्रिशृंगम् ॥ विस्तारदैर्घ्यबिलशल्यविधौ यथोक्तं सिंदूररत्ननिचयैरपि भूषितं च ॥ ३५ ॥ घंटादर्पणतूर्यवस्त्रकदलीपूगाम्रकश्रीफलस्तंभैः पत्रफलैश्च चामरकुशस्रग्गंधरत्नादिभिः ॥ नानापल्लवपुष्पकिंकिणिनटैः सत्पट्टकूलैर्गजैरश्वैर्भाण्डवितानभोज्यनिचयैर्मालादिभिर्भूषयेत् ॥ ३६ ॥ न्यस्येद्दिक्षु सुपंचहस्तविमिता हस्तद्वयं विस्तृता हस्ती कल्किकुलायसिंहमकरोणाश्वर्षभौश्चिताः ॥ लोके-

शानसमानवर्णतनवः काष्ठागजैर्वा ध्वजाः पञ्चाशावनिवेशितेषु निहितादिष्वस्त्तदंडेषु ते ॥ ३७ ॥ पूर्वेशानाविमध्यतोऽपि नवमो हंसांकितोऽर्कप्रभः सौपर्णाकहितो बलाहकरुचिर्घोरंप्रतीच्योरपि ॥ अन्यैको वृषभांकितः सितापिशंगाद्यैः सुचित्रः शुभोऽथात्युच्चः शिखरोऽपरि त्रिंवितती दिग्घस्तदीर्घो महान् ॥ ३८ ॥ दीर्घाः सप्तकैः स्वरांशविपुलाविंशांगुला वा क्रमाल्लोकेशानसमानवर्णरुचयो दिग्घस्तवंशाग्रणाः ॥ वज्राद्यायुधभूषणा हिमगिरेर्वर्णाः शिवेंद्राशयोर्मध्ये दिक्षु पराश्च ताः शरलवक्ष्मांताः पताका अपि ॥ ३९ ॥ महेंद्रः पिशंगः शिखी हेमवर्णो यमः कृष्णवर्णस्तथा निर्ऋतिश्च ॥ हिमाभश्च सम्राड्रर्मातरिश्वा विचित्रो धनेशः सुगौरो महेशः ॥ ४० ॥ विधिर्लोहितो मेघवर्णस्त्वनंतो दिगीशानवर्णा अमी सुप्रसिद्धाः ॥ सुवज्रं च शक्तिस्तथा दंडखड्गे सपाशांकुशौ सद्गदा शूलपद्मे ॥ ४१ ॥ चतुःशक्तियोनींदुखंडं त्रिकोणं सुवृत्तं षडस्रं च पद्माष्टकोणम् ॥ पद्मं त्र्यज्यवेद्याश्च पूर्वेशयोः स्याच्चतुः कोटिकं वर्तुलं सर्वतो वा ॥ ४२ ॥ अथ कुंडनिवेशनमाह ॥ भवेद्दिक्षु रौद्र्या च चेत्पंचकुण्डी चतुष्कोटिचंद्रार्द्धवृत्ते च पद्मम् ॥ चतुःस्राक्ति वा वर्तुलं त्वीशकोणेऽथवा सर्वतो वृत्तवेदास्रकाणि ॥ ४३ ॥ चतुःकुंडपक्षे चतुर्दिक्षु वा स्युश्चतुःकोटिकं वर्त्तुलं वैककुंड्या ॥ शिवप्रीतिकार्ये विशेदीशकोणेऽपि वा सौम्यवारुण्यमध्येंद्रदिक्षु ॥४४॥ चतुष्कोणवृत्तार्द्धचंद्रत्रिकोणान्यथो विप्रराजन्यवैश्यांघ्रिजेषु ॥ प्रधानानि वर्णेषु सर्वेषु वा स्याच्चतुष्कोणकं मुख्यमंत्रात्मकार्ये ॥ ४५ ॥ स्तंभे भोगे मारणे वैरकृत्ये शांतावुच्चाटे च पुष्टौ विमुक्तौ ॥ वेदाश्वादीन्येषु शस्तानि वेद्याः पादं त्यक्त्वा वह्निमुख्यासु दिक्षु ॥ ४६ ॥ फलांतरमाह ॥ सिद्धिं पुत्राञ्छोभनं वैरिनाशं शांतिं छेदं वृष्टिरोगप्रणाशौ ॥ यच्छंत्यैंद्र्याद्यासु दिक्षु स्थितानि वेदास्रादीन्यत्र कुंडानि यष्टुः ॥ ४७ ॥ भूतोच्छेदे चाभिचारप्रशांतौ कुर्या-

त्कुंडे पंचसप्तास्त्रिसंज्ञे ॥ प्राक्कुंडादीन्यत्र नित्यानि सर्वाण्याकारास्तु-
त्यर्थवादश्रुतीश्च ॥ ४८ ॥ एवं कुंडकारणान्युक्त्वा आहुतीनां च
विस्तारेण कुंडप्रमाणमाह ॥ पंचाशद्धोमेऽथ शते सहस्रे तथायुते
च प्रयुते च पंक्तौ ॥ कोटौ च कुंडान्यथ रत्नरत्निहस्ताद्विवेदत्तुंगज-
क्रमेण ॥ ४९ ॥ लक्षैकतो लक्षविवृद्धिमाने यावद्भवेल्लक्षदशांतहोमः ॥
तावत्खनेत्पंक्तिकरैस्तु हस्तादेकैकहस्ताधिककुंडमत्र ॥ ५० ॥
लक्षार्द्धहोमे त्रिकरं वदंति दिग्लक्षके पंचकरं च केचित् ॥ षड्ढस्तकुंडं
नखलक्षमाने कोट्यर्द्धहोमे करसप्तकं च ॥ ५१ ॥ गजार्कैः कलाविं-
शसंख्यांगुलैर्वा क्रमाच्चंद्रपक्षाब्धिकृत्वष्टहस्तैः ॥ शतार्द्धे शते पंच-
निघ्ने दशघ्नेऽयुते लक्षदिग्लक्षकोट्यर्बुदे स्युः ॥ ५२ ॥ न्यूने हि
कुंडेऽधिकसंख्यहोमो न हीनमात्रोऽधिकसंख्यकुंडे ॥ उक्तप्रमाणां-
तरमानहोमोऽनुपाततश्चावयवप्रभागैः ॥ ५३ ॥ समंततो वेदकरप्रमाणं
कुंडं यथा षोडशहस्तमात्रम् ॥ स्कांदे च यत्कोटिहुतौ प्रयुक्तं तत्स्थू-
लहव्ये कविभिः प्रदिष्टम् ॥ ५४ ॥ विस्ताररज्जुद्विगुणामथांत्यपाश-
द्वयां रज्जुदले तदर्द्धे ॥ शंकर्षकर्षार्थनिरंछनाभ्यां सुलक्षितां प्राचि
गुणांत्यशंकोः ॥ ५५ ॥ पाशद्वयं न्यस्य निरंछनेन विकर्षणाद्दक्षसमी-
रणांशोः ॥ श्रोणिद्वयं स्याच्छिखिशर्वयोश्च स्यादंशयुग्मं चतुरस्रकुंडे
॥ ५६ ॥ निजांशवेदास्त्रिणि सूत्रमक्ष ५ । १ । २ चंद्राक्षिभिः
पंचखदृग्गुणैर्वा ॥ संवर्द्धयें तिर्यगिस्थतमध्यसूत्रप्रांतद्वयाभ्यां प्रगुणं
गुणाग्रात् ॥ ५७ ॥ ततोऽक्ष्णया सूत्रयुगस्य मध्याच्छ्रोणीस्थवेदा-
स्त्रियुगे बहिर्वा ॥ वृत्तार्द्धयुग्मं रचयेत्कला १६ द्रि ७ ऋत्विं ६ दु १
विष्कुंभयुतं सभागे ॥ ५८ ॥ अथ प्रकारांतरेण योनिकुंडम् ॥ क्षेत्रे नि-
जांशाब्धिगुणे पुरस्ताद्वेदांगुलाभ्यंगयवैषिताग्रे ॥ श्रोण्योस्तदर्द्धार्द्धतया
त्रियूकासहैव वा वृत्तदले बहिः स्तः ॥ ५९ ॥ लिखेदथाभ्यामनुसूत-
युग्ममग्रांतमत्र प्रगुणं यथा स्यात् ॥ पुत्रप्रदं भोगदमग्निकोणे कुंडं

भवेद्योनिनिभं ध्रुवाग्रम् ॥ ६० ॥ अथार्द्धचंद्रम् ॥ जिन २४ लवचतुरस्रके दृग्गुणे २ । ३ । ५ स्वंगुलाद्यैर्दृगनलगुण २ । ३ । ३ कैर्वा मध्यसूत्राधरोऽर्द्धम् ॥ चिरहित उपरिज्यासूत्रदानाच्च तिर्यग्भवति तत इहार्द्धभ्रामणादर्द्धचंद्रम् ॥ ६१ ॥ अथ त्र्यस्रिकुंडमाह ॥ क्षेत्रे जिनांशविमिते ऽद्रिभिरंघिवेदैः ७ । ४ । ४ संवर्द्धितेंऽतरगुणे सममंगुलाद्यैः ॥ श्रोण्योः पृथग्रस ६ मितांगुलिभिर्यवाभ्यां सूत्रैस्त्रिभिस्त्रिभुजमुत्तममत्र कुंडम् ॥ ६२ ॥ अथ वृत्तकुंडम् ॥ क्षेत्रे जिनांशे कलया विभक्ते ह्येकांशसंवर्द्धितपूर्वभागे ॥ यूकाभिरत्र त्रिभि ३ रेधिते वाप्यंतरस्थचिह्नाद्भ्रमणात्सुवृत्तम् ॥ ६३ ॥ अथ षडस्रकुंडम् ॥ निजांशमध्यसूत्रमिंदुबाणदृग्युगैः क्रमात् ॥ बहिः प्रवृद्ध्य सर्वदिक्षु चांगुलादिभिस्ततः ॥ ६४ ॥ मिमाय वेदकोणमग्रवृष्टिकोटिमध्यतः ॥ पुरोगुणाभितोऽद्रिरामवह्निवेदसंमितैः ७ । ३ । ३ । ४ ॥ ६५ ॥ पृथग्विलिख्य तिर्यगंतसूत्रगाग्रयोर्लिखेत् ॥ विहाय कोणभूर्भवेत्षडास्रिकुंडमुत्तमम् ॥ ६६ ॥ जिनांश २४ वेदास्त्रिणि सूत्रकेंऽतर्वस्वंशकन्यासदलेन वृत्तम् ॥ सा कर्णिका स्याद्द्विगुणेन तद्वत्स्युः केसरास्तत्त्रिगुणेन मध्यम् ॥ ६७ ॥ स्यादूर्ध्वभूरग्रगुणेन तद्वत्पूर्णेदुचंद्राङ्घिरसोनितेन ॥ वृत्तं तथा पंचगुणेन कुर्याद्धित्वा भुवोऽर्द्धं रचयेद्दलानि ॥ ६८ ॥ वेदाश्वविष्कंभमितेऽथ वृत्ते नवैकपक्षर्तुभिरंगुलाद्यैः ॥ ज्यासूत्रकाण्यष्टमितानि दद्यात्पूर्णाद्रिदृग्वेदकसायकानि ॥ ६९ ॥ जाभ्यः शराश्चैवममंडलांतं वह्न्यर्तुखाद्रीक्षणसंमिताः स्युः ॥ शराभितः स्याच्छशिरामषड्भूरसांगुलाद्यैः शरयुग्ममन्यत् ॥ ७० ॥ व्योमर्तुवेदाग्निरसैः पुनश्च शरद्वयं चोभयतस्तयोः स्यात् ॥ जीवाह्निकव्यासदलेन वृत्तपादद्वयं चोभयसायकांतम् ॥ ७१ ॥ महीगुणर्त्विंदुमितेन वृत्तपादद्वयं मध्यशराग्रतश्च ॥ तयोरधःस्थाग्रयुगं च वृत्तापदाग्रयोर्निम्नगयोस्तु योज्यम् ॥ ७२ ॥ त्यक्त्वोर्ध्ववृत्तांत्रिभुवं

तु मध्यं भवेच्च पद्मे दलमुत्तमं तत् ॥ तथैव जह्याद्धनुषः फलं तच्छेषं भवेदर्द्धभुवप्रमाणम् ॥ ७३ ॥ पद्मे दलानामखिलं फलं स्यात्क्षेत्रार्द्धहानिस्त्वखिला त्वनेन ॥ स्वव्यासकोत्सेधककर्णिकान्हि त्यक्त्वा खनेत्केसरकान्प्रकुर्वन् ॥ ७४ ॥ एवं दलान्यष्टमितानि चित्वा दलानि चत्वार्यथ चोत्तमानि ॥ अस्मत्कृतेनातिमहच्छ्रमेण तुष्यंतु ये क्षेत्रविदो बुधास्ते ॥ ७५ ॥ दृगाद्रिसागरांगुलादिभिर्बहिस्थमंडलम् ॥ विरच्य मध्यमंडलेन वैकपक्षसंमितैः ॥ ७६ ॥ विभज्य धन्वनो गुणैर्दिगष्टमध्यचिह्नगैः ॥ वियन्नगाक्षिभिः शराल्लिखेच्च मध्यसूत्रगान् ॥ ७७ ॥ गुणर्तुषण्मिताश्च ते भवंति वृद्धिगाः पुनः ॥ लिखेच्च बाणयुग्मयुग्ममिंदुवह्निषड्भवैः ॥ ७८ ॥ विमुच्य सायकाभितः पृथक्पृथक्समांतरम् ॥ पुनः शरद्वयं वियच्छराद्रिसंमितांतरे ॥ ७९ ॥ विधाय कोटियुग्मगाग्रकर्कटेन पार्श्वयोः ॥ द्विवह्निसंमितेन २ । ३ वृत्तपादयुग्मवै ॥ ८० ॥ तदूर्ध्ववृत्तपादयुग्ममिंदुरामसायकैः ॥ मितेन कर्कटेन मध्यबाणगाग्रतो लिखेत् ॥ ८१ ॥ मिथो नियुज्य वृत्तपादयुग्ममत्र सर्वतः ॥ प्रमाणमंतरं भुवो दलानि संभवंति हि ॥ ८२ ॥ पुनः प्रकारांतरेण पद्मकुंडमाह ॥ सिद्धांशे वलये ततस्त्रिलवकैर्वृत्तेव सत्कर्णिकां तद्वृत्ताद्द्विगुणैश्च केसरलवान्मध्योर्ध्वभूमिं लिखेत् ॥ तद्वन्नेत्रगुणाक्षिभि ३ । २ । ३ । २ स्त्रिगुणचंद्रांशा २ । ३ । ३ । १ । दि वा पंचमं तुर्येऽतेऽष्टविभागतो धनुगुणैर्भक्त्या तथार्तीद्वयात् ॥ ८३ ॥ ईक्षे द्वेक्षणया शरायमथ ते द्वेधा विभज्यार्द्धतो मत्स्यौ मध्यशराच्छिखीशहरितोभित्वांतचापद्वयम् ॥ भ्रांत्या मध्यगुणस्य मूलमभितश्चेत्स्वाद्वयार्द्धजुषावार्त्तीभ्यां च मिमाय चापयुगलं बाह्यो दलानां भवेत् ॥ ८४ ॥ वेदास्त्राब्धियमांशकांतरगुणे प्राक्स्थं च तिर्यक्स्थितं भूमींद्वब्धियुगांशकांगुलमुखैः । १ । १ । ४ । ४ । संवृद्धसूत्रद्वयम् ॥ तन्मानात्कृतवेदकोणमभितस्तिर्यग्गुणौ प्राग्गुणौ बाणाग्र्य-

ङ्घियुगे ५ । ३ । ४ । ४ । ह्लिखेत्तदनुगैः सूत्रैश्चतुर्भिर्भजेत् ॥ ८५ ॥ कोणस्थवेदास्रिचतुष्टयं यत्सूत्रैर्विभज्याक्ष्णयया समं तत् ॥ कोणस्थितानि प्रयुगानि जह्यादष्टास्रि कुंडं गुणमार्जना स्यात् ॥ ८६ ॥ अथ प्रकारांतरेणाष्टास्रि ॥ निजांशं गुणस्याष्टमांशप्रहीणं यजांशद्वयेनोनितस्यैव युक्तम् ॥ विहायाध ऊर्ध्वं गुणप्रांतयोस्तच्चतुष्कोणमध्यांसकर्णेन वृत्तम्॥८७॥ सुदिक्कोणमध्येषु चिह्नाष्टघानं तृतीये ततो रज्जुदानं विधाय ॥ विदिग्दिक्स्थसंपातवृत्तोत्थमानं विमृज्याष्टसंख्यं भवेत्कोणमानम् ॥ ८८ ॥ कराक्षीभिरुर्व्यङ्घियुङ्मध्यसूत्रं ततः कोणभूः स्यान्नवोर्वीयुगांशैः ॥ समुद्राङ्घिषड्भिर्भवेन्मध्यलंबः समे बाहुकोटी रसाग्न्यर्तुभिस्तः ॥ ८९ ॥ अथ मण्डपेष्टकुण्डेषु कस्य कार्यं क्व योनिरिति विवेकः ॥ इंद्राग्निवैवस्वतादिक्षु कुंडान्युदङ्मुखान्यंतकयोनिकानि ॥ अन्यानि पूर्वापरवक्रयोनीन्याचारकुंडं त्वपि शाक्रवत्स्यात् ॥ ९० ॥ अथ सप्तास्रि ॥ क्षेत्रस्य मध्यगुणे दलितेऽश्विरामवह्न्यंगुलानद्रिभिरथाक्षिकराद्रिचन्द्रैः ॥ संवर्द्धयेच्च वलयं भ्रमयेदनेन तद्व्यासविंशतिलवं विशिखं प्रयुंज्यात् ॥ ९१ ॥ हत्वा च तं नवगुणं भवतीह जीवा तन्याच्च सप्तधनुषो मिलिताग्रकोटीः ॥ हित्वाथ चापभुवमेव बहिश्च शेषं सप्तास्रि कुंडमिह सर्वगुरूपदिष्टम् ॥ ९२ ॥ अथ पंचास्रिकुंडम् ॥ व्यासार्द्धमर्कांशविभक्तमग्रे संवर्द्धयेद्रामगुणर्तुवेदैः ॥ यद्वाग्निरामाक्षिशरांगुलाद्यैर्विभ्रामयेद्वृत्तमनेन सम्यक् ॥ ९३ ॥ त्रिभिश्च तद्विस्तृतिपंचमांशैर्मिथो मिलज्याग्रमुखानि पंच ॥ धनुषि जीवात्मषडंशबाणान्यासाद्य तत्स्यादथ पंचकोणम् ॥ ९४ ॥ अथ वेदास्रम् ॥ वेदस्रक्तिसमश्रुतौ वितनुयात्सूत्रं हि मध्यं कृतिद्वित्रिघ्नादिषु तस्य तस्य च फलं विद्याच्च तत्तद्गुणम् ॥ तत्तद्वर्गितमूलसंस्थितमिदं सूत्रं भवेन्मध्यमं तस्मिन्कुंडमितः सृजेत्प्रकृतितो वेदास्रमत्युत्तमम् ॥ ॥ ९५ ॥ प्रमाणमिष्टं शशिभागहीनं तिर्यक्च तत्पार्श्वगमेकभागम् ॥

मत्स्यद्वयेनोक्तविधेन साध्यं तस्याक्ष्णया विस्तरसूत्रमिष्टे ॥ ९६ ॥
एकहस्तादिक्षेत्रमध्यसूत्राणि सूक्ष्मप्रकारेणाह ॥ आपंक्तिहस्तोन्मित
कुंडवृंदे व्यासांगुलान्येककरा जिनांशात् २४ ॥ स्वराङ्घिनेत्रैः
सममग्निरामा ३३।७४।२ वेदाङ्घिबाणैः ४१।४४।५ क्षितिसागरास्तु
॥ ९७॥ वस्वङ्घय ४८ श्चेष्टगुणैस्त्रिबाणा रसाश्विबाणैर्वसुसायकाश्च ॥
वेदे सहैवाग्निरसास्तथाद्रिव्योमाङ्घिभिः सप्तरसाः कराश्वाः ॥ ९८ ॥
मुनींदुरामाः शरवाजिनश्च क्षेत्रांगुलानि क्रमशोऽङ्गुलाद्यैः ॥ ज्ञेयानि
तज्ज्ञैः फलसूक्ष्मसिद्धैस्तुष्यंतु ये मच्छ्रमभूरिविज्ञाः ॥ ९९ ॥ जिनाः
खेंदुरामाः सुरा वाजिबाणाग्निभिश्चैकचत्वारिंचाङ्घींदुरामैः ॥ भुजंगा-
ङ्घयोऽश्वांबरोगैस्त्रिबाणाः शराग्न्यग्निभिर्नागपंचर्तुरामैः ॥ १०० ॥
त्रिषष्टियुगाश्वाङ्घिभिः सप्तषष्टिः स्वरक्षोणिभिर्यश्चमभाश्रवेदैः ॥ शरा-
श्वामुनींद्वर्तुभिः संप्रदिष्टा ध्वजा येन पंक्त्यंतकुंडेषु संख्या ॥ १०१ ॥
ध्वजायसिद्धिः करश्च केचित्तथैवांगुलिभिर्वदंति ॥ लंबा हता विस्तृ-
तिरष्टभक्ता शेषं ध्वजाद्याः प्रवदंति चायान् ॥ १०२ ॥ फलं च यच्चै-
ककरे सखातं तद्वद्विहस्तादिषु ये वदंति ॥ ते मेखलाकंठफलं च खात-
मंगं न जानंति पृथक्प्रधानात् ॥ १०३ ॥ शुल्बे श्रुतौ सप्तविधा-
द्वदंति पुमुच्चये नैकशतांतवृद्धम् ॥ क्षेत्रं हि मुख्यं न यथेष्टकानां
संख्याविवृद्धिर्विहिता यथात्र ॥ १०४ ॥ वेदिः श्रुतौ दशदशेति
च वीप्सयोक्ता कल्पे तु सा दश १० पदैव च तेन होमे ॥ यल्लक्षको-
ट्ययमलंवतती प्रयुक्ते भूपालपद्धतिकृता मुनिगीर्विनासा ॥ १०५ ॥
कुंडोद्वादिसमेखलोन्नतिसमं विस्तारतुल्यं बुधैः खातं विस्ततिसंमितो-
च्चमथवा प्रोक्तं भगादिष्विति ॥ क्षेत्रव्यासजिनांशकेन समतः सूर्यांश-
केनापि वा कंठं कुंडबहिर्भवेच्च परितः स्वस्वाकृतिः सर्वतः ॥ १०६ ॥
व्यासे भक्तजिनांशके समतया कंठाद्बहिर्मेखलास्तिस्रो वेदगुणेक्षणा-
२।४।२।२। शविपुला निध्यर्तुरामोच्छ्रिताः । ९ । ६ । ३ ॥

षट्पंचाब्धि । ६ । ५ । ४ । ३ । २ । गुणाक्षिविस्तृतियुता नंदां ९ शकोच्चादिमा तत्पंचाशविहीनकोन्नतिमिताश्चान्याश्चतस्रो मताः ॥ ७ ॥ विस्तारैश्चतुरंश ४ काश्च कथिताश्चोच्चास्तकार्कांश- कैर्नागाधिकमशोऽपि वै कवि । १२ । ९ । ४ । मिता षड्विस्तरोच्चा बुधैः ॥ व्यासात्षष्ठलवाष्टमांशविमितं शस्ताद्वयं वा भवेत्सर्वत्रैव मृदेष्टकाभिरपि वा चूर्णेन ताम्रेण वा ॥ ८ ॥ अथ योनिमाह । व्यासार्द्धदीर्घाग्निलवायता हि जिनांशतुंगावृतमेखला च ॥ कुंडांतराग्रांतविलासयोनिर्वृत्तार्द्धयुग्मेन युतात्ममूला ॥ ९ ॥ वितस्तिदीर्घारिलवायता वा तिथ्यंशदीर्घा दशविस्तृता वा ॥ स्वदैर्घ्य- मानोन्नतिसंमिता वाप्यश्वत्थपत्राकृतियोनिरुक्ता ॥ १० ॥ अथ नाभिमाह ॥ नाल प्रोक्तं योनिमूले तु कश्चित्क्षोणीमूलाद्रंध्रमध्यं सुलग्नम् ॥ वैपुल्येनांभोधिसंख्यांगुलं तन्नैवेष्टा स्याद्योनिमध्ये तु योनिः ॥ ११ ॥ अशक्तौ स्वल्पहोमे च कुंडं वा स्थंडिलं मृदा ॥ वेदांगुष्ठोच्चमेकं वा चतुरस्रं करोन्मितम् ॥ १२ ॥ अथवा नूतनं पात्रमायसं वापि मृन्मयम् ॥ नित्ये नैमित्तिके काम्ये वेदिर्वा कैश्चिदी- रिता ॥ १३ ॥ ध्वजायसिद्धिः करतश्च केचित्केचित्तथैवांगुलिभि- र्वदंति ॥ लंबाहताविस्तृतिरष्टभक्ता शेषं ध्वजाद्यान्प्रवदंति चायान् ॥ १४ ॥ सिद्धा २४ श्चैकगजाब्धि ४८ संख्यलवयुग्वेदास्तथाक्ष्य- श्विभिर्वह्नचक्ष्यंशयुताश्च भद्रजलपा ह्यर्कांशकैः सप्तभिः ॥ नागा- नो निधयश्च षण्णवतिमश्चंद्रांशयुक्ता हि ताह्यक्षाः पंचयवाश्च पंचमल- वद्राभ्यां युताः पंचमे ॥ १५ ॥ षष्ठे नागशरायुतैः । ५८ । ४ । ५ । शरयवैह्र्यंगानि वेदाक्षता-॥ युक्ताश्चाद्रियवाः शरांशविधुना भाव्या ध्वजायक्रमात् ॥ १६ ॥ सिद्धा २४ सुरासप्तदशांशयुक्ता धृत्या विभक्ताः शशिसागराश्च ॥ वेदैः स्वरैर्नागयुगाः सखाभ्यां गुणेषु वेश्वांग- युगांकभक्ताः ॥ १७ ॥ गजेषु चाद्यस्त्रयुता नवेकभक्तास्त्रिषष्टिः

श्रुतिभिर्गजैश्च ॥ सप्तर्त्तवः स्वाष्टभिरेकभक्ता युग्माद्रयोऽभ्राभ्रमिता-
स्तथैव ॥ १८ ॥ भूतर्षयो नंदयुताश्च पंक्तिविभाजिताः क्षेत्रफलप्र-
वादाः ॥ सिद्धादयः पंक्तिकरांतकुंडेष्वेकोदितो मध्यगुणा भवात
॥ १९ ॥ सुखं स्मृतिर्गणितमागमवास्तुविद्यां छंदःसुपर्णचितिकाव्य-
पुराणवेदान् ॥ विंदंति वाक्पतिदृशः कतिचित्समस्तां विद्वानहं कथमतः
स्वमतिं विमृश्य ॥ १२० ॥ स्मृत्वा मधूत्तमपदांबुजमिष्टसिद्ध्यै
दृष्ट्वा तु पूर्वविदुषां कृतिमादरेण ॥ ज्ञात्वा तदर्थमतिसूक्ष्मविचारणेन
यच्चोक्तमत्र विबुधाः सुखयंतु तेन ॥ २१ ॥ अथ विनायकशांतिराह॥
वेदे पंक्तिपदायतां समभुजां मित्वोत्तरापूर्वयोर्वेद्याः षोडशकांगुलांतर-
मिते पीठं द्विहस्तायतम् ॥ खेटानां रचयेत्कराद्धमितमुन्नत्या च
कुंडांशतस्त्यक्त्वा त्रिंशदशांगुलानि नवादिश्यादर्शमध्योन्नतम् ॥ २२ ॥
भद्रं तद्वदथांगुलादिधृतिचंद्रर्तुक्रमादंतरं हित्वा चोत्तरतः कलांशविवरं
कुंडान्तथेंद्वक्षिभिः ॥ चंद्रर्त्वंशयुतैस्तथापरदिशः सप्तेंदुभिः सप्तचंद्रा-
क्ष्यंशैरपि तत्सुराद्रियुगयुग्मांशायतं विस्तृतम् ॥ २३ ॥ हेरंभाचगृहं
गृहाद्गुणयमैश्चंद्रर्तुयुक्तांशकैः २३ । १ । ६ । याम्ये हस्तमितं ततोऽ-
श्वियमलैः षट्पंचषड्भिर्युते ॥ वेद्याश्चांतरमत्र चंद्रदिशितद्विंशांगुलै-

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	एवं दशहस्ते
२४	३३	४१	४८	५६	५८	६३	७२	७२	७५	ध्वजा आनेय
१	२२	७	१	२	४	१	१	१	१	अंशः
४८	२३	१२	९६	५	५	१६	८	१४४	५	भाजकाः

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	एवं दशहस्ते
२४	३३	४१	४८	५३	५८	६३	६७	७२	७५	ध्वजा आनेया
०	७	४	०	६	१०	४	८	०	९	अंशः
०	१८	७	०	९	१९	८	४	०	१०	भाजकाः

रश्वषट्चंद्रांशैश्च रसाश्विभिः क्षितियमाक्ष्यंशैश्च कुंडांतरे ॥ १२४॥
कुंडं पश्चिमयाम्यवेदिपरिधेर्विंशांघ्रिरंध्रर्तुसप्ताक्षांशैश्च नखर्तुसायकशैः

श्वांशांतरेऽवस्थितम् ॥ नागाश्वांगुलमध्यसूत्रमथवा तद्वत्स्मृतं स्थं-
डिलं साध्यं विध्वहृषट् प्रशांतिकरणे शांत्यै ग्रहाणामपि ॥ २५ ॥
इति सग्रहविनायकशांतिविधेर्भद्रपीठकुंडानां मानमुक्तम् ॥ अथ
ग्रहाणां मंडलप्रमाणम् ॥ पीठं युग्मकरं मिताय विलिखेत्पद्मं दलैश्चाष्ट-
भिर्युक्तं मध्यमवर्णिकां तु कुहुरे सारैः सुवृत्तं गृहम् ॥ चंद्राश्वर्तुमितां-
गुलादिभिरिह व्यासार्द्धयुक्त्या हि तद्वेदाध्यक्षिमितैस्तथाम्बिकदले
सौम्यं चतुःकोटिकम् ॥ २६ ॥ भौमं याम्यदलेऽक्षिबाणविमितं कुं-
भांतरे भूतले वह्न्यब्धाष्टिभिरंगुलादिरचितं तावन्मिते स्वद्वयम् ॥
एवं त्र्यस्त्रिगृहं निमाय भवदिग्द्वयध्यंशविष्कुंभयुङ्मूलादंगुलमध्य-
सूत्रमुपरि त्र्यंशं च तिर्यग्द्वयम् ॥ २७ ॥ मध्यस्थैकभुवं त्रिकोणयुगलं
पूर्वापराग्रं लिखेन्मूले वृत्तयुतं शराच्छुतिगृहं चंद्रात्मजस्योत्तमम् ॥
सौम्ये पद्मदले गुरोस्तु दहनैरायामसूत्रं भवेद्विस्तारेऽगुलयुग्ममत्र
कथितं दीर्घं चतुःस्त्रक्तिकम् ॥ २८ ॥ ऐंद्र्यां भार्गवपंजरं सुविपुलं
त्र्यंशं च पार्श्वद्वये भित्तिद्व्यंगुलमुच्छ्रिते तदुपरि प्राच्यां त्रिकोणं
भवेत् ॥ वेदांशांतरसूत्रमत्र रचितं पंचास्त्रमत्युत्तमं वारुण्यां धनुषं
शनैः कुसुनिषड्व्यासार्द्धवृत्तार्द्धकम् ॥२९॥ स्वर्भानोः शरनेत्ररामयम-
युक्पूर्वास्यलक्षैर्लवैर्विष्कुंभं युगहग्गुणाक्षितिरधः साध्या सुरेभूः समाः ॥
केतूनां ध्वजमूलभूर्गुणयुगात्वध्यंशमानानिले पंचांशैर्मितमध्यसूत्र-
मुदितं मूले सुदंडांकितम् ॥ १३० ॥ एवं भानुजिनाब्धिवेदरसनिघ्नांगे-
र्जिनांकांगुलाद्यंशैः सद्गुणितेन हर्म्यरचनं सूर्यादिखेटक्रमात् ॥ शौक्लीं
वृत्तिमुपाश्रितेन बलभद्रेणेह सम्यक्छुभान्ग्रंथान्हृद्यवधाय पूर्णमुदिते
मेधाविसंतुष्टये ॥ ३१ ॥ अथाग्निहोत्रदर्शपूर्णमासादिषु प्राकृतं वेदि-
निर्माणमाह ॥ ब्राह्मीमविभ्रंशवतीं परीक्ष्य संशोध्य भूमिं सुसमां
समुच्चाम् ॥ प्रगृह्य तस्यामनुलिप्य शालां कृत्वा निहन्याद्दृढमाद्यशं-
कुम् ॥ ३२ ॥ प्राचीं ततः पूर्ववदुक्तयुक्तं संसाध्य देशे परितः प्रशस्ताम् ॥

नर्यस्य विश्वाब्धिगुणांगुलादिव्यासार्द्धमित्या विलिखेत्सुवृत्ते ॥ ३३ ॥ तन्मध्यचिह्नाद्वसुविक्रमेषु वैकादशद्वादशसु स्वमत्या ॥ वांशस्य मध्यं परिकल्प्य कुर्यात्कुंडं चतुःकोणमरत्निमात्रम् ॥ ३४ ॥ मध्यं च नर्याहवनीययोस्तु विभज्य षोढाप्यथ सप्तधा च ॥ लब्धांशकागंतु-समं त्रिधा तत्र्यंशं च हित्वापरदक्षिणेऽग्निः ॥ ३५ ॥ अग्नेरुदक्सार्द्ध-नवांगुलेऽस्मिन्यूकेषुभिर्वर्द्धितभूस्तु शंकौ ॥ एकोनविंशांगुलिभि-र्यैवैकयूकाद्वयं व्यासदलेन वृत्तम् ॥ ३६ ॥ विलिख्य पूर्वापरसंस्थजीवां कृत्वा च हित्वोत्तरकार्मुकं हि ॥ याम्यां भवेत्कुंडसमर्थयज्ञं सभ्यं सभायां चतुरस्रमुक्तम् ॥ ३७ ॥ उपासनं चैवमथो गृहांतःकुंडद्वयं वर्यमिवोक्तवद्वा ॥ उपर्युपर्यर्थितमेखलाभिस्त्रिभिस्त्रिभिः सर्वखरेषु-भित्तिः ॥ ३८ ॥ एवं कुंडानां साधनं प्रमाणं चोक्तं वेदिसाधनमाह ॥ वेदांगुलोच्चाभिरथो विदध्याद्ध्रुवश्च तारुयंगुलविस्तृताभिः ॥ रज्जुं द्विपा-शां षडरत्निदीर्घां विचिह्नितां पंचसु मध्यभागे ॥ ३९ ॥ हस्तद्वयेऽ-प्यंगुलषट्कचिह्ने ह्यष्टादशेषु त्रिषु लक्षितां वा ॥ प्राचीभवादाहवनी-यशंकोः पश्चादरत्न्यां प्रतिमुंच्य शंकुम् ॥ १४० ॥ पाशद्वयं संप्रति मुंच्य शंकोर्विकर्षयेदंगुलषट्कचिह्नम् ॥ पाश्चात्त्यहस्तद्वयरज्जु-चिह्ने शंकू च याम्योत्तरगौ निखेयौ ॥ ४१ ॥ तच्छ्रोणियुग्मं त्वथ पूर्व-पाशादष्टादशांकेन विकृष्य रज्जुम् ॥ अग्नीशयोरंसयुगं तथा स्याच्छं-कुद्वयात्सार्द्धकरे च चिह्ने ॥ ४२ ॥ सूत्रार्पणात्कोणचतुष्टयेषु क्षेत्रं भवेत्तद्विषमं हि वेद्याः॥ पूर्वार्द्धचापद्वयमुत्तरार्द्धं यावच्च कोणौ परिवेष्टय रज्ज्वा ॥ ४३ ॥ अह्नि कृतां तामनुवेष्टय शंकू याम्योत्तरौ मध्यगतौ निखेयौ ॥ तुरीयभागेन पलीकृताया रज्जोः पृथक्त्वादथवापि शंकोः ॥ ४४ ॥ वृत्तार्द्धमानेन च संग्रहौ तु कृत्वा खनेत्र्यंगुलवेदिम-ध्यम् ॥ वितानपूर्वापरसौम्यदिक्षु द्वारैर्युतं सस्यगृहं पुरस्तात् ॥४५॥ याम्यैंद्रदिग्द्वारगृहं द्वयोश्च श्वभ्रं च भस्मोद्धरणाय च कुर्यात् ॥

एवं हवियज्ञविधौ वितानकुंडानि साध्यानि समानि सद्भिः ॥ ४६ ॥
वृत्ते पूर्वविनिर्मिते त्रियवयुक्षड्भिः शराश्वांगुलैर्मित्वाषष्टिभिरंगुलैश्चतसृभिर्योभिर्भजेन्मंडलम् ॥ द्वाभ्यां मध्यशरद्वयं यवयुतद्वाभ्यां च बाणद्वयं मित्वापूर्ववदष्टपत्रविधिना पद्मं चतुर्भिर्दलैः ॥ ४७ ॥ अथ ग्रंथालंकारः ॥ स्वस्तिश्रीशुभमस्तु सर्वजगतः श्रीमत्स्वतःसंमितं पुंसोऽनिर्वचनीयमित्यगुणिनो वेदस्वरूपस्य च ॥ श्रीमत्स्वस्तिसमस्तविश्वजगदुत्पत्तिप्रतिष्ठालयं शक्त्या कर्तुरचिंत्यशक्तिमहिमायोगात्परिभ्राम्यतः ॥ ४८ ॥ ब्रह्मांडैककटाहवर्त्तिभगवन्नाभिप्रभूताखिलस्रष्टुर्लोकपितामहस्य बहुधा याच्भावशात्कुर्वतः ॥ रूपाण्यन्यतमानि मत्स्यकमठादीनि प्रपंचैः प्रभोरानंदैकघनस्य चिद्भगवतः स्वेच्छासमुज्जृंभिते ॥ ४९ ॥ सुव्यक्तावरणैरहंकृतिमुखे क्षित्यादिपंचावृतेऽस्मिन्ब्रह्मांडकरंडमध्यनिहिताधारादिशक्त्यन्विते ॥ कूर्मानंतवराहकाष्टमितादिद्वंतिप्रतिष्ठे महापातालादिसुसप्तकोपरितने भूराद्यधोऽवस्थिते ॥ १५० ॥ शेषः श्रीफणिराट्सहस्रफणिनः कालायमानस्य सन्मूर्ध्निस्थोपरिपर्वतार्णववनद्वीपर्षिसप्तावृते ॥ गुह्यैश्चैव चतुर्दशांतरचिते निध्यूखरैर्मण्डिते दण्डाद्यैर्नवभिस्त्रिभिर्हुतवहैर्याम्यैश्च सन्मंडिते ॥ ५१ ॥ गंगासिंधुसरस्वतीप्रभृतिभिः क्षेत्रैश्च कुर्वादिभिर्दिग्भिः पूर्वमुखाभिरेवमभितो जुष्टे प्रदेशे त्विह ॥ पंचाशन्मितकोटिभिश्च गणिते विस्तारिते योजनैर्जंबूद्वीपनिकेतनैकभरते खंडे पृथिव्यामिह ॥ ५२ ॥ वर्षे भारतसंज्ञकेऽद्य भगवल्लीलोर्मिसत्सागरे मध्यावस्थभुजंगभोगशयनं कर्तुश्च नाभ्यंबुजात् ॥ उत्पन्नस्य जगत्प्रजाः सुसृजतः श्रीब्रह्मणः स्वे परार्द्धे सद्भवराहहतृगणितोत्पन्ने द्वितीये तथा ॥ ५३ ॥ कल्पे श्वेतवराहनाम्नि विहिते वैवस्वते सप्तमे सन्मन्वंतरकेऽष्टविंशतितमे प्राप्ते कलौ संप्रति ॥ अह्नि स्वे प्रथमेऽखिलक्षितिपतेः श्रीविक्रमार्कप्रभोर्वर्षाशीतिसहैर्वर्षोडशशतातीते च काले त्विह ॥ ५४ ॥ श्रीमद्भूपतिशालिवाहनश-

कात्पंचाब्धितिथ्यन्विते श्रीसूर्ये दिशि सौम्यगामिनि वसंततौ च मीने रवौ ॥ चैत्रे शुद्धगपौर्णमासि हिमगौ सावित्रधिष्ण्ये धृतौ कन्यस्थे हिमगावथावनिसुते मेषे बुधे मीनगे ॥ ९५ ॥ सिंहे देवगुरौ सिते मकरगे कर्के शनौ संस्थिते कन्यायां तमसि प्रकेतुषु रुषं संस्थेषु पुण्येऽहनि ॥ सद्विष्ट्यां करणे च सन्मिथुनके लग्नेऽभिजित्के मुहूर्ते सत्कुंडविचारणार्थमुदितो दीपः प्रकाशं प्रयात् ॥ ९६ ॥ श्रीमत्स्तंभसुतीर्थपत्तनमहेंद्रांभोधियोगे वसन्नानाशास्त्रविचारणे पटुमतिः श्रीगौडरत्नाकरात् ॥ जातो वत्सकुलाब्धिशीतकिरणः सत्कुंडतत्त्वं स्फुटं शुक्लः स्थावरसूनुरत्र बलभद्राख्यः प्रवक्ति स्फुटम् ॥ ९७ ॥ यः पूर्वं सुहिरण्यगर्भमतुलं रूपं दधन्वान्विरण्मध्ये भट्टसमाख्ययाऽभवदसौ वेदान्वितत्वं स्वराट् ॥ भूयः श्रीजयदेवदीक्षितमणिः सम्राट् सुविस्तारितुं सांगं कर्मपथं चरन्विजयते श्रीमन्नृसिंहात्मभूः ॥९८॥ येन श्रीभगवान्मखैर्बहुविधैः संतर्पितः शास्त्रतो येन द्वादशसौत्यकाग्निचयनैः सद्वाजपेयादिभिः ॥ इष्टं तेन सुशास्त्रवेदविदुषां तत्त्वोपदेशाय चाज्ञप्तेनायमगाधसागरजलात्पूर्णेंदुवत्काशितः ॥ १९९ ॥

इति श्रीबलभद्रशुक्लविरचितः कुंडतत्त्वप्रदीपः समाप्तः ॥ १५ ॥

अथ कुंडकल्पद्रुमप्रारंभः १६ ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीवेदमात्रे गायत्र्यै नमः ॥ श्रीकुलदेवतायै नमः ॥ ॐमित्यक्षरमद्वितीयमनदत्तत्सद्यदंतःस्थितं नत्वा सौति बिभर्ति विश्वमखिलं यस्मिन्पुनर्लीयते ॥ द्वष्वाचार्यकृतागमाच्छ्रमहरः श्रीमाधवेनोद्धृतो निर्मथ्यांकसमुद्रमिष्टफलदः श्रीकुंडकल्पद्रुमः ॥१ ॥ समगते नरि वा प्रपदोच्छ्रिते समकृतोर्ध्वभुजे कृतवेणुना ॥ परिमिते सति योऽक्षलवः करः करजिनांशकमंगुलमीरितम् ॥ २ ॥ मानं प्रोक्तं वेतमूलं

मयात्र कल्पे प्रोक्तं यच्च कात्यायनेन ॥ श्रौते ग्राह्यं नागमोक्तेषु तत्स्या-
देवं ब्रूते विश्वनाथो व्यवस्थाम् ॥ ३ ॥ मुक्त्वांगुष्ठं योऽश एवात्र मुष्टे-
र्वेदैः प्रोक्तं तच्च मुष्ट्यंगुलं हि ॥ कुंडं होमांगानि तेनैवं कार्याण्याहुः पूर्वं
देहलब्धांगुलैर्वा ॥४॥ यन्मध्यमामध्यमपर्वदैर्घ्यं मानं तु मात्रांगुलमुत्तमं
तत् ॥ स्वपादहीनं खलु मध्यसंज्ञं पर्वार्द्धमानं त्वधमं स्मृतं ज्ञैः ॥५॥
यवो यूका क्रमाल्लिक्षा वालाग्रं रथरेणुकः ॥ त्रसरेणुश्च संज्ञाः स्युरं-
गुष्ठादष्टमांशकाः ॥ ६ ॥ कृतमुष्टिः प्रकोष्ठः स्यान्मुष्टी रत्निर्नरष्टमः ॥
कर एव कलांशोनः सोऽरत्निस्त्वकनिष्ठिकः ॥ ७ ॥ शिवालये
पुण्यसरित्तटे वा गोष्ठेऽप्युदक्प्राक्प्रवणे निर्जेऽगणे ॥ यद्वोचिते
शोधित उन्नते कृते हस्तेन वार्द्धेन समे सुमंडपः ॥ ८ ॥ पाटीरागरु-
रक्तचंदनरदन्यग्रोधवैकंकतश्रीपर्णीचलपर्णबिल्वखादिरब्रह्मद्रुमोदुंबराः ॥
एषां शंकुरकल्मषः सुसरलस्तुंगः पतंगांगुलः पर्वद्वंद्वतलः कुशाग्र
उदितो यंत्रभ्रमे वर्तुलः ॥ ९ ॥ प्राचीसाधनम् ॥ यद्वा निखेयौ तु
विभुद्वरेण केंद्रे सुवृत्तस्य नवांगुलस्य ॥ तिथ्यंगुलैर्दिक्षु चतुर्षु संस्थैः
कीलैः शिरःस्पृक्सरलत्वमोति ॥ १० ॥ अभीष्टमासंमितकर्कटेन
विधाय वृत्तं त्वपरं नरस्य ॥ तलस्य विस्तारदलेन तच्चाचलं स्थलं
शंकुनिवेशयोग्यम् ॥ ११ ॥ द्युतिप्रवेशापगमौ विदित्वा शंकू निखेयौ
परपूर्वसंज्ञौ ॥ ताभ्यां तिमी स्तः खलु याम्यसौम्ये दिक्साधनं स्थूलमति-
प्रयुक्तम् ॥१२॥ सूक्ष्मप्राचीसाधनम् ॥ द्युतिप्रवेशोद्भवनाडिकाभिर्द्विघ्ना-
भिरूनेन दिनेन निघ्नाः ॥ दिनद्वयस्यापगमांतरालभागाहृताः स्युः
खरसैरभीष्टाः ॥ १३ ॥ तैश्चालयेद्दैद्विगुणं तु भावाद्रामोदितोऽयं
विधिरत्र सूक्ष्मः ॥ वक्ष्येऽथ सूक्ष्मं किल तत्क्षणेन दिक्साधनं कष्टतरं
सुबुध्या ॥ १४ ॥ विधाय भूपांगुलिभिः सुवृत्तं स्थाप्योऽतराशंकुरसौ
स्ववृत्ते ॥ यत्रैव वृत्ते विशति प्रभाग्रं तत्रांकयित्वा घटिकानुमेया
॥ १५ ॥ तत्कालार्कः सायनांशो विधेयस्तद्दोर्भागादस्थगुण्यो युतश्च ॥

शेषाद्धाराप्त्याक्षकर्णेन निघ्नो दोर्मध्यं स्यात्सायनांशार्कगोले ॥ १६ ॥
द्विघ्नयायुतोऽक्षप्रभया युतोऽसौ सौम्येऽथ सौम्येंऽतारितः स्फुटः स्यात् ॥
भाग्रात्प्रदेयो वलयेऽथकावत्स्फुटे भवेतां किल याम्यसौम्ये ॥ १७॥
भुजार्द्धकेंद्रोपरि सूत्रदानात्प्राची हि सिद्धांतमतेन तुल्या ॥ तथैव
दिक्साधनमत्र चिंत्यं नवांगुले मंडलकेऽपि तावत् ॥ १८॥ अथ साय-
नांशम् ॥ रवेरंशाधो हारा गुण्यास्तदधो हाराः हारहृतरवेः कलाभि-
र्युतो गुण्यपलकर्णगुणो द्विघ्नाक्षभासंस्कृतः स्पष्टः षोडशांगुलवृत्ते
भुजसाधनं नवांगुलवृत्ते वा ॥ अथ मध्याह्नछायया प्राचीसाधनम् ॥
दिनार्द्धप्रभामंडलस्याष्टभाग्राद्गुणो नीयते यश्च केंद्रोपरिष्टात् ॥ स्फुटः
सौम्यसौम्यो झषात्प्राक्प्रतीच्योर्यदा स्यादभालत्रयुत्तयंतरेण ॥ १९॥
अथ समचतुरस्रसाधनम् ॥ दिक्सूत्रसंपातमुखाधिमत्स्यान्दिक्चिह्न-
केभ्योऽत्र विदिक्स्थपुच्छान् ॥ विलिख्य तुल्यश्रवणं युगस्रं पुच्छाग्र-
युग्वेदगुणैः समं स्यात् ॥ २० ॥ अथोत्तमादिमंडपाः ॥ जिन २४
नख २० धृति १८ भूपा १६ रत्नयः स्युः प्रशस्ता नृपमनुरविहस्ता
मध्यमास्ते भवंति ॥ रविदशवसुहस्तास्तेऽधमा मंडपाः स्युः समभुज-
चतुरस्राः साधनीया महद्भिः ॥ २१ ॥ करज २० करमितो वा मंडपो
ब्राह्मणानां नृपरविकरतुल्यौ भूपतीनां विशां च ॥ रविदशकरतुल्य-
स्त्वंघ्रिजानां व्यवस्था करिकरमित ऊचुः प्राकृतानां तु केचित् ॥२२॥
होमानुमानात्किल कुंडमेके स्यामन्मंडपो वाष्टगुणस्तु कुंडात् ॥ नामानि
वक्ष्ये नवमंडपानां हीनात्क्रमात्तत्कृतमस्तु यावत् ॥ २३ ॥ यो नागै-
र्जयसंज्ञकश्च विजयो दिग्भिस्त्विनैर्भद्रकः शक्रैरेष सुभद्रको नृपकरै-
श्चानंदकाष्टेंदुभिः ॥ यागार्थं खलु विश्वरूपक इति प्रोक्तो नखैश्च
ध्रुवो द्वाविंशैश्च सुभद्रको जिनमितैः स्यात्सुप्रसन्नः करैः ॥ २४ ॥ अमी
मंडपाः स्युर्हि बोधायनोक्ता धनाद्याः परे चार्कहस्तादिका ये ॥ करद्वंद्व-
वृद्धया जगुश्चाथ कामांकुशैः पाणिभिर्मंडपः स्याज्जलायाम ॥ २५ ॥

कैश्चिन्मंडप ईरितः करभवै २० र्हस्तैस्तुलारोहणे हस्तैश्चाकृतिभिः २२ समः शुभकलो ब्रह्मांडदाने परैः ॥ मुक्त्वा हर्म्यसमांतरालमुदगेंद्र्या वा गृहे मंडपश्चेद्द्वंद्वं यदि पूर्वतुल्यविवरं त्यक्त्वापरो मंडपः ॥ २६ ॥ विधाय क्षितिं मंडपस्यांककोष्ठां विरच्यांतकोष्ठे तु वेदीष्टकाभिः ॥ स्वकीयाग्निवेदेषुपाकं हि रुद्रांशकैर्वाथ कल्प्यात्र हस्तोन्नता सा ॥ २७ ॥ स्तंभाः स्युर्मखसारदारुरचिता वा वंशजाः पूगजा निश्छिद्रा ऋजवो दृढाश्च गदिताऽलाभे तु शालादिजाः ॥ स्वीकार्योः कुटिलाश्च शुष्कतरुजाश्चासौम्यपृथ्वीमयाः शीर्णास्ते गृहशल्यजाश्च विबुधैस्त्याज्या वृतौ सर्वदा ॥ २८ ॥ स्तंभाश्चोत्तममंडपार्द्धविमिताश्चूडाचिता वेदिकाः कोणेष्वंबुधयोऽष्टहस्तविमितास्ते स्युर्हि मध्याल्पयोः ॥ बाह्याः पंचकरोन्नता रविमिताः स्युर्वह्निकोणात्क्रमात्पंचाशेन तु ये द्विहस्तविमिता रोप्या भुवि स्वेच्छया ॥२९ ॥ बाह्यस्तंभशिखासु चारुवलिकास्तुर्योन्मिता योजयेन्मध्ये वेदमितास्तथा दिशि दिशि द्वे द्वे तु तिर्यङ्न्यसेत् ॥ कोणेष्वब्धिमितास्तथाथ शिखराकाराश्चतस्रोऽतराथो द्वाराणि दिगंतराणि करयुग्मेनैव हीने रुजेत् ॥३०॥ वेदैर्गजैरंगुलिभिस्तु वृद्ध्या द्वाराणि मध्योत्तमयोः क्रमेण ॥ सौदुंबराण्यत्र करं विहाय स्थितिं जगुर्ज्ञाः किल तोरणानाम् ॥ ३१ ॥ प्लक्षोदुंबरलोलपत्रवटजावाद्यांत्ययोर्व्यत्ययेनाद्योपांत्यविपर्ययेण गदिताः शाखाः क्रमात्पूर्वतः ॥ चंद्राङ्ग्यंगुलवर्तुलाश्च सरलास्तुंगाः करैः पंचभिः षड्भिः सप्तमितैः क्रमेण विबुधैर्हीनादिके मंडपे ॥ ३२ ॥ निश्छिद्राः सरला समास्तु विहिताऽलाभेसवृद्दारुजाः शाखा वा शमिजंबुतालखदिराणां मध्यतस्त्वेकजाः ॥ द्वारस्योभयतः स्थले निजनिजे रोप्याः स्वपंचाशकैस्तन्मौलौ फलकं करद्वयमितं द्वारासमं हीनके ॥३३॥ षड्भिर्द्वादशपर्वभिस्तदधिकं मध्योत्तमे मंडपे वा दैर्घ्यार्द्धमितानि रंध्रसहितान्यंतर्द्वये स्युस्तथा ॥ तन्मौलौ फलकार्कभागविमिताः सूक्ष्माः सुदी-

र्घाः क्वचिच्छाखार्कांगुलसंमिताश्च कंब्वरिगदाब्जैरंकिता वैष्णवे ॥ ३४॥ शैवे शूलोपमास्ते निजनिजतरुजाः पर्वभिः प्रोन्नताः स्युर्नंदै रुद्रैस्त्रिचंद्रैर्निजनिजनिगमेनाल्पतः स्थूलमूलाः ॥ वेशस्तेषां क्रमेणैव बिलविहितो द्वित्रिवेदांगुलैर्यन्मध्ये मूलं समं स्यात्तदितरयुगलं पार्श्वसंस्थं तु वक्रम् ॥ ३५ ॥ एवं त्रीणि त्रिशूलान्यपि प्रतिफलकप्रांतयुग्मे च मध्ये चेदेकं हस्तमात्रं निगमलवततं स्वाष्टमांशेन रोप्यम् ॥ हित्वा द्वाराणि सद्भिर्हरितदलचयैर्नारिकेलादिकानां चार्द्रैर्वंशैः कटैर्वा बहुसुखजनकश्छादितो मंडपः स्यात् ॥ ३६ ॥ सुदृढमरुणमैंद्र्यां याम्यदिश्यंजनाभं विकटमपि सुभीमं श्वेतवर्णं प्रतीच्याम् ॥ धनददिशि सुपीतं सुप्रभं तच्छुभं च भृतकलशयुगाढ्यं सांकुरं सिद्धिदं स्यात् ॥ ३७ ॥ मांजिष्ठादिभिरंजितैः सुवसनैः सत्पट्टकूलैः फलैर्घटाचामरपुष्पपल्लवकुशस्रग्भिर्विचित्रैर्घंटैः ॥ सद्भक्ष्यैर्घृतपाचितैश्च मुकरैः खाद्यैर्वितानैस्तथा रत्नैः किंकिणिकादिभूषणवरैः सन्मंडपं भूषयेत् ॥ ३८ ॥ विवाहे स्मृता श्रीधरी वेदिका सा नखास्रा नृपस्याभिषेके सुभद्रा ॥ तथारामवाप्यादिकृत्ये स्मृतापाग्निना प्रशस्ता पद्मवत्केवलेव ॥ ३९ ॥ अथ ध्वजपताकामाह ॥ पुच्छं त्र्यस्त्रित्रिहस्तं तदुपरि च समं हस्तमात्रं युगास्रमूर्ध्वं वैसारिणाभं भवति करमितं मूलभागे द्विहस्तम् ॥ एवं पंचायतादिक्पतिमसुरुचाश्चिह्निता वाहनैः स्वैर्द्वीपैर्वा स्युर्ध्वजास्ते दशकरविमितेषूच्चवंशेषु बद्धाः ॥ ४० ॥ स्यादेकोऽतीव तुंगः शिखरमधिगतो दिक्करस्त्रिस्तदश्च नानावर्णैर्विचित्रोद्धुतासितवृषभेऽनांकितोऽय वरिष्ठः ॥ आशेषाभाद्रिहस्ताः स्वनगलवतता वांगुलैः पूर्णदृग्भिः श्वेता ब्राह्मी पताका भवति निजनिजैरायुधैरंकितास्ताः ॥ ४१ ॥ अथ दिगीशवाहनायुधवर्णानाह ॥ स्यादिंद्रः करिवाहनः कुलिशभृत्प्राच्यां पिशंगद्युतिस्त्वाग्नेय्यामजवाहनोऽग्निजरुचिः शक्त्या युतो हव्यवाट् ॥ याम्यां

दण्डकरो यमश्च महिषारूढोंऽजनाभस्तथा नैर्ऋत्यां करवालभृन्निर्ऋतिजः सिंहाधिरूढोऽसितः ॥ ४२ ॥ वारुण्यां झषगो हिमद्युतिरपां नाथश्च पाशान्वितो वायव्यां मृगवाहनोंऽकुशकरो वायुः शुकाभः स्मृतः ॥ कौबेर्य्यां नरवाहनो दिशि गदापाणिर्विचित्रस्तथा रौद्र्यां सद्वृषवाहनः शशिनिभः स्याच्छूलभृच्छंकरः ॥ ४३ ॥ हंसस्थोऽरुणकः कमंडलुकरः शक्रेशयोरंतरानंतोऽपांपातिरक्षसोर्वननिभस्ताक्ष्याधिरूढोऽरिभृत् ॥ शस्त्राण्यंकय वाहनानि च पटे स्वर्णादिधातुद्रवैर्यद्वा चंदनकुंकुमादिकरसैर्वा वस्त्रखंडैः शुभैः ॥ ४४ ॥ शतार्द्धहोमे च शता दशघ्ने ह्याकोटिके कुंडमितिक्रमेण ॥ रत्न्या त्वरत्न्या क्षितिबाहुवेदैस्तैः काष्ठहस्तैर्गदिता महद्भिः ॥ ४५ ॥ लक्षे च हस्तं प्रतिलक्षवृद्धया हस्तस्य वृद्धिः प्रयुतावधिः स्यात् ॥ कोटौ भवेद्दिङ्मितमुष्टिहस्तं तन्नारिकेलादिहुतौ तु कुण्डम् ॥ ४६ ॥ लक्षार्द्धहोमे त्रिकरं तु लक्षे हस्ताग्धिकं पंचकरं दशघ्ने ॥ लक्षे तु कामाकुशसंमिते षड्ढस्तं तथा कोटिदले द्विहस्तम् ॥ ४७ ॥ कैश्चिच्छतार्द्धे च शते शतघ्ने बाणे सहस्रेऽगुलिभिः क्रमेण ॥ नागे पतंगैर्नृपसंमितैश्च नखैर्हि कुंडानि समीरितानि ॥ ४८ ॥ तथायुते दिग्गुणितेऽर्बुदांते भूबाहुवेदांगगजैः प्रदिष्टम् ॥ उक्तं प्रमाणादधिकोनहोमे त्रैराशिकेनात्र फलं प्रकल्प्यम् ॥ ४९ ॥ खातेऽधिके रोग उदीरितश्च हीने क्षयो धेनुधनस्य कर्तुः ॥ भाने धियः स्यान्मृतिरल्पके च दैन्यं विनाशस्त्वगले सुतानाम् ॥ ५० ॥ वक्रे ज्वरोऽतीव विहीनवप्रे शोकोऽधिके चित्तविनाशनं स्यात् ॥ अयोनिके स्त्रीमरणं च कुंडे विनाभिके बंधुजनक्षयश्च ॥ ५१ ॥ स्याच्छिन्नवप्रे मरणं तथैव दिङ्मूढके स्वीयकुलस्य नाशः ॥ यथोक्तकुंडेन विना प्रसह्य होमो विधेयो न बुधैः कदापि ॥ ५२ ॥ स्तंभे शांतौ च सिद्धौ यशसि युगभुजो वक्रभूत्वेऽपि चैषां भोगे चाकर्षणे स्यात्तनयकरमथो वह्निकोणे भगार्थम् ॥ शांतौ मृत्यौ शुभे स्याद्दलितशशिनिभं दक्षिणेऽथ त्रिकोणं नैर्ऋत्यां

वैरिकृत्ये जलदिशि वलयं पुष्टिसंपच्च शांतिः ॥ ९३ ॥ षट्कोणं वायुकोणे मृतिशमनरिपूद्वाटयोरुद्धमाद्यैर्नानासिद्धिप्रदं तद्दिशिशुभसुभगं नीरजाभं कृतींद्रैः ॥ आरोग्ये योगसिद्धौ शिवदिशि च तथा सौख्यकार्येष्टकोणं शाक्रीशान्योस्तु मध्ये वलयमपि युगास्रं हि संपत्प्रदं स्यात् ॥ ९४ ॥ अत्यंतमुख्यो नवकुंडपक्षश्चेदत्र दक्षो न तदाखिलानि ॥ वृत्तानि वा वेदभुजानि तानि तथैव मध्यस्त्वषुकुंडपक्षः ॥ ९५ ॥ स्युर्मध्यमे दिक्षु युगोन्मितानि कुंडानि पूर्वं कथितानि यानि ॥ यत्पंचमं त्वीशदले विधेयं वेदास्रकं वा वलयं सुधीभिः ॥ ९६ ॥ यत्पंचमं शक्रशिवांतराले रामेण तन्नो बहुसंमतः स्यात् ॥ कनिष्ठपक्षे सकृदुत्तरस्यां रौद्र्यामपींद्र्यामथवा प्रतीच्याम् ॥ ९७ ॥ यैरंतरा कुंडमुदीरितं स्याद्वेदी तु रौद्र्यां यजनस्य हेतोः ॥ तद्धोममुख्ये विहितं प्रवीणैर्दानादिकृत्येन विभाति युक्तम् ॥ ९८ ॥ विप्रादिवर्णेषु चतुष्टयेषु कुंडानि मुख्यानि यथाक्रमेण ॥ वेदास्रवृत्तेंदुदलत्रिकोणान्यग्न्यास्रि सर्वेष्वपि वा विधेयम् ॥ ९९ ॥ स्त्रीणां क्वचिद्योनिनिभान्यथांतः समंततो वेदियुगांशमुज्झन् ॥ स्युर्मेखला कुंडवशात्पदं वा विश्वांगुलानीत्यपि वेदिभित्तेः ॥ ६० ॥ अथो यथा स्युर्बहुसंमितानि कुंडानि दोषैरिह वर्जितानि ॥ कुंडानि दोषैरसुखानि कर्तुं वाक्यानि वक्ष्ये तु मनोहराणि ॥ ६१ ॥ अभीष्टमानस्य पदं हि सूक्ष्मं स्पष्टो भुजोऽसौ चतुरस्रके स्यात् ॥ स एव हस्तः परिकल्पनीयः सांगेषु कुंडेषु निजांगुलाद्यैः ॥ ६२ ॥ मानेन तेनैव यथोक्तरीत्या समश्रवस्तुल्यचतुर्भुजं प्राक् ॥ सम्यग्विधायाथ भगादिकानां कर्त्तव्यतां वच्मि परिस्फुटां च ॥ ६३ ॥ संवर्ध्य पंचेंदुभुजांगुलाद्यैरग्रं च मूलेऽङ्घिलवस्य मध्यात् ॥ दिक्चिह्नयुग्म्यां वलयार्द्धकाभ्यामग्राब्जजाभ्यां चलपत्रकाभम् ॥ ६४ ॥ शक्राङ्घिवेदांगयुगांगुलाद्यैरग्रं पुरा न्यस्य नयेत्त्रिकोणम् ॥ षडंगुलव्यासदलेन मूले वृत्तार्द्धयुग्मेन भगोपमं

वा ॥ ६५ ॥ नंदाब्धिवेदांगयुगांगुलाद्यैर्वेध्यैंदुदक्चिह्नितमध्यसूत्रात् ॥ द्विघ्नैर्यमाशाधनुरेव तैस्तु ज्यकोत्तरं खंडसुधांशुखंडम् ॥ ६६ ॥ एकाधिविंशां ५ बरवह्निबाणैः पर्वादिभिर्व्यासदले सुदत्ते ॥ षड्विंश-रामांगभुजैस्त्रिसूत्रैः शक्राग्रकं त्र्यस्त्रि विवृत्तमुक्तम् ॥ ६७ ॥ विश्वा-ब्धिलोचनप्राणैरंगुलाद्यैर्मितस्य च ॥ कर्कटस्य भ्रमाद्वृत्तं कुंडं वरुण-दिग्गतम् ॥ ६८ ॥ शचीशशैलांबरशैलवेदव्यासार्द्धवृत्तेऽपि च तेन तुल्यैः ॥ षड्भिर्भुजैरुत्तरतः षडस्रं कुंडं भवेद्वृत्तविमार्जनेन ॥ ६९ ॥ धृतींदुशैलाग्निभिरंगुलाद्यैर्व्यासार्द्धवृत्ते यमसौम्यदिग्भ्याम् ॥ भुजैस्तु सांघ्रित्रियवोनदंतांगुलैः सुरम्यं रसकोटिकं वा ॥७०॥ कुंडानि सांगानि कृतानि पूर्वैः स्पष्टं तु केनाप्युदितं न पद्मम् ॥ तनोम्यहं तद्भुजकोटि-कर्णज्याचापबाणैर्गणितानुसारम् ॥ ७१ ॥ रामांगुलैः कर्कटकेन वृत्तं सा कर्णिका स्याद्द्वतुभिस्तु वृत्तम् ॥ स्युः केसराण्यष्टमितानि तस्मिन्न्हद्यानि वा षोडशसंमितानि ॥ ७२ ॥ सूर्यांगुलव्यासदलेन वृत्तं सैवोर्ध्वभूमिर्गदिता दलानाम् ॥ मन्वद्रिरामांबरसायकैर्यवदंगुलाद्यैश्च दलाग्रकाणि ॥ ७३ ॥ ज्यासूत्रकं चोर्ध्वभुवि प्रदद्यान्नवैकरामारिभिरंगु-लाद्यैः ॥ ज्यामध्यतः पद्मदलाग्रतस्तु बाणः प्रदेयोऽग्निरसेषुवेदैः ॥७४॥ कर्णौ शराध्यंगनगैर्मितैस्तैर्यौ कोटिकाभ्यां मिलितौ शरांत्रात् ॥ तयो-र्ज्यके सार्द्धयुगैः प्रकल्प्यो तन्मध्यबाणौ गगनाब्धिबाणैः ॥ ७५ ॥ बाणा-ग्रयोः पार्श्वधनुर्युगं स्याद्वेदेषु वेदांगुलपूर्वमानम् ॥ पद्मं मनोज्ञं त्वमुना विधेयं बुधैरथान्याकृतिकं प्रवच्मि ॥ ७६ ॥ पार्श्वश्रुती ५।६।६।७। वाथ गुणौ प्रकल्प्य तन्मध्यबाणौ गगनाब्धिवेदैः ॥ तयोर्मुखासक्तगतेऽ-थ चापे यवांघ्रियुक्तार्कमितांगुलैस्तैः ॥ ७७ ॥ प्रकारः ॥ बृहज्ज्याश्च तावब्धिपर्वाकनीया ४ ज्यकामध्यतः षड्यवैर्वाह्यमाणः ॥ धनुर्वेदरा-मैर्मितं स्याद्दणाख्ये फले कर्णशेषं १।७।६।७ लघुज्यां प्रकल्प्य ॥७८॥ यवाभ्यां शिरोभ्यंतरे चांकिते स्याद्यवार्द्धेन युग्द्वयंगुलं मध्य-

चापम् ॥ भवेदेवमन्यश्रुतौ सूक्ष्मदृष्ट्या विधेयो विधिस्तेन पत्रं मनोज्ञम् ॥ ७९ ॥ कृत्वा वृत्तं सदलधृतिभिः पर्वभिर्दिग्विदिक्षोरंतश्चांकान् कुरु कुरुगुणांस्ततुरीये तुरीये ॥ दृक्पद्मं तत्सुगममुदितं वास्तुशास्त्रेऽत्र तस्य क्षेत्रं वक्ष्ये दलविरचितां नेत्ररम्यं स्वबुद्ध्या ॥ ८० ॥ मध्यवृत्तं दशशशिभुजाश्चैर्द्वितीयं विलेख्यं तत्र ज्याष्टौ नगरसभुजेंद्वक्षिवह्न्यंगुलाद्याः पत्राणि स्युः पृथगिति मया प्रोच्यते पत्रकाग्रे चापद्वंद्वं सममुभयतस्तद्विलोमानुलोमम् ॥ ८१ ॥ दिग्घुताशनशरैर्मितांगुलाद्यैर्भ्रमः स च दलोर्ध्वधरिण्याम् ॥ ज्याष्टत्वपनयेगचैगदलाग्राणि खंडितसु-१६।४। निर्मितांगुलैः ॥ ८२ ॥ ये कोटिकाभ्यां मिलिते दलाग्रात्पार्श्वज्यके तेऽद्रिनगाद्रिदृग्भिः ॥ बाणैः ख० वेदाब्धिगुणैस्तु चापे द्व्यंगाद्रिरामाब्धिभिरंगुलाद्यैः ॥ ८३ ॥ भवांबरतुरंगमैर्वलयमंगुलाद्यैः कुरु ज्यकाष्टमथचांतरा करियुगांबरेंद्वग्निभिः ॥ मितानि भुजगैर्बहिर्विधुदलानि जीवार्द्धतः सरोजमिदमुत्तमं भवति नेत्ररम्यं स्फुटम् ॥८४॥ इदमपूर्वमिह कुशेशयद्वयमपीक्ष्य मुदंतु बुधाः सदा ॥ उपहसंत्वपरे कुधियः शरासनफलस्य विचार इहाभृशम् ॥ ८५ ॥ यैश्चापं सगुणं शिलीमुखयुतं नाभ्यस्तमुर्वीतले किं ते स्युर्यशभागिनोऽरिविषयं यास्यंति जेतुं बलात् ॥ तैर्लभ्यं कुटिलाकृतिक्षितिफलं सभ्येषु सभ्याः श्रियस्तेभ्यो दूरतरं प्रयान्ति कुजनास्त्रस्ता विरुद्धोत्सुकाः॥८६॥ मयेरितं दृग्रमणीयपद्मं विलोक्य तुष्यंतु बुधाः श्रमज्ञाः ॥ क्षेत्रार्णवं बाहुबलेन तीर्णास्त एव नूनं श्रमहारिणो मे ॥ ८७ ॥ प्रवक्ष्ये चतुःपत्रकं तत्र जीवा नृपाद्यंगपर्वादिकाश्चोर्ध्वभूमौ ॥ ज्यकामध्यतः पत्रकाग्रांतबाणो रसाग्न्यब्धिपर्वात्मकः कोटिरूपः ॥ ८८ ॥ दलाग्राच्छुती चापकोट्यग्रलग्ने हरि १० द्बाणबाह्वग्निपर्वादिके स्तः ॥ प्रकल्प्य ज्यकं ते च मध्यात्प्रदेयौ शरौ चंद्रगपर्वादिकौ च ॥ ८९ ॥ तयोरग्रतश्चापयुग्मं महेशां ११ गुलं जायते वेदपत्रं यथोक्तम् ॥ षडंशोनितां कर्णिकां

प्रोह्य खातं सरोजं स्मृतं सर्वमत्रोपदेशात् ॥ ९० ॥ विधाय पत्रं फलके यथोक्तं वास्यादिनातक्ष्य तदंतरालम् ॥ मानेन तेनैव दलानि कुर्यान्नो चेच्छ्रमेणापि फलं न चेष्टम् ॥ ९१ ॥ ईदृङ्मयाष्टौ समुदीरितानि दलानि चत्वारि मनोहराणि ॥ पृथक्पृथक्क्षेत्रफलानि तेषामतीव सूक्ष्माणि विचिंत्य यत्नात् ॥ ९२ ॥ कुंडसिद्धौ चाब्जपत्रे धनुःक्षेत्रं न वास्तवम् ॥ ९३ ॥ शक्राक्षिभूवह्निभिरंगुलाद्यैर्व्यासार्द्धमानेन वलयेष्टदिक्षु ॥ दिक्स्रौ लवद्ध्यग्रयुगांगुलाद्यैः सूत्रैर्गजास्रं वलयाहते स्यात् ॥ ९४ ॥ यद्वा पञ्चदशांशुगानलयुगैः पर्वादिभिर्मंडलं कृत्वा दिग्विदिगंतरांकितमथो लक्ष्मैकमेकं त्यजेत् ॥ वेदास्रद्वयमालिखेत्सममथो सव्येष्टदोःकृत्तथा वृत्तं प्रोह्य मयाष्टकोणकमिदं तुष्ट्यै सतां सत्कृतम् ॥ ९५ ॥ तिथियुगयुगनेत्रैर्व्यासखंडेन वृत्तं धृतिभुजगुणचंद्रांशैर्भुजैरंगुलाद्यैः ॥ शतमखदिशि कोणः स्याद्यथा पंचकोणं विवलयमपहन्याच्छाकिनीभूतबाधाम् ॥ ९६ ॥ विधाय वृत्तं मनुवेदखांगैस्तत्रार्कवेदाक्षरसैर्नगास्रम् ॥ प्राक्चिह्नतः सप्तगुणं हि कुंडं वृत्तं विना स्यादभिचारशांतौ ॥ ९७ ॥ सर्वेषु कुंडेषु चतुर्भुजस्य विस्तारतुल्यं खननं वदंति ॥ यदाद्ययया मेखलया सहोक्तं तदल्पहोमे परिचिंतनयिम् ॥ ९८ ॥ वेधो नेष्टो देवपंकाध्ववृक्षशाखाकोणस्तंभकूपभ्रमाणाम् ॥ द्विघ्नोन्नत्या तुल्यभूर्वायथवाकुंड्यादि स्यादंतरा चेन्न दोषः ॥ ९९ ॥ कुंडाद्बहिः पर्वमितोऽत्र कण्ठः परैर्द्विपर्वा परितस्तु तिस्रः ॥ स्युर्मेखला गोक्षयमांगुलैस्तास्तुंगास्ततोऽंघ्रित्रियमैः क्रमेण ॥ १०० ॥ नो संमता गोंगगुणैस्तु तुंगाः परे पतंगाष्टयुगैः क्रमेण ॥ ततो युगैरंगुलिभिस्तु तिस्रः सर्वार्थदाः सत्वरजस्तमोंकाः ॥ ॥ १०१ ॥ षट्समीरणयुगाग्निलोचनैरंगुलैर्हि वितताास्तथोन्नताः ॥ पञ्चकैश्चिदुदिता दलाद्बहिः कुंडरूपसदृशा हि मेखलाः ॥ २ ॥ केचिदत्र जगदुर्नवांगुलप्रोन्नतां प्रथममेखलां पराः ॥ पूर्वं पञ्चमलवोनितो

न्नताः पूर्ववृद्धिवितता भवंति ताः ॥ ३ ॥ वेदविष्णुपदविक्रमांगुलैरुन्नते च वितते द्विमेखले ॥ तंत्रविद्भिरुदिते रसां ६ गुलैर्वा युगांगुलिभिरेकमेखला ॥४॥ कुण्डमुत्तममुदीरितं बुधैरग्निमेखलमथ द्विमेखलम् ॥ मध्यमं त्वधममेखलैककं ब्राह्मणादिषु हितं परैः क्रमात् ॥ ५ ॥ अथ योनिमाह ॥ दीर्घा सूर्यमितांगुला च वितता योनिः किलाष्टांगुला तुंगा स्यात्सकृदंगुला परिधिना तावन्मितेनावृता ॥ गर्तांता मुकुरोदराकृतिदलाभ्यां युक्तमूले नता कुण्डेकांगुलकोटिका क्वचिदिनैस्तुंगापरैर्द्व्यंगुला ॥६॥ दिग्भिर्व्यंग्निभिरंगुलीभिरुदितं योनेस्तु मूलं ततं तस्यार्द्धेन चरद्युगास्त्रयुगलं तस्मिन्हि तुल्यश्रवम् ॥ वृत्तार्द्धद्वयमालिखेच्छ्रवणयोः संपातचिह्नाद्बहिश्चाग्राद्युग्मगुणात्सुबोधिदलवत्कुण्डोत्तमांगं भवेत् ॥ ७ ॥ यद्वा पंचयवान्वितैर्मूलं ततं चांगुलैस्तस्यार्द्धार्द्ध मितेन वृत्तशकलद्वंद्वं बहिर्भ्रामयेत् ॥ अग्रात्सूत्रयुगाद्गजोष्ठसदृशी वा योनिकुंडोक्तवत्क्षेत्रादंगनवांगुला बुधजनैः साध्या मनोज्ञा भवेत् ॥ ८ ॥ यस्यायतिः पंचदशांगुला च दिगंगुला विस्तृतिसंमितिश्च ॥ विश्वांगुला कैश्चिदुदीरिता सा योनिर्मतार्कांगुलमेखलायाम् ॥ ९ ॥ यूकाद्वयोनद्वियवप्रसूर्यांगुलैस्ततां मूलमितिं विधाय ॥ पूर्वोक्तवद्बोधदलाकृतिः सा योनिः पतंगांगुलमेखलायाम् ॥ ११० ॥ दलाब्धशक्रांगुलसंमितं वा मूलं विधायानुचरेद्गजोष्ठीम् ॥ साप्यर्कतुल्यांगुलमेखलायां कुंडोक्तवत्सार्द्धशतांगुलाद्वा ॥ ११ ॥ पूर्वैर्ना लोकिता या सा योनिः संसाधिता मया ॥ बुद्धिमद्भिर्विलोक्यं तत्तस्यां यज्जायते फलम् ॥ १२ ॥ प्राग्यमाचार्यकुंडानामाग्नेयस्या भगस्य च ॥ योनिर्दक्षिणतस्तेषां पंचान्येषां तु पश्चिमे ॥ १३ ॥ समुद्रांगुलीमूलमेकांगुलाग्रं तलाद्योनिमध्यांतमंतं सरंध्रम् ॥ समूर्तिपडयुग्मं जगुर्नालमेके तथा नो शुभं कुंडमेके वरांगम् ॥ १४ ॥ कुंडांतराभिनिहिता सरसीरुहत्वाभावा स्वकुंडसदृशा ततिरायतिश्च ॥ वेदांगु-

ला निजदलोन्नतिरब्जजे नो नाभिर्न योनिरुदिता किल योनिकुंडे ॥ १५ ॥ वेदास्रं बाणमात्रं करमितमथवा रत्निमात्रश्रुतिभ्यां तुल्यं तुंगं मतंगैरिषुभिरपि युगैर्वांगुलैर्वांगुलेन ॥ सूक्ष्माभिर्वालुकाभिर्गदितमरुणमृच्चूर्णकैरल्पहोमे कुंडाभावे च नित्येऽल्पविततिविधुदिशि स्थंडिलं प्राक्प्लवं वा ॥ १६ ॥ हेम्नः सुकुंभा रजतोद्भवा वा ताम्रोद्भवा वा यदि मृन्मया वा ॥ दृढाः सुपक्काः स्वसितांकरंध्रैर्हीनाश्च रक्ता निजलक्षणाढ्याः ॥ १७ ॥ मूले पतंगैश्च मुखे मतंगैस्त्वौच्चे नृपैः पुष्करकेऽक्षचंद्रैः ॥ तुल्यांगुलैर्ये कलशाः समाः स्युस्त एव सर्वेषु शुभेषु योज्याः ॥ १८ ॥ कुंभद्वंद्वं साकरं सर्वदिक्षु स्थाप्यं रत्नैः पल्लवैः सप्तधान्यैः ॥ पुष्पस्रग्भिर्दिव्यगंधौषधीभिर्वस्त्रेणाढ्यं स्वर्णगर्भं सुधीभिः ॥ १९ ॥ हेरंबांबापूजनेऽभीष्टवेद्यां तुल्यास्रायां कर्णसूत्रे प्रदेये ॥ तत्संपाताद्वायुसूत्रे च भद्रं यूकान्यूनैः सार्द्धरुद्रांगुलैः स्यात् ॥ १२० ॥ मध्याद्रौद्र्यां यूकया हीनरुद्रैः सार्द्धैः ११ । ३ । ७ खेटं वह्निसूत्रेंऽगुलाद्यैः ॥ हैरंबाख्यं पाणिजाक्षेंदुभिश्च २० । ५ । १ कुंडं नैर्ऋत्यां च धृत्यब्धिचंद्रैः ॥ २१ ॥ पंचत्रिंशद्वर्गगैरंगुलाद्यैः केंद्राण्येवं कर्णसंपाततः स्युः ॥ क्षेत्रं ग्राह्यं भद्रपीठे द्विहस्तं तद्वत्पीठं खेचराणां विदध्यात् ॥ २२ ॥ हैरंबं स्याद्रत्निमात्रं युगास्राण्याहुः सर्वाण्यर्कपर्वोन्नतानि ॥ कूर्मपृष्ठान्युत्तमं हस्तमात्रं कुंडं कार्यं स्थंडिलं वा यथोक्तम् ॥ २३ ॥ विप्रादीनां भिन्नभिन्नानि कुंडान्याहुः पूर्वं खेटपक्षप्रसंगात् ॥ तस्मात्तेषां खेटपीठादिकानां केंद्राण्येवं भिन्नभिन्नानि च स्युः ॥ २४ ॥ पिंडै २८ र्विप्राणां च भैः २७ क्षत्रियाणां षड्विंशद्भिस्ताद्विशामंघ्रिजानाम् ॥ तत्त्वैः २५ कुंडे कुंडखेटांतरं यत्रिंशद्भिः स्यात्पर्वभिः सर्वतोऽत्र ॥ २५ ॥ षड्त्रिंशत्सत्येंदुवेदैर्द्विजानां षड्त्रिंशद्वेदाग्निभिरेव क्षेत्रे ॥ षड्विंशभूवेदगुणैर्विंशां च पंचत्रिंशत्तर्कपंचेषुवेदैः ॥ २६ ॥ शूद्राणां तान्यंगुलाद्ये-

स्वर्केंद्राण्यंकान्येवं वेदिमध्याद्विदिक्षु ॥ तेभ्यः पीठान्युक्तवच्चापि कुंडं कैश्चिद्वैरं बंधनैः २७ पीठमुक्तम् ॥ २७ ॥ भूमिवेदनवषोडशे करे यमाग्नियुगसंगुणा जिनाः ॥ संभवंति हि भुजाः क्रमेण ते पर्वभिः समयुगास्त्रिकुंडके ॥ २८ ॥ सुराः पर्वताः सागरा भूनगाः स्युर्द्विहस्ते शशांकाब्धयो ४१ बूनि वेदाः ॥ गुणाः पंच वेदास्त्रिहस्ते त्रिबाणाः शरा द्विः कृताः पंचके षड्युगानि ॥ २९ ॥ गजाक्षारसाद्वैगुणाद्वौ रसाः षट् करे वह्नितर्का गुणाः सप्त सप्त ॥ स्मृताः सप्त हस्ते बृहस्तेऽद्रितर्का नगाः खं गुणाः सायकास्तर्कतुल्याः ॥ १३० ॥ करे दिङ्मिते रामपृथ्वीधरा द्वौ शराः सायका द्वौ गुणाः पर्व पूर्वाः ॥ भुजाः सूक्ष्ममूलाः स्मृताः क्षेत्रसिद्ध्यै युगास्त्राणि तुल्यानि तैश्चोत्तमानि ॥ ३१ ॥ आसीत्कश्यपवंशजः क्षितितले श्रीमानुदीच्याग्रणीर्गोविंदः श्रुतिवित्तदात्मज इहाभूद्व्यासनारायणः ॥ तत्सूनुर्निगमक्रियासु निपुणः कूकाभिधस्तत्सुतः शुक्लो माधवसंज्ञको रचितवाञ्छ्रीकुंडकल्पद्रुमम् ॥ ३२ ॥ भ्रांता भृशं ये गणिताटवीषु फलाशया दिग्विकलाश्च तेषाम् ॥ कृते सुखेनेष्टफलः शिवाग्रे तापीपुरे रोपि सुकल्पवृक्षः ॥ ३३ ॥ संवर्द्धितो यः कृपया शिवेन फलप्रदोऽसावपि बालकानाम् ॥ शिवः प्रसन्नो भवतीह येषां तेषां फलाप्तिर्न हि संशयोऽत्र ॥ ३४ ॥ रविधन १७१२ मितवर्षे विक्रमार्के प्रयाते नगनगतिथितुल्ये १५७७ शाककाले प्रवृत्ते ॥ शरदि मनुजमाने मन्मथे चैषशुक्ले फणितिथियुतचंद्रे कुंडकल्पद्रुमोऽभूत् ॥ १३५ ॥

इति कुंडकल्पद्रुमः समाप्तः ॥ १६ ॥

अथ कुंडरचनाख्यो ग्रंथः १७।

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीर्जयतु ॥ चतुरस्रसाधनमाह ॥ सूत्रे प्राचीश्लोकः ॥ १ ॥ प्राक्सूत्रांतद्वयात्सूत्रमध्यं किंचित्कर्कटादिना पार्श्वद्वये

वृत्तार्द्धद्वयभ्रमान्मत्स्यद्वयं स्यात्तत्र तिर्यक्सूत्रं प्राक्सूत्रतुल्यं दद्यात ॥ प्रागुदक्सूत्रद्वयसंपातान्मध्यादि इष्टचतुरस्रव्यासार्द्धमानेन सूत्रेण कर्कटेन वा चतुर्दिक्षु चिह्नचतुष्टयं कुर्यात् प्राग्दक्षिणचिह्नस्थसूत्रेण कर्कटेन चाग्नेय्यां मत्स्यं कुर्यात् ॥ दक्षिणप्रतीचीचिह्नस्थेन नैर्ऋत्याम् ॥ प्रत्यगुदक्चिह्नस्थेन वायव्याम् ॥ प्रागुदक्स्थैनैशान्याम् ॥ एवं मत्स्यचतुष्टयं संपाद्य तन्मध्यैपतितसूत्रचतुष्टयेन समचतुरस्रं स्यात् ॥ अथ योनिकुंडमाह ॥ अष्टोनद्विशतिः ॥ तस्यार्थः ॥ चतुःकोणस्य मध्यसूत्रम् अष्टोनद्विशतांशं १९२ तया पुरस्तात् तावत्प्रमाणाः अष्टत्रिं ३८ शत् भागाः देयाः इमान् लवान् अर्द्धशः १९ अर्द्धशः १९ श्रोण्योः एधयंतु एकोनविंशतिभागाः श्रोण्योः प्रत्येकं दक्षिणोत्तरं वर्द्धनीया इत्यर्थः । श्रोण्योः अग्रपर्यंतसूत्रद्वये स्थितं त्रिकोणं भवति ॥ मध्यदक्षिणश्रोण्योरर्द्धं कृत्वा बहिर्वृत्तार्द्धं भ्रामयेत्- एवमुत्तरतोऽपि ॥ इति योनिकुंडं भवति ॥ अर्द्धचंद्रकुंडमाह ॥ चतुःकोणक्षेत्रे ॥ अस्यार्थः ॥ चतुःकोणक्षेत्रस्य मध्यास्थितगुणस्य जिनलवान् २४ कृत्वा अधः सार्द्धभागद्वयं विहाय शक्ता उपरि चांशस्य कलांशेन षोडशांशेन ऊनसार्द्धभागद्वयं त्यक्त्वा उपरि चिह्नोपरि तिर्यग्दक्षिणोत्तरं ज्यासूत्रं दत्त्वा उभयचिह्नमानरज्ज्वाऽधिचिह्नात् वृत्तार्द्धभ्रमणात् शशिदली- अर्द्धचंद्रकुंडं भवति ॥ क्षेत्रस्य मध्यमगुणो ॥ अस्यार्थः ॥ क्षेत्रस्य मध्यमगुणजिन २४ भागैर्विभज्य तावतः शरलवान् पंचभागान् श्रोण्योः पृथक् पृथक् परिवर्ध्य एकभागस्याष्टमलवेन विनाष्टभागोनान् दश भागान् संवर्ध्य प्रयुक्तैः पातितैः त्रिभिः सूत्रैः त्र्यस्रिकुंडं भवति ॥ षोडशधा कृतमध्यसूत्रम् ॥ अस्यार्थः ॥ चतुरस्रक्षेत्रस्य मध्यसूत्रं षोडशधा विभज्य पुरत एकं भागं परिवर्ध्य तत्र चिह्नं कृत्वा मध्यचिह्नस्थया रज्ज्वा वर्द्धितचिह्नमर्यादं च परितो भ्रमणेन मंडलकुंडं वृत्तकुंडं भवति ॥ अष्टोनद्विशतं

षडस्त्रीरितं ॥ अस्यार्थः॥ क्षेत्रस्यांतरगुणे मध्यसूत्रे द्विनवत्याधिकशतांशे कृते सति तिर्यग्दक्षिणोत्तरस्थितं यत् सूत्रं तस्योभयतः भवर्द्धेनेन २७ सप्तविंशता शेषं झषैर्मत्स्यैश्चिह्नयेत् मत्स्यानिष्पत्तिश्चैवं दक्षिणपारेऽधिरेखायां तिर्यक् सूत्रस्य यत्र संपातस्तत उपर्यधश्च पंचविंश २५ त्यंशैः चिह्नद्वयं कृत्वा सप्तविंश २७ त्यंशमितेन सप्तविंशंत्यंशान् पंचविंशत्यंशमितेन पंचविंशत्यंशचिह्नांत उपर्यधश्च मत्स्यद्वयं कुर्यात ॥ एवमुत्तरतश्च कुर्याच्च ततः पुरोऽथ परतः पूर्वपाश्चिमम् अंकद्व्यंशवृद्धौ न विंशत्यंशवृद्धौ झषद्वंद्वात् मत्स्यद्वयात् दक्षिणोत्तरपश्चात् ॥ भागस्थात् मत्स्यद्वयात् पश्चिमतो वर्धितचिह्नमर्यादं सूत्रं दद्यात्ततस्तिम्योर्मत्स्ययोः पार्श्वद्वयेऽपि गुणतः षडस्त्रि कुण्डमीरितमुक्तम् ॥ पद्मकुंडमाह ॥ क्षेत्रेऽतचतुरस्त्रके वर्ध्यचलाग्रकाणि ॥ अस्यार्थः ॥ चतुरस्त्रक्षेत्रविस्तारस्य वस्वंशेनाष्टांशेन व्यासार्द्धेन मध्यात् ॥ तं वृत्तं कर्णिका पुनरन्याष्टमांशवृद्ध्या भ्रमणेनोन्नतं वृत्तं केसराः पुनरष्टमांशवृद्ध्या कृतं वृत्तं दलानां मध्यभूः पुनरष्टमांशवृद्ध्याकृतं वृत्तं दलानामुपरि भूः क्षेत्रविस्तारस्य जिनांशकस्य चतुर्विंशस्य विशिखैः पञ्चभिः कलांशैः षोडशांशैः ऊनं न्यूनं पुनरष्टमांशं संवर्द्धय कृतं वृत्तं दलाग्रभूमिः ॥ दलाग्राणि तथा कुर्याद्यथा क्षेत्रार्द्धं वहिस्त्यजेत् अन्यथा इयता द्विघ्नेन द्विगुणेन त्रिशल्लवविस्तारं वृत्तं स्यात् ॥ स्वविस्तारतुल्योन्नतां कर्णिकां विहाय खनेत् इदं च अष्टदलं चतुर्दलं वा स्यात् ॥ अष्टास्त्रिकुण्डमाह ॥ क्षेत्रव्यासजिनांशकेषु चतुरः दिक्सूत्रयुग्मम् ॥ अस्यार्थः ॥ क्षेत्रविस्तारचतुर्विंशांशेषु एकस्य रदांशैः द्वात्रिंशांशैर्गुणेंदुभिः त्रयोदशभागैः साकं समं बहिः संवर्द्धय एतद्वितत्यां एतद्विस्तारेण अन्यतः वेदास्त्रि चतुरस्त्रम् उदारादिक्गुणयुतम् उदारदिक्सूत्रयुतं वहेत् कुर्यात् दिक्कोणयोर्मध्येऽष्टचिह्नानि कृत्वा तेषु तृतीयचिह्नमिलितैरष्टगुणैः अष्टास्त्रिकुण्डं भवति ॥ दि-

क्सूत्रयुग्मम् आद्यं चतुरस्रयुग्मं तदशेषं परिमार्ज्यम् ॥ अष्टसूत्र्या संपाततः अंतरगतं मध्यगतरेखाष्टकमपनयेत् मार्जयेदिति कुंडस्वरूपं भवति ॥ पंचास्रिकुंडमाह ॥ क्षेत्रव्यासदलेऽर्कांः ॥ अस्यार्थः ॥ क्षेत्रविस्तारस्य दलद्वयं कृत्वा एकदलस्यार्कभागान्द्वादश भागान् कृत्वा तत्रांकानां नवभागानां विंशति २० भागेन सहितांस्त्रीन् ३ भागान् संवर्द्ध्य तावता व्यासार्द्धेन मंडलं वृत्तं साधयेत् वृत्तं पंचधा कृत्वांशद्वयम् ऊनं न्यूनं विहाय तद्विस्तारमितया रज्ज्वा पंचज्याः आवहेत् ज्यायाः षष्ठांशेन शरं विधाय पंचधन्वा निगमयेत् ॥ तानि च मार्जयेत् ॥ ज्यैव रक्षेति पंचास्रिकुंडम् ॥ सप्तास्रिकुंडमाह ॥ क्षेत्रव्यासदलेंऽगराम ॥ अस्यार्थः ॥ चतुरस्रक्षेत्रविस्तारस्य दलेऽर्द्धे अंगं ३६ शमलवजुषि षड्विंशद्धा कृते अश्वांशवृद्ध्या षट्त्रिंशद्भागमध्यपतितसप्त ७ भागवृद्ध्या युक्तेन विस्तारार्द्धेन वलयं वृत्तं भ्रमयेत् वृत्तविस्तरस्य विंशति २० तमो भागः येषु धनुष्षु विशिखः शरः स्यात् तादृशानि सप्त चापानि धनूंषि मिथो मिलद्गुणमुखानि परस्परसंलग्नगुणाग्रकाणि नवगुंणितशरसूत्रमितया ज्यया युक्तानि सप्तास्रिकुंडे आवहेत् कुर्यात् सप्तास्रिकुंडं भवति ९ दशहस्तांतं करण्योर्लिख्यते करणीशब्दवाच्यं तत्तदायामसूत्रं तस्यैव नामांतरं मध्यसूत्रमिति एकसप्तदशोनचतुस्त्रिंशत् द्विहस्तके एतेनांगुलानि ३३ यव १ यूकश्चलिक्षा २ द्विहस्तकरणी ॥ एकाष्टाविंशतिशतात् त्रिसप्तत्याथ संयुताः एकचत्वारिंशदंगुलयस्तु स्युस्त्रिहस्तके एतेनांगुलानि ४१ यव ४ यूका ४ लिक्षा ४ त्रिहस्तकरणी ॥ अष्टचत्वारिंशता स्यात् चतुर्हस्ते करण्यथ ४८॥ अथ तृतीयांशन्यूनचतुःपंचाशत्पंचहस्तके एतेनांगुलानि ५३ यवाः ५ यूका २ लिक्षा ४ पंचहस्तकरणी ॥ चतुरेकोनविंशोनोनषष्टिस्तदुत्तरे एतेनांगुलानि ५८ यव ६ यूका २ लिक्षा ४ षड्हस्तकरणी सप्तहस्तेऽर्द्धयुता त्रिषष्टिः करणी मता ताः सप्तदशांशाभ्यां वसुषट्

न्नताः पूर्ववृद्धिवितता भवंति ताः ॥ ३ ॥ वेदविष्णुपदविक्रमांगुलैरुन्नते च वितते द्विमेखले ॥ तंत्रविद्भिरुदिते रसां ६ गुलैर्वा युगांगुलिभिरेकमेखला ॥४॥ कुण्डमुत्तममुदीरितं बुधैरग्निमेखलमथ द्विमेखलम् ॥ मध्यमं त्वधममेखलैकक ब्राह्मणादिषु हितं परैः क्रमात् ॥ ५ ॥ अथ योनिमाह ॥ दीर्घा सूर्यमितांगुला च वितता योनिः किलाष्टांगुला तुंगा स्यात्सकृदंगुला परिधिना तावन्मितेनावृता ॥ गर्तांता मुकुरोदराकृतिदलाभ्यां युक्तमूले नता कुण्डैकांगुलकोटिका क्वचिदिनैस्तुंगापरैद्व्यंगुला ॥ ६ ॥ दिग्भिर्व्यग्निभिरंगुलीभिरुदितं योनेस्तु मूलं ततं तस्याद्धेन चरद्युगास्त्रयुगलं तस्मिन्हि तुल्यश्रवम् ॥ वृत्तार्द्धद्वयमालिखेच्छ्वणयोः संपातचिह्नाद्बहिश्चाग्राद्युग्मगुणात्सुबोधिदलवत्कुण्डोत्तमांगं भवेत् ॥ ७ ॥ यद्वा पंचयवान्वितैर्मूलं ततं चांगुलैस्तस्याद्धार्द्धं मितेन वृत्तशकलद्वंद्वं बहिर्भ्रामयेत् ॥ अग्रात्सूत्रयुगाद्गजोष्ठसदृशी वा योनिकुंडोक्तवत्क्षेत्रादंगनवांगुला बुधजनैः साध्या मनोज्ञा भवेत् ॥ ८ ॥ यस्यायतिः पंचदशांगुला च दिगंगुला विस्तृतिसंमितिश्च ॥ विश्वांगुलैश्चिदुदीरिता सा योनिर्मताकांगुलमेखलायाम् ॥ ९ ॥ यूकाद्वयोनद्वियवप्रसूर्यांगुलैस्ततां मूलमितिं विधाय ॥ पूर्वोक्तवद्बोधदलाकृतिः सा योनिः पतंगांगुलमेखलायाम् ॥ ११० ॥ दलाब्धशक्रांगुलसंमितं वा मूलं विधायानुचरेद्गजोष्ठीम् ॥ साप्यर्कतुल्यांगुलमेखलायां कुंडोक्तवत्सार्द्धशतांगुलाद्वा ॥ ११ ॥ पूर्वैर्ना लोकिता या सा योनिः संसाधिता मया ॥ बुद्धिमद्भिर्विलोक्यं तत्तस्यां यज्जायते फलम् ॥ १२ ॥ प्राग्यमाचार्यकुंडानामाग्नेयस्या भगस्य च ॥ योनिर्दक्षिणतस्तेषां पंचान्येषां तु पश्चिमे ॥ १३ ॥ समुद्रांगुलीमूलमेकांगुलाग्रं तलाद्योनिमध्यांतमंतं सरंध्रम् ॥ समूतिंपडयुग्मं जगुर्नालमेके तथा नो शुभं कुंडमेके वरांगम् ॥ १४ ॥ कुंडांतराभिनिहिता सरसीरुहत्वाभावा स्वकुंडसदृशा ततिरायतिश्च ॥ वेदांगु-

ला निजदलोन्नतिरब्जजे नो नाभिर्न योनिरुदिता किल योनिकुंडे ॥ १५ ॥ वेदास्त्रं बाणमात्रं करमितमथवा रत्निमात्रश्रुतिभ्यां तुल्यं तुंगं मतंगैरिषुभिरपि युगैर्वांगुलैर्वांगुलेन ॥ सूक्ष्माभिर्वालुकाभिर्गदितमरुणमृच्चूर्णकैरल्पहोमे कुंडाभावे च नित्येऽल्पवितातिविधुदिशि स्थंडिलं प्राक्प्लवं वा ॥ १६ ॥ हेम्नः सुकुंभा रजतोद्भवा वा ताम्रोद्भवा वा यदि मृन्मया वा ॥ दृढाः सुपक्काः स्वसितांकरंध्रैर्हीनाश्च रक्ता निजलक्षणाढ्याः ॥ १७ ॥ मूले पतंगैश्च मुखे मतंगैस्त्वौच्चे नृपैः पुष्करकेऽक्षचंद्रैः ॥ तुल्यांगुलैर्ये कलशाः समाः स्युस्त एव सर्वेषु शुभेषु योज्याः ॥ १८ ॥ कुंभद्वंद्वं साकरं सर्वदिक्षु स्थाप्यं रत्नैः पल्लवैः सप्तधान्यैः ॥ पुष्पस्रग्भिर्दिव्यगंधौषधीभिर्वस्त्रेणाढ्यं स्वर्णगर्भं सुधीभिः ॥ १९ ॥ हेरंबांबापूजनेऽभीष्टवेद्यां तुल्यास्रायां कर्णसूत्रे प्रदेये ॥ तत्संपाताद्वायुसूत्रे च भद्रं यूकान्यूनैः सार्द्धरुद्रांगुलैः स्यात् ॥ १२० ॥ मध्याद्रौद्र्यां यूकया हीनरुद्रैः सार्द्धैः ११ । ३ । ७ खेटं वह्निसूत्रेऽगुलाद्यैः ॥ हेरंबाख्यं पाणिजाक्षेंदुभिश्च २० । ५ । १ कुंडं नैरृत्यां च धृत्यब्धिचंद्रैः ॥ २१ ॥ पंचत्रिंशद्वर्गगैरंगुलाद्यैः केंद्राण्येवं कर्णसंपाततः स्युः ॥ क्षेत्रं ग्राह्यं भद्रपीठे द्विहस्तं तद्वत्पीठं खेचराणां विदध्यात् ॥ २२ ॥ हेरंबं स्याद्रत्निमात्रं युगास्राण्याहुः सर्वाण्यर्कपर्वोन्नतानि ॥ कूर्मपृष्ठान्युत्तमं हस्तमात्रं कुंडं कार्यं स्थंडिलं वा यथोक्तम् ॥ २३ ॥ विप्रादीनां भिन्नभिन्नानि कुंडान्याहुः पूर्वं खेटपक्षप्रसंगात् ॥ तस्मात्तेषां खेटपीठादिकानां केंद्राण्येवं भिन्नभिन्नानि च स्युः ॥ २४ ॥ पिंडै २८ र्विप्राणां च भैः २७ क्षत्रियाणां षड्विंशद्भिस्ताद्विशामंघ्रिजानाम् ॥ तत्त्वैः २५ कुंडे कुंडखेटांतरं यत्रिंशद्भिः स्यात्पर्वभिः सर्वतोऽत्र ॥ २५ ॥ षड्त्रिंशत्सत्येंदुवेदैर्द्विजानां षड्त्रिंशद्वेदाग्निभिरेव क्षेत्रे ॥ षड्विंशभूवेदगुणैर्विंशां च पंचत्रिंशत्तर्कपंचेषुवेदैः ॥ २६ ॥ शूद्राणां तान्यंगुलाद्ये-

स्वकेंद्राण्यंकान्येवं वेदिमध्याद्विदिक्षु ॥ तेभ्यः पीठान्युक्तवच्चापि कुंडं कैश्चिद्वेरं बंधनैः २७ पीठमुक्तम् ॥ २७ ॥ भूमिवेदनवषोडशे करे भूयमाग्नियुगसंगुणा जिनाः ॥ संभवंति हि भुजाः क्रमेण ते पर्वभिः समयुगास्त्रिकुंडके ॥ २८ ॥ सुराः पर्वताः सागरा भूनगाः स्युर्द्विहस्ते शशांकान्धयों ४१ बूनि वेदाः ॥ गुणाः पंच वेदास्त्रिहस्ते त्रिबाणाः शरा द्विः कृताः पंचके षड्युगानि ॥ २९ ॥ गजाक्षारसाद्वैगुणाद्वौ रसाः षट् करे वह्नितर्का गुणाः सप्त सप्त ॥ स्मृताः सप्त हस्ते बृहस्तेऽद्रि-तर्का नगाः खं गुणाः सायकास्तर्कतुल्याः ॥ १३० ॥ करे दिङ्मिते रामपृथ्वीधरा द्वौ शराः सायका द्वौ गुणाः पर्व पूर्वाः ॥ भुजाः सूक्ष्म-मूलाः स्मृताः क्षेत्रसिद्ध्यै युगास्त्राणि तुल्यानि तैश्चोत्तमानि ॥ ३१ ॥ आसीत्कश्यपवंशजः क्षितितले श्रीमानुदीच्याग्रणीर्गोविंदः श्रुतिवित्त-दात्मज इहाभूद्व्यासनारायणः ॥ तत्सूनुर्निगमाक्रियासु निपुणः कूका-भिधस्तत्सुतः शुक्लो माधवसंज्ञको रचितवाञ्छ्रीकुंडकल्पद्रुमम् ॥ ३२ ॥ भ्रांता भृशं ये गणिताटवीषु फलाशया दिग्विकलाश्च तेषाम् ॥ कृते सुखेनेष्टफलः शिवाग्रे तापीपुरे रोपि सुकल्पवृक्षः ॥ ३३ ॥ संवर्द्धितो यः कृपया शिवेन फलप्रदोऽसावपि बालकानाम् ॥ शिवः प्रसन्नो भवतीह येषां तेषां फलाप्तिर्न हि संशयोऽत्र ॥ ३४ ॥ रविधन १७१२ मितवर्षे विक्रमार्के प्रयाते नगनगतिथितुल्ये १५७७ शाककाले प्रवृत्ते ॥ शरदि मनुजमाने मन्मथे चैषशुक्ले फणितिथियुत-चंद्रे कुंडकल्पद्रुमोऽभूत् ॥ १३५ ॥

इति कुंडकल्पद्रुमः समाप्तः ॥ १६ ॥

अथ कुंडरचनाख्यो ग्रंथः १७ ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीर्जयतु ॥ चतुरस्रसाधनमाह ॥ सूत्रे प्राची-श्लोकः ॥ १ ॥ प्राक्सूत्रांतद्वयात्सूत्रमध्यं किंचित्कर्कटादिना पार्श्वद्वये

वृत्तार्द्धद्वयभ्रमान्मत्स्यद्वयं स्यात्तत्र तिर्यक्सूत्रं प्राक्सूत्रतुल्यं दद्यात ॥ प्रागुदक्सूत्रद्वयसंपातान्मध्यादि इष्टचतुरस्रव्यासार्द्धमानेन सूत्रेण कर्कटेन वा चतुर्दिक्षु चिह्नचतुष्टयं कुर्यात् प्राग्दक्षिणचिह्नस्थसूत्रेण कर्कटेन चाग्नेय्यां मत्स्यं कुर्यात् ॥ दक्षिणप्रतीचीचिह्नस्थेन नैर्ऋत्याम् ॥ प्रत्यगुदक्चिह्नस्थेन वायव्याम् ॥ प्रागुदक्स्थेनैशान्याम् ॥ एवं मत्स्यचतुष्टयं संपाद्य तन्मध्येपतितसूत्रचतुष्टयेन समचतुरस्रं स्यात ॥ अथ योनिकुंडमाह ॥ अष्टोनद्विशतिः ॥ तस्यार्थः ॥ चतुःकोणस्य मध्यसूत्रम् अष्टोनद्विशतांशं १९२ तया पुरस्तात् तावत्प्रमाणाः अष्टत्रिं ३८ शत् भागाः देयाः इमान् लवान् अर्द्धशः १९ अर्द्धशः १९ श्रोण्योः एधयंतु एकोनविंशतिभागाः श्रोण्योः प्रत्येकं दाक्षिणोत्तरं वर्द्धनीया इत्यर्थः । श्रोण्योः अग्रपर्यंतसूत्रद्वये स्थितं त्रिकोणं भवति ॥ मध्यदक्षिणश्रोण्योरर्द्धं कृत्वा बहिर्वृत्तार्द्धं भ्रामयेत् - एवमुत्तरतोऽपि ॥ इति योनिकुंडं भवति ॥ अर्द्धचंद्रकुंडमाह ॥ चतुःकोणक्षेत्रे ॥ अस्यार्थः ॥ चतुःकोणक्षेत्रस्य मध्यस्थितगुणस्य जिनलवान् २४ कृत्वा अधः सार्द्धभागद्वयं विहाय शक्ता उपरि चांशस्य कलांशेन षोडशांशेन ऊनसार्द्धभागद्वयं त्यक्त्वा उपरि चिह्नोपरि तिर्यग्दक्षिणोत्तरं ज्यासूत्रं दत्त्वा उभयचिह्नमानरज्ज्वाऽधिचिह्नात् वृत्तार्द्धभ्रमणात् शशिदली - अर्द्धचंद्रकुंडं भवति ॥ क्षेत्रस्य मध्यमगुणो ॥ अस्यार्थः ॥ क्षेत्रस्य मध्यमगुणजिन २४ भागैर्विभज्य तावतः शरलवान् पंचभागान् श्रोण्योः पृथक् पृथक् परिवर्ध्य एकभागस्याष्टमलवेन विनाष्टभागोनान् दश भागान् संवर्ध्य प्रयुक्तैः पातितैः त्रिभिः सूत्रैः त्र्यस्त्रिकुंडं भवति ॥ षोडशधा कृतमध्यसूत्रम् ॥ अस्यार्थः ॥ चतुरस्रक्षेत्रस्य मध्यसूत्रं षोडशधा विभज्य पुरत एकं भागं परिवर्ध्य तत्र चिह्नं कृत्वा मध्यचिह्नस्थया रज्ज्वा वर्द्धितचिह्नमर्यादं च परितो भ्रमणेन मंडलकुंडं वृत्तकुंडं भवति ॥ अष्टोनद्विशतं

षडस्रीरितं ॥ अस्यार्थः॥ क्षेत्रस्यांतरगुणे मध्यसूत्रे द्विनवत्याधिकशतांशे कृते सति तिर्यग्दक्षिणोत्तरस्थितं यत् सूत्रं तस्योभयतः भवद्धेनेन २७ सप्तविंशता शेषं झषैर्मत्स्यैश्चिह्नयेत् मत्स्यनिष्पत्तिश्चैवं दाक्षिणपारेऽधिरेखायां तिर्यक् सूत्रस्य यत्र संपातस्तत उपर्यधश्च पंचविंश २५ त्यंशैः चिह्नद्वयं कृत्वा सप्तविंश २७ त्यंशमितेन सप्तविंशत्यंशान् पंचविंशत्यंशमितेन पंचविंशत्यंशाचिह्नांत उपर्यधश्च मत्स्यद्वयं कुर्यात ॥ एवमुत्तरतश्च कुर्यात्तु ततः पुरोऽथ परतः पूर्वपाश्चिमम् अंकद्व्यंशवृद्धौ न विंशत्यंशवृद्धौ झषद्वंद्वात् मत्स्यद्वयात् दक्षिणोत्तरपश्चात् ॥ भागस्थात् मत्स्यद्वयात् पश्चिमतो वर्धितचिह्नमर्यादं सूत्रं दद्यात्ततस्तिस्योर्मत्स्ययोः पार्श्वद्वयेऽपि गुणतः षडस्रि कुण्डमीरितमुक्तम् ॥ पद्मकुंडमाह ॥ क्षेत्रेऽतचतुरस्रके वर्ध्यचलाग्रकाणि ॥ अस्यार्थः ॥ चतुरस्रक्षेत्रविस्तारस्य वस्वंशेनाष्टांशेन व्यासार्द्धेन मध्यात् ॥ तं वृत्तं कर्णिका पुनरन्याष्टमांशवृद्ध्या भ्रमणेनोन्नतं वृत्तं केसराः पुनरष्टमांशवृद्ध्या कृतं वृत्तं दलानां मध्यभूः पुनरष्टमांशवृद्ध्याकृतं वृत्तं दलानामुपरि भूः क्षेत्रविस्तारस्य जिनांशकस्य चतुर्विंशस्य विशिखैः पञ्चभिः कलांशैः षोडशांशैः ऊनं न्यूनं पुनरष्टमांशं संवर्द्ध्य कृतं वृत्तं दलाग्रभूमिः ॥ दलाग्राणि तथा कुर्याद्यथा क्षेत्रार्द्धं बहिस्त्यजेत् अन्यथा इयता द्विघ्नेन द्विगुणेन त्रिंशल्लवविस्तारं वृत्तं स्यात् ॥ स्वविस्तारतुल्योन्नतां कर्णिकां विहाय खनेत् इदं च अष्टदलं चतुर्दलं वा स्यात् ॥ अष्टास्रिकुण्डमाह ॥ क्षेत्रव्यासजिनांशकेषु चतुरः दिक्सूत्रयुग्मम् ॥ अस्यार्थः ॥ क्षेत्रविस्तारचतुर्विंशांशेषु एकस्य रदांशैः द्वात्रिंशांशैर्गुणेंदुभिः त्रयोदशभागैः साकं समं बहिः संवर्द्ध्य एतद्वितत्यां एतद्विस्तारेण अन्यतः वेदास्रि चतुरस्रम् उदारादिक्गुणयुतम् उदारादिक्सूत्रयुतं वहेत् कुर्यात् दिक्कोणयोर्मध्येऽष्टाचिह्नानि कृत्वा तेषु तृतीयचिह्नमिलितैरष्टगुणैः अष्टास्रिकुण्डं भवति ॥ दि-

क्सूत्रयुग्मम् आद्यं चतुरस्रयुग्मं तदशेषं परिमार्ज्यम् ॥ अष्टसूत्र्या संपाततः अंतरगतं मध्यगतरेखाष्टकमपनयेत् मार्जयेदिति कुंडस्वरूपं भवति ॥ पंचास्रिकुंडमाह ॥ क्षेत्रव्यासदलेऽर्कांः ॥ अस्यार्थः ॥ क्षेत्रविस्तारस्य दलद्वयं कृत्वा एकदलस्यार्कभागान्द्वादश भागान् कृत्वा तत्रांकानां नवभागानां विंशति २० भागेन सहितांस्त्रीन् ३ भागान् संवर्द्धयं तावता व्यासार्द्धेन मंडलं वृत्तं साधयेत् वृत्तं पंचधा कृत्वांशद्वयम् ऊनं न्यूनं विहाय तद्विस्तारमितया रज्ज्वा पंचज्याः आवहेत् ज्यायाः षष्ठांशेन शरं विधाय पंचधन्वा निगमयेत् ॥ तानि च मार्जयेत् ॥ ज्यैव रक्षेति पंचास्रिकुंडम् ॥ सप्तास्रिकुंडमाह ॥ क्षेत्रव्यासदलेंऽगराम ॥ अस्यार्थः ॥ चतुरस्रक्षेत्रविस्तारस्य दलेऽर्द्धे अंगं ३६ शमलवजुषि षड्विंशद्धा कृते अश्वांशवृद्ध्या षट्त्रिंशद्भागमध्यपतितसप्त ७ भागवृद्ध्या युक्तेन विस्तारार्द्धेन वलयं वृत्तं भ्रमयेत् वृत्तविस्तरस्य विंशति २० तमो भागः येषु धनुष्षु विशिखः शरः स्यात् तादृशानि सप्त चापानि धनूंषि मिथो मिलद्गुणमुखानि परस्परसंलग्नगुणाग्रकाणि नवगुणितशरसूत्रमितया ज्यया युक्तानि सप्तास्रिकुंडे आवहेत् कुर्यात् सप्तास्रिकुंडं भवति ९ दशहस्तांतं करण्योर्लिख्यते करणीशब्दवाच्यं तत्तदायामसूत्रं तस्यैव नामांतरं मध्यसूत्रमिति एकसप्तदशोनचतुस्त्रिंशत् द्विहस्तके एतेनांगुलानि ३३ यव १ यूक४लिक्षा २ द्विहस्तकरणी ॥ एकाष्टाविंशतिशतात् त्रिसप्तत्याथ संयुताः एकचत्वारिंशदंगुलयस्तु स्युस्त्रिहस्तके एतेनांगुलानि ४१ यव ४ यूका ४ लिक्षा ४ त्रिहस्तकरणी ॥ अष्टचत्वारिंशता स्यात् चतुर्हस्ते करण्यथ ४८॥ अथ तृतीयांशन्यूनचतुःपंचाशत्पंचहस्तके एतेनांगुलानि ५३ यवाः ५ यूका २ लिक्षा ४ पंचहस्तकरणी ॥ चतुरेकोनविंशोनोनषष्टिस्तदुत्तरे एतेनांगुलानि ५८ यव ६ यूका २ लिक्षा ४ षड्हस्तकरणी सप्तहस्तेऽर्द्धयुता त्रिषष्टिः करणी मता ताः सप्तदशांशाभ्यां वसुषट्

चाष्टहस्तके एतेनांगुलानि ६७ यव ७ यूका २ लिक्षा २ इयतीष्टहस्तकरणी ॥ द्वासप्तत्यंगुला कार्या करणी नवहस्तके १२ न विंशांशद्वयोनादशहस्ते षड्द्वयः अंगुलानि ७५ यव ७ यूका १ लिक्षा २ दशहस्तकरणी एवं दशांतं कुंडानां करण्युक्ता सुबोधिनी ॥ अथ वैकहस्तस्य यत् कोणसूत्रं तद्द्विहस्तकुंडायामसूत्रं द्विहस्तकोणसूत्रं चतुर्हस्तकुंडस्यायामसूत्रं त्रिहस्तकोणसूत्रं षड्ढस्तस्यायामसूत्री चतुर्हस्तकर्णसूत्रम् अष्टहस्तस्यायामसूत्रं पंचहस्तकर्णसूत्रं दशहस्तस्यायामसूत्रम् इति कुंडरचनाविधिः समाप्तः ॥

इति कुंडरचना समाप्ता ॥ १७ ॥

अथ परशुरामपद्धत्युक्तः कुण्डमण्डपः १८।

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ मंडपकुंडादिसाधनं यज्ञसिद्धये ॥ साधयेत्प्रथमं प्राचीं शंकुना वोडुना तथा ॥ १ ॥ अंगुलस्य प्रमाणं प्राक्छंकुकुंडार्थमुच्यते ॥ अंगुलं त्रिविधं प्रोक्तं षड्यवादिप्रभेदतः ॥ २ ॥ षड्यवैर्ब्रह्मणो ज्ञेयमंगुलं सप्तभिर्हरेः ॥ अष्टभिस्तु महेशस्य स्वकर्तव्यं यथारुचि ॥ ३ ॥ चिकीर्षितस्य कुंडस्य मानं रज्जुस्वमानतः ॥ यः स्याद्भागश्चतुर्विंशस्तदत्रांगुलमुच्यते ॥ ४ ॥ तिर्यग्यवोदराण्यष्टौ त्र्यध्वो वा व्रीहयस्त्रयः ॥ प्रमाणमंगुलस्योक्तं शंकुः स्याद्द्वादशांगुलः ॥ ५ ॥ एकांगुलप्रमाणं तं शंकुं भुवि विनिक्षिपेत् ॥ रज्ज्वा तन्मात्रया वृत्तं कृत्वास्मिञ्छंकुभागतः ॥ ६ ॥ शंकुद्वयं पुनर्देयं प्राह्लापराह्लकालिका ॥ तयोरुपरि सूतस्था प्राची ज्ञेया सपश्चिमा ॥७॥ कृत्तिकोदयने प्राची प्राची स्याच्छ्रवणोदये ॥ चित्रस्वात्यंतरे प्राची न प्राची भास्करोदये ॥८॥ एवं प्राचीं प्रतीचीं च संसाध्य विधिवत्पुरा ॥ उत्तरादिग्ध्रुवात्साध्या दक्षिणादिगगं स्यात ॥ ९ ॥ चतुर्विंशांगुलो

हस्तो मंडपादौ विधीयते ॥ कूर्परान्मध्यमाग्रांतः कर्मकर्त्तुः करोऽथवा ॥ १० ॥ मंडपं कारयेत्पूर्वं षोडशस्तंभसंयुतम् ॥ नातिनीचं न चात्युच्चं कुडवेन च संयुतम् ॥ ११ ॥ गृहस्योत्तरपूर्वेण प्रागुदक्प्रवणांगणे ॥ देवानां संन्निधौ वापि पुण्यदेशे जलाश्रये ॥ १२ ॥ सुसमे भूमिभागे च कृत्वा गणेशपूजनम् ॥ मंडपं स्थापयेत्तत्र चतुरस्रमुदक्प्लवम् ॥ १३ ॥ मंडपोऽष्टगुणः कुंडात्कुंडं होमानुमानतः ॥ होमो जपदशांशेन जपः कर्तुरपेक्षया ॥ १४ ॥ विप्राणां मंडपः कार्यो हस्तैर्विंशतिसंमितैः ॥ राज्ञां षोडशभिर्हस्तैर्हस्तैर्द्वादशभिर्विशाम् ॥१५ ॥ शूद्राणां दशभिर्हस्तैरष्टभिर्हीनवर्णिनाम् ॥ सर्वे वा सर्ववर्णैस्तु कार्याः कार्यानुसारतः ॥ १६ ॥ कनिष्ठो दशभिर्हस्तैर्मध्यो द्वादशभिः करैः ॥ श्रेष्ठः षोडशभिर्हस्तैर्लघुरुद्रादिषु ·त्रिषु ॥ १७ ॥ चत्वारिंशत्करो भूरिपंचर्धाकेन विभ्रता ॥ पंचाशकरविस्तारो विपुलो विपुलस्तथा ॥ १८ ॥ अथैषां साधनं वक्ष्ये यदुक्तं विश्वकर्मणा ॥ मंडपानां नवानां च कुंडानां रज्जुशंकुभिः ॥१९ ॥ यावत्प्रमाणा रज्जुः स्यात्तावानेवागमो भवेत् ॥ आगमार्धेन शंकुः स्यात्तदर्धेन विरंछनम् ॥ २० ॥ प्राक्छंकौ संक्षिपेद्रज्ज्वामागमात्तं तु पश्चिमे ॥ शक्रनीरंछनं धृत्वा यत्र शंकुः सकोणकः ॥ २१ ॥ एवं कोणौ तु पाश्चात्यौ प्राच्यै रज्जुविपर्ययात् ॥ चतुःकोणा भवंत्येवं सकुंडा मंडपा नव ॥ २२ ॥ वनो घोषो विराजश्च कांचनः कामराजकः ॥ सुब्वो वै प्रचरोदंक्षौ गहनो नव मंडपाः ॥ २३ ॥ पूर्णहस्तश्चतुर्द्वारा अष्टहस्तादितास्त्रिशः ॥ चतुर्विंशतिहस्तान्ता हीनमध्योत्तमाः क्रमात् ॥ २४ ॥ यद्वा द्वादशहस्ताया द्विहस्तविस्तृतानि च ॥ अष्टाविंशतिपर्यंता काश्चिदुक्ता मनीषिभिः ॥ २५ ॥ मंडपप्रमिता रज्जुः पूर्वं कार्या चतुर्गुणा ॥ पश्चात्कार्या त्रिभागा सा रज्ज्वऽग्रेष्वर्कशंकरम् ॥ २६ ॥ तामेवैकगुणां·शर्वं सर्वदिक्षु प्रसारयेत् ॥ समंताद्द्वादशस्तंभा रोहणादश शंकुषु ॥ २७ ॥ चत्वारो

मध्यतो रोप्या रोपितस्तंभमुत्तमः ॥ इत्थं षोडशभिः स्तंभैः साध्याः सर्वेऽपि मंडपाः ॥२८॥ मंडपे मंडपे स्तंभा यथासंख्याः समा दृढाः ॥ सारदारुमयास्ते च शालवृक्षादिवृक्षजाः ॥ २९ ॥ पंचहस्तमिताः कार्या रोप्या हस्तमिता भुवि ॥ अथवा सप्तहस्तास्ते रोहणीया निजेच्छया ॥ ३० ॥ तेषां द्वाराणि चत्वारि द्विहस्तविस्तृतानि च ॥ तोरणानि चतुर्द्वारे चतुर्हस्तोच्छ्रितानि च ॥ ३१ ॥ न्यग्रोधतोरणं पूर्वे याम्ये औदुंबरस्य च ॥ आश्वत्थं पश्चिमे द्वारे पालाशं चोत्तरे न्यसेत् ॥ ३२ ॥ सुदृढं नाम पूर्वस्थं याम्यं विकटतोरणम् ॥ सुभीमं नाम पाश्चात्त्यमुदग्द्वारे च सुप्रभम् ॥ ३३ ॥ शूलेन चिह्निताः कार्या द्वारशाखास्तु मस्तके ॥ शूलं नवांगुलं दीर्घं तुरीयांशेन विस्तृतम् ॥ ॥ ३४ ॥ सप्तहस्ताः पताकाः स्युः सप्तमांशेन विस्तृताः ॥ द्विहस्तसंमिता वापि विंशत्यंगुलविस्तृता ॥ ३५ ॥ इंद्रायुधप्रभा रक्ता धूम्रा कृष्णा सितासिता ॥ श्वेताश्वेता च मेघाभा भास्कराभा क्रमाद्दश ॥३६॥ सिंदूरा कर्बुरा धूम्रा धूसरा मेघसन्निभा ॥ हरिता पांडुवर्णा च शुभ्राथवाष्टपूर्वतः ॥ ३७ ॥ नवमी मेघवर्णा च दशमी त्वहनिप्रभा ॥ दशहस्ता पताकानां दंडापंचासवेशिता ॥ ३८ ॥ पंचहस्ता ध्वजा प्रोक्ता वैपुल्ये च द्विहस्तकाः ॥ अथ वा बाहुमात्राः स्युः सर्वा वितस्तिविस्तृताः ॥ ३९ ॥ इंद्रायुधोपमा रक्ता कृष्णा नीला शशिप्रभा ॥ धूम्रका पद्मवर्णा च शुक्ला पूर्वादिषु क्रमात् ॥ ४० ॥ नवमी सर्ववर्णा च दशमी पंचवर्णिका ॥ सर्ववर्णा तथा चोर्ध्वा अधोगा पंचवर्णिका ॥४१॥ पीता रक्ता तथा श्यामा नीला शुद्धा विधूमिता ॥ हरिता पंचवर्णा च पूर्वादिदिक्षु चाष्टसु ॥ ४२॥ ऊर्ध्वरिक्ता भवेत्तत्र गौराधस्थाथवा दश ॥ द्विपंचहस्तदंडैश्च वंशजैः संयुता मता ॥ ४३ ॥ प्राच्यामाशुःशुशानांद्यामिंद्रायेंद्रायुधप्रभम् ॥ पताकां न्यस्य तत्रैव ध्वजां संक्रन्दने न्यसेत् ॥ ४४ ॥ अग्निं दूतं तथाग्नेय्यां पताकां रक्तवस्त्रजाम् ॥ तत्राग्निहृदये-

नैव ध्वजां न्यसेत्तथाग्नये ॥ ४५ ॥ याम्ये धूम्रां पताकानामायं गौरिति विन्यसेत् ॥ यमप्रीत्यै ध्वजां कृष्णां तत्रायं दक्षणेति च ॥४६॥ असुन्वंतं च नैर्ऋत्यां पताकां कृष्णवर्णिकाम् ॥ अनेनैव ध्वजां नीलां निर्ऋतिप्रीतये न्यसेत् ॥ ४७ ॥ इमं मे वरुणश्वेतां पताकां पश्चिमे क्षिपेत् ॥ वरुणप्रीतये पीतामपामिदमिति ध्वजाम् ॥ ४८ ॥ वायव्यां श्वेतपीतां च पताकां प्राणदा ऋचा ॥ वायो ये ते ध्वजां धूम्रां वायुप्रीत्यै विनिक्षिपेत् ॥ ४९ ॥ पताकास्तुत्तरे श्वेतामाथायश्वेति मंत्रतः ॥ सोमो राजस्य सोमाय पद्मवर्णं ध्वजं न्यसेत् ॥ ५० ॥ आवो राजानमंत्रेण श्वेतामीशानदिश्यथ ॥ ईश एष ध्वजां शुक्लां तत्रेशप्रीतये न्यसेत् ॥ ५१ ॥ मेघवर्णमनंताय नमोऽस्तु सर्पमंत्रतः ॥ ईशानपूर्वमध्ये तु चित्राय इषवो ध्वजाम् ॥ ५२ ॥ एका महाध्वजा प्रोक्ता मंडपोपरि मध्यतः ॥ अत्युच्चा दशहस्ता सा दीर्घा त्रिहस्तविस्तृता ॥ ५३ ॥ रक्तगौरां पताकां च ब्रह्मणे ब्रह्मजज्ञतः ॥ पंचवर्णां ध्वजां तेन पश्चान्निर्ऋतिमध्यतः ॥ ५४ ॥ तत्रैका वेदिका कार्या यज्ञमंडपमध्यतः ॥ मध्यस्तंभांतरं यावत्तावन्मात्रा करोच्छ्रिता ॥ ५५ ॥ इष्टकाभिश्चिता रम्या चतुरस्रा द्विजस्य सा ॥ एकद्वित्र्यंगुलैर्हीना सैव क्षत्रादिषु त्रिषु ॥ ५६ ॥ महामंडपवेदिः स्याच्चतुः षडष्टहस्तका ॥ शक्रशुद्धद्विहस्तोच्चा हीनमध्योत्तमाः क्रमात् ॥ ५७ ॥ तस्यासितादिभिवर्णैश्चारुपद्मं समालिखेत् ॥ कुंभं विन्यस्य तत्रैव समावाह्यार्चयेच्छिवम् ॥ ५८ ॥ द्वारे द्वारे घटद्वंद्वं सरक्ताभं सपल्लवम् ॥ सर्वौषध्यर्थसंयुक्तं वस्त्रस्रक्चंदनान्वितम् ॥ ५९ ॥ ऋत्विजो युग्मशः स्थाप्या ऋग्वेदादिविदः क्रमात् ॥ पूर्वादिषु चतुर्द्वारेष्वष्टौ ते द्वारपालकाः ॥ ६० ॥ एवं मंडपमारोप्य यथावर्णं यथारुचि ॥ तत्र कुंडं प्रकर्तव्यं ग्रहपीठेन संयुतम् ॥ ६१ ॥ मेखलात्रयसंयुक्तं योनियुक्तं च पश्चिमे ॥ स्थंडिले चाथ तन्मानं तच्च होमानुसारतः ॥ ६२ ॥ रत्निमात्रं शतार्द्धे स्याच्छते चारत्निमात्रकम् ॥ सहस्रे हस्तमात्रं तद्दिह-

स्तमयुते तथा ॥ ६३ ॥ लक्षहोमे चतुर्हस्तं षड्ढस्तं प्रयुतोन्मिते ॥ कोटिहोमेऽर्बुदे चैव अष्टहस्तं तु नाधिकम् ॥ ६४ ॥ उक्तहोमाधिकोने तद्धोमेऽधिकोनमंगुलैः ॥ यथोक्तफलभाक्तेन कार्यं स्यादन्यथान्यथा ॥ ६५ ॥ कुंडमानं वदंत्येके शतस्यार्द्धेऽष्टपर्वकम् ॥ शतेऽर्कपर्वमानं स्यात्सहस्रार्द्धे नृपांगुलम् ॥ ६६ ॥ सहस्रे त्वथ होतव्ये पर्वविंशतिसंमितम् ॥ अयुते हस्तमात्रं स्याल्लक्षहोमे द्विहस्तकम् ॥ ६७ ॥ प्रयुते च चतुर्हस्तं कोटिहोमे तु षट्करम् ॥ अष्टहस्तं महाकुंडमर्बुदाब्जे तु नाधिकम् ॥ ६८ ॥ आयामखातविस्तारो यथायथं तथातथम् ॥ न्यूनाधिकं न कर्तव्यं कुंडं कुर्याद्विनाशनम् ॥ ६९ ॥ खातेऽधिके भवेद्रोगी हीने धेनुधनक्षयम् ॥ वक्रकुंडं च संतापो मरणं छिन्नमेखले ॥ ७० ॥ मेखलारहिते शोकोऽभ्यधिके वित्तसंक्षयः ॥ योनिहीने स्त्रिया नाशो विकंठेऽपैति पंचताम् ॥ ७१ ॥ एवं लक्षणहीनस्य कुंडस्य फलमीदृशम् ॥ अतो दोषान्विविच्यादौ कुण्डनिर्माणमारभेत् ॥ ७२ ॥ वेद्यास्त्र्यंशांगुलं त्यक्त्वा कुण्डमानमथापि वा ॥ कुर्यात्कुंडं दिशि प्राच्यां चतुःकोणं सलक्षणम् ॥ ७३ ॥ कुंडं हस्तायतं तिर्यक्खनेदूर्ध्वं समेखलम् ॥ खातं तिथ्यंगुलं प्रोक्तं मेखलास्तु नवांगुलैः ॥ ७४ ॥ यावान्कुण्डस्य विस्तारस्तावानायाम ईरितः ॥ तिर्यगूर्ध्वंध्वजायार्थं खन्यमेकांगुलाधिकम् ॥ ७५ ॥ स्थापने सर्वकुण्डानां ध्वजायः सर्वसिद्धिदः ॥ ध्वजायरहितं कुण्डं सर्वानिष्टफलप्रदम् ॥ ७६ ॥ सलक्षणमपि त्याज्यं ध्वजायेन विना कृतम् ॥ तस्मात्कुण्डविधानार्थं ध्वजायं पूर्वमानयेत् ॥ ७७ ॥ मानाद्दूनाधिकं क्षेत्रं कार्यं पर्वयवादिना ॥ व्यासे दैर्घ्यहतेष्टाप्तशेषेऽत्रायो ध्वजादिकः ॥ ७८ ॥ खातादेकांगुलं त्यक्त्वा मेखलानां स्थितिर्भवेत् ॥ द्व्यंगुलं वा स कण्ठः स्यान्मेखला खातमध्यतः ॥ ७९ ॥ मेखलैकाथवा तिस्रः कार्याः कुण्डेषु पंच वा ॥ कुण्डानामाकृतिर्यादृक्ताहक्तन्मेखलाकृतिः ॥ ८० ॥ यदैका मेखला कुण्डे तदा कार्या

षडंगुला ॥ उच्छ्रिता विस्तृता सैव कार्या वा चतुरंगुला ॥ ८१ ॥ यदा तिस्रस्तदा बाह्ये चतस्रो द्व्यंगुलं क्रमात् ॥ भूमितः पृथुला चोच्चा मध्यकंठा नवांगुला ॥ ८२ ॥ एतासां तिसृणां मध्ये प्रथमा चतुरंगुला ॥ ऊर्ध्वोक्ता स्यात्तु तच्छेषाः सर्वा वा चतुरंगुलाः ॥ ८३ ॥ प्रथमा सात्त्विकी ज्ञेया द्वितीया राजसी स्मृता ॥ तृतीया तामसी तासां देवा ब्रह्माच्युतेश्वराः ॥८४॥ यदा पञ्च तदा तत्र षट्पंचाब्धित्रिपक्षकैः॥ अंगुलैः पंच कर्तव्या उन्नता विस्तृताश्च ताः ॥ ८५ ॥ कण्ठाद्विशांगुला तुंगा पूर्वा पृथुषडंगुला ॥ चतुर्दशनखेषुद्विपर्वतुल्यां परापरा ॥ ८६ ॥ मेखलामध्यतो योनिः कुंडत्र्यंशेन विस्तृता ॥ कुंडार्धेन च दीर्घा सा जिनांशेनोन्नता तथा ॥ ८७ ॥ दशांगुलाथवा योनिर्दीर्घा वा कुंडपश्चिमे ॥ सप्तांगुला च विस्तीर्णा कर्त्तव्याश्वत्थपत्रवत् ॥ ८८ ॥ एकांगुलप्रमाणेन पृथूच्चा योनिमेखला ॥ अंतर्बिला नता कुंडे प्रविष्टैकांगुलाधरा ॥ ८९ ॥ कूर्मपृष्ठोन्नता मध्ये पार्श्वयोश्चांगुलोच्छ्रया ॥ गजोष्ठसदृशी तद्वदायता छिद्रसंयुता ॥ ९० ॥ योनिमध्यगतं लिंगं तुंगं पृथुकरांगुलम् ॥ मृत्पिण्डद्वितयं तस्याः पार्श्वे वा कुंभिकं भवेत् ॥ ९१ ॥ एकांगुलं तु योन्यग्रं कुर्याद्दीर्घमधोमुखम् ॥ एकैकांगुलतो योनिं कुंडेष्वन्येषु वर्धयेत् ॥ ९२ ॥ यवद्वयप्रमाणेन योन्यग्रमपि वर्धयेत् ॥ तस्मादारभ्य नालस्य योनिमध्ये मुखं स्मृतम् ॥ ९३ ॥ एकहस्तमिते कुंडे वेदाग्निनयनांगुला ॥ मेखलायाः स्मृतास्तिस्रो द्विगुणास्ता द्विहस्तकैः ॥९४॥ चतुर्गुणा चतुर्हस्ते षड्ढस्ते षड्गुणाश्च ताः॥ अष्टगुणाऽष्टहस्ते मेखलावच्च योनयः ॥ ९५ ॥ केऽप्याहुर्द्विकरे कुंडे रसवेदगुणांगुलाः ॥ कुंडे चतुःकरे कार्या अष्टाषट्चतुरंगुलाः ॥ ९६ ॥ मेखलाः षट्करे कुंडे दशाष्टांगांगुलाः स्मृताः ॥ अष्टहस्तमिते प्रोक्ताः सूर्यदिक्कुंजरांगुलाः ॥ ९७ ॥

इति श्रीपरशुरामपद्धत्युक्तः कुंडमंडपनिर्णयग्रंथः समाप्तः ॥ १८ ॥

अथ कुण्डरामवजपेयीग्रथः १९ ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ इष्टापूर्त्तेष्वंगमाद्यं यदाहुर्यस्योनत्वाधिक्यतो भूरिदोषाः ॥ कुंडं सांगं भूरिभेदं तदत्र ब्रूते रामो नैमिषस्थो विचार्य ॥ १ ॥ त्रसरेणू रथरेणुर्वालाग्रं तदनु लिक्षा च ॥ यूका यवोंऽगुलमिति परमाणोः क्रमतोऽष्टगुणितानि ॥ २ ॥ कृतमुष्टिकप्रकोष्ठो मुष्टी रत्निर्निरष्टमांशकरः ॥ सोऽरत्निस्त्वकनिष्ठः कर एव कलांशरहितः स्यात ॥ ३ ॥ हस्तस्तु चतुर्विंशत्यंगुल उदितो मितौ पटुभिः ॥ अंगुष्ठमध्य रेखामध्यांगुलिमध्यपर्वमितम् ॥ ४ ॥ अंगुलमाहुर्बहुधा सिद्धांतं ब्रूमहे तत्र ॥ उपलब्धश्रुतिमूलं कल्पकृदुदितं समाश्रित्य ॥ ५ ॥ समस्थिते वा प्रपदोच्छ्रिते वा य ऊर्ध्वबाहौ नरि पंचमोंऽशः ॥ हस्तः स तस्यापि जिनांशकोऽत्रांगुलं यवस्तस्य लवोऽष्टमोंऽशः ॥ ६ ॥ यजमानांगुलकरमितिरत्र च सर्वत्र बोद्धव्या ॥ परिभाषितं प्रमाणं यजमानस्यैव कल्पयेत् ॥७॥ कीलेनैकीकृते मूले पृथक्सूक्ष्मसमाग्रयोः ॥ दंडयोरग्रनैकत्व्येऽन्यस्तिर्यङ्मध्याचिह्नतः ॥ ८ ॥ कीलादिना योजनीयो दंडः समतया द्वयोः ॥ मूलप्रोतं लंबसूत्रमस्पृशद्वारवद्ध्रुवम् ॥९॥ भूस्थेऽग्रे युग्मे मध्यांकात्तिर्यग्दंडगताग्रतः ॥ खनेत्तत्पूरयेदन्यं निम्नयेद्वापि युक्तितः ॥१०॥ अंके यावत्सूत्रमेति भूमिस्थं समतां व्रजेत् ॥ विशोधितायां प्राक्तस्यां मंडपादि समाचरेत् ॥११॥ सूच्यग्रः सरलः शंकुः पृथुमूलधृतः स्थिरः ॥ अधोऽपि वा सूक्ष्ममुखो निहितः प्रविशेद्भुवि ॥ १२ ॥ पादोनशंकुतुंगत्वव्यासार्द्धकृतमंडले ॥ मध्ये निवेश्यो वृत्तस्य दिक्षु चतुष्टयतः समैः ॥ १३ ॥ सपादशंकुतुंगत्वमानैरेकीकृतोऽग्रकैः ॥ चतुःकीलैः स्पृष्टशिरा एवं शंकुर्ऋजुर्भवेत् ॥ १४ ॥ शंकुयानाधिकव्यासदले वृत्ते विशेद्यतः ॥ निर्यांति च यतः शंकुश्छाया प्राक्सूत्रमेतयोः ॥ १५ ॥ द्युतिप्रवेशापगमांतरालघटीहतं श्वोपगमांतरा-

लम् ॥ प्रकृतभागं खरसच्छिद्राप्तांशेनायनांशा चलितेंद्रकाष्ठा ॥१६ ॥ प्राच्यंताभ्यां मध्यमुल्लंघ्य किंचित्क्लिष्टे वृत्तार्धे कृते यौ तिमी स्तः ॥ ताभ्यां याम्योदग्गताभ्यां तु रेखां मध्ये दद्याद्दक्षिणोदक्प्रसिद्धौ ॥१७॥ सूत्रे प्राचीं विलंघ्य मध्यमुभयांताभ्यां तिमी पार्श्वयोः कृत्वोदग्गतसूत्रमत्र विलिखेत्प्राचा गुणेनोन्मितम् ॥ दिक्चिह्नद्वयतो विदिक्षु च जुषन्व्यासार्द्धमित्यालिखेत्सूत्रैस्तेषु चतुर्षु वेदमितिभिः स्याद्वेदकोनं समम् ॥ १८ ॥ व्यासद्विगुणरज्ज्वंतपाशौ कृत्वांकयेदिमाम् ॥ व्यासार्द्धमाने शंक्वर्थं सार्द्धेऽस्मिन्कर्षणाय च ॥ १९ ॥ प्राच्यंतशंकोस्तस्यांशौ कृत्वा चाकृष्य कर्षणे ॥ शंक्वंके प्राक्छ्रोणिरेवमुदग्व्यत्यस्य चांशकौ ॥ २० ॥ दशरविकरायामावल्पौ मतावथ मध्यमौ रविमुकरायामौ श्रेष्ठौ कलाधृतिपाणिकौ ॥ विततिरपि च प्रोक्तो यामोन्मितैव हि मंडपे नखकरमपि प्राहुः केचित्तुलापुरुषार्पणे ॥ २१ ॥ द्विकरायतिक दिगंतरा भवति द्वारचतुष्टयं क्रमात् ॥ चतुरष्टमितांगुलेर्घनं कथितं मध्यमपूज्ययोरपि ॥ २२ ॥ त्रिधा मध्यसूत्रं विभज्याथ मध्यात्रिभागेन वेदीष्टकाभिर्विधेयाः ॥ समावेदकोटिस्तदुच्छ्राय इष्टस्त्रिवेदेषुसप्तग्रहे सांशकैर्वा ॥ २३ ॥ सारद्रुजास्तदनु मंडपवेदिकोणेषूच्चाश्च पंचकरतः सुदृढर्ज्जुतुल्याः ॥ द्वाराणि चाभित उभावुभयं निखेयाः स्तंभा स्वपंचमलवैर्भुवि षोडशेति ॥ २४ ॥ वेदिकोणेषु ये स्तंभाश्चत्वारो मध्यमास्थिताः ॥ श्रेष्ठमंडपविस्तारदलोच्चास्ते मताः शुभाः ॥ २५ ॥ मध्यमाधमयोरष्टहस्तास्तंत्रांतरोक्तितः ॥ वलिकास्तेषु विन्यस्य मध्यभागोद्धतं सृजेत् ॥ २६ ॥ वेदिस्तंभचतुष्टयं चूडासु सरंध्रद्वारुणि ॥ तिर्यक्समानि दद्याच्छाद्यः परितोऽपि मंडपोऽथ कटैः ॥ २७ ॥ अश्वत्थोदुंबरजाटिवटैः पंचषट्सप्तहस्तोच्छ्रायाः कप्ता युगलयुगलं द्वार्षु शाखानिखेयाः ॥ तिर्यग्घस्ताद्वितयफलकं हस्तपादार्द्धवृद्धिन्यस्ये चूडास्वपि निजबिलेरल्पमध्योत्तमेषु ॥ २८ ॥

वेदांगुलैः सार्द्धयुगैश्च बाणैस्तन्मूर्ध्नि कीला विनिवेशनीयाः ॥ ते वैष्णवे कम्बरिवद्गदाब्जवत्स्युस्तथा शूलनिभास्तु शैवे ॥ २९ ॥ दैर्घ्यं नवांगुलमितं स्वतुरीयभागे विस्तारिमूलमृजुमध्यमशृंगमुक्तम् ॥ वक्रेतरद्वयमुभे बिलमंगुले तन्मध्यस्थितं विशति हीनकमंडपश्चेत् ॥ ३० ॥ द्विद्व्यंगुलं त्वपरयोरिदमुन्नते त्वं वर्द्धेत वेशनमथांगुलमेकमेकम् ॥ शाखाश्च तोरणभवा निजपंचमांशैरेवं क्षितावषटकल्पनया विशंति ॥ ३१ ॥ पञ्चाशत्प्रमिते शतादशगुणेऽप्याकोटिहोमे क्रमात् कुण्डं रत्निररत्निहस्तवितत्तं द्व्यक्ष्यंगनागैः करैः ॥ ३२ ॥ आहुलेक्षहुतौ च हस्तामितमप्येकैकहस्तैर्धनं यावत्पंक्ति च लक्षवृद्धित इदं कोटौ तु पंक्त्या करैः ॥ ३३ ॥ समंततश्चतुर्हस्तप्रोक्त्या षोडश हस्तकम् ॥ स्कांदे कोटिहुतौ प्रोक्तं कुण्डं तत्स्थूलवस्तुनि ॥ ३४ ॥ चतुरस्रेऽखिलसिद्धिर्योनौ पुत्राः शुभं दलेन्द्वाभे ॥ त्र्यस्रिन्यनरीवृत्ते शांतिः षट्कोणके मृतिच्छेदौ ॥ ३५ ॥ पद्मे वृष्टिररोगोऽष्टकोणके कुंडयुग्ममन्यच्च ॥ अभिचारशमे भूतोत्साहे ह्यपंचकोणमुद्दिष्टम् ॥ ३६ ॥ चतुरस्रवृत्तचंद्रार्द्धाभत्र्यस्राणि च क्रमेणैव ॥ मुख्यानि विप्रराजविदंत्येष्वखिलेषु वा वेदास्रि ॥ ३७ ॥ स्तंभभोगमृतिवैरशांतिकोच्चाटपुष्टिपरनिर्वृतिष्वपि ॥ शक्रदिक्प्रभृतिदिक्षु वेदितोऽथाष्टकुंडयपि पदांतरे भवेत् ॥ ३८ ॥ अष्टोनद्विशतांशसूत्रकचतुःकोणे पुरस्ताद्ददत्वष्टत्रिंशतमेधयंत्वथ लवाच्छ्रोण्योरिमानर्द्धशः अग्रात्सूत्रयुगैस्त्रिकोणमितितच्छ्रोण्योस्तदर्धभ्रमाद्वृत्तार्द्धे बहिरालिखेदिति भवेत्कुंडोत्तमं योनिवत् ॥ ३९ ॥ चतुःकोणक्षेत्रे जिनलवकमध्यस्थितगुणे विहायाधः सार्द्धद्वयमुपरि तावच्च मतिमान् ॥ कलांशेनांशस्योनितमुपरि तिर्यक्कुरु गुणं भ्रमार्धं तन्मानादपि शशिदलं कुंडमिति च ॥ ४० ॥ क्षेत्रस्य मध्यमगुणे जिनभागभक्ते श्रोण्योः पृथक्छरलवान्परिवृत्य धीमान् ॥ अग्रे विनाष्टमलवेन दशाथ सूत्रै-

ह्यास्त्रि त्रिभिर्भवति कुंडमिह प्रयुक्तैः ॥ ४१ ॥ षोडशधा कृतमध्य-मसूत्रक्षेत्रपुरःपरिवर्द्धितभागे ॥ एक एव ततोऽतरचिह्नान्मंडलकुं-डमितिप्रमाण स्यात् ॥ ४२ ॥ अष्टोनद्विशतांशकेंऽतरगुणे क्षेत्रस्य तिर्यक्स्थितांतःसूत्रोभयतो भवर्द्धनभवांकोऽर्द्धाधरे चिह्नयेत् ॥ तत्त्वां-शेषु जुषैः पुरोऽप्यधरतोऽकद्व्यंशवृद्धोऽजुषद्वंद्वाद्विद्विगुणैर्द्विपार्श्वगुण-तास्तिम्योः षडस्त्रीरितम् ॥ ४३ ॥ क्षेत्रेंऽतश्चतुरस्त्रके विततिवस्वंशेन वृत्तं कृतं व्यासार्द्धेन तु कर्णिकां पुनरियद्वृद्ध्या भ्रमात्केसराः ॥ तद्वृत्या दलमध्यभूः पुनरियद्वृद्ध्या भ्रमेणोर्ध्वभूः क्षत्रव्यासजिनांशकस्य दहनैरूनं नखांशैः पुनः ॥ ४४ ॥ तत्संवर्ध्य दलाग्रकाणि रचयेत्क्षेत्रार्द्धमुंजु-न्विना स्यात्त्रिंशल्लवविस्तृतीत्थमियता द्विघ्नेन वृत्ते बहिः ॥ स्वव्या-सप्रमितोच्चतामिह खनेत्त्यक्त्वांतरा कर्णिकां कुर्वन्केसरचिह्नमष्टसु दलं यद्वा चतुर्भिर्दलैः ॥ ४५ ॥ क्षेत्रव्यासजिनांशकेषु चतुरः संवर्ध्य साकं रदांशैरेकस्य गुणेंदुभिर्बहिरमुष्यै ताद्वितत्या वहेत् ॥ वेदास्त्रं तदुदा-रदिग्गुणयुतं दिक्कोणमध्ये कृताष्टांकेष्वष्टगुणैस्तृतीयमिलितैरष्टास्त्रिकुंडं भवेत् ॥ ४६ ॥ दिक्सूत्रयुग्ममथ यच्चतुरस्त्रं युग्ममाद्यं तदत्र परिमा-र्ज्यमशेषमेव ॥ संपाततोऽतरगतं च तथाष्टसूत्र्या रेखाष्टक त्वपनयेदिति कुंडरूपम् ॥ ४७ ॥ प्रागादिकुंडत्रयमुत्तराग्रं याम्यस्थयोनींतरपंच-कुंडी ॥ प्रागग्निका पाश्चिमयोनिरुक्ता प्राक्कुंडवत्स्यान्नवमं च कुंडम् ॥ ४८ ॥ क्षेत्रव्यासदलेऽर्कभागजुषि संवर्द्ध्यांशकांस्त्रीन्सिहांकानां विंशलवेन मंडलमिति व्यासार्द्धतः साधयेत् ॥ पंचांशाद्वितयोनविस्तृ-तिमिता ज्याः पंच तत्रावहेज्याऽषष्ठांशशराणि पंच गमयेद्धन्वानि पंचास्त्रि तत् ॥ ४९ ॥ क्षेत्रव्यासदलेंऽगरामलवजुष्यश्वांशवृत्या वित-त्यर्द्धेन भ्रमयेदनेन वलयं तद्व्यासविंशो लवः ॥ येषु स्याद्विशिषो नवाहताशिरेणैव ज्यया तादृशश्चापां सप्त मिथो मिलद्गुणमुखात्सप्तास्त्राणि त्वावहेत् ॥ ५० ॥ क्षेत्रे यच्चतुरस्त्रकेंऽतरगतं विस्तारसूत्रं कृतिस्तस्य

क्षेत्रफलं भवेद्द्विगुणितादिः सा द्विनिघ्नादिके ॥ क्षेत्रे स्यात्फलमेतदीयपदमथायामसूत्रं भवेत्तस्मिन्क्षेत्र इतः सृजेत्कथितवत्कुंडं चतुःकोटिकम् ॥ ५१ ॥ इष्टस्यैकोनस्य विस्तारसूत्रं पार्श्वे तिर्यक् चैव विस्तारसूत्रम् ॥ मध्यद्वंद्वेनोक्तयुक्तानिवेश्यंतत्कर्णस्यादात्तिक्षेत्र इष्टे ॥ ५२ ॥ विस्तारांगुलमानमेककरतो यावद्दश स्याज्जिना वेदत्रीणि कुसागराः शरयवोपेता भुजंगांबुधिः ॥ निःपादांबुधिसायका वियवमंकेष्वर्धयुग्रामषट्नागांगान्ययवानि दिङ्मुनियवेनोनाश्च षट् पर्वताः ॥ ५३ ॥ क्षेत्रे सखातं तु फलं यथा स्याद्द्विघ्नादिखातैः क्षत एवमूचुः ॥ द्विघ्नादिकक्षेत्रविनिर्मिते ये तैरंगभूतं खननं न शुद्धम् ॥ ५४ ॥ किं मेखलाकंठयुतोऽपि नेति क्षेत्रस्य वृद्धिद्विगुणादिकेष्टा ॥ खातं यथेच्छं खलु मेखलापि कंठोऽपि कुंडागमवादिवृद्धौ ॥ ५५ ॥ मुमुक्षये सप्तविधा तु मुख्यक्षेत्रं श्रुतावेकशतप्रकारात् ॥ शुल्बेऽप्यवादीतरथेष्टकानां साकं च यैर्वर्द्धनमीरितं स्यात् ॥ ५६ ॥ वेदीर्वेदेन योक्तां पिदशपदानिति वाप्सोत्तरां तां येनोचे कल्पकारो दशचरणफला तेन यज्ञक्षहोमे ॥ कुंडं वेदद्विहस्तायततमधिभूपालपद्धत्यवादि व्याख्येऽपि वेदहस्ते समुनिगिरक्षुते भाति भूयान्प्रमादः ॥ ५७ ॥ स्थापने सर्वकुंडानां ध्वजायः सर्वसिद्धिदः ॥ इत्येकहस्तस्मृतिगीर्व्यर्थं हीतरथापरम् ॥ ५८ ॥ विस्तारतुल्यं सममाद्यमेखलोन्नत्या बुधैः खातमवादि भूरिभिः ॥ योन्यादिनिष्ठा चतुरस्रविस्तृतिः क्वाचित्तु तन्मेखलया विनोदितम् ॥५९॥ क्षेत्रव्यासचतुर्विंशेनांशेन कुंडबाह्यगलः ॥ भवति समंतात्समतः कैश्चिद्व्यासस्य सूर्यांशात् ॥ ६० ॥ व्यासे चतुर्विंशतिधा विभाजिते तिस्रश्चतुस्त्रीक्षणभागविस्तृताः ॥ समंततः कंठबहिस्तु मेखला नवर्तुरामांशकतुंगता मता ॥ ६१ ॥ विस्तारतुल्योन्नतयस्तु कैश्चिदुक्ता इमाः केनचिदर्कभागैः ॥ आद्योच्चतोक्ता परयोस्तु नागवेदांशमानाद्विदधे क्रमेण ॥ ६२ ॥ षट्पंचवेदगुणपक्षलवैस्तु पंच स्युर्मेखला इतर-

एष च पक्ष इष्टः ॥ तुंगादिमां कलवतस्तदिषुलवोनतुंगा परा अथ च विस्तृतिसंमितोच्चाः ॥ ६३ ॥ षडंशविंशा विस्तृतोन्नताथ वैकैकैव मेखला ॥ प्रागादिकुंडकेष्विमां भजंति तादृगाकृतिः ॥ ६४ ॥ कुंडव्यासदलायताथ विततात्यंशेन तुंगा चतुर्विंशांशेन च तावता परिधिना योनिः समंताद्युतिः ॥ तावन्माननिजाग्रकेण विंशतिं कुंडांतरेऽतर्बिला साध्या वृत्तदलद्वयेन रुचिरा वाश्वत्थपत्राकृतिः ॥६५॥ मघवशिखिकृतांतदिक्स्थकुंडेष्वियमाधिमेखलमेव मध्यभागे ॥ यमदिशि शशिदिङ्मुखी निवेश्या वरुणदिशीतरकुंड ऐंद्रवक्त्रा ॥ ६६ ॥ योनेर्मूलेनालमूर्वीतलाच्च प्रोक्तं कैश्चिल्लग्नमंतः सरंध्रम् ॥ योनौ कुंडेनैव योनिस्तथेष्टा नाभिः कैश्चित्कुंडमध्ये परोक्ताः ॥ ६७ ॥ नाभीपद्माभा विशेत्कुंडमध्ये तत्तत्कुंडाकारकृत्योत्तमा वा ॥ कुंडार्कांशस्तुंगताथ द्विनिघ्नः सव्यासास्या धीमता कल्पनीयाः ॥ ६८ ॥ पञ्चकुंडी चेन्निवेश्या दिक्ष्वंतश्चैशपूर्वयोः ॥ एकं चेत्तत्प्रतीच्यां च विद्याद्ग्रंथांतरात्परम् ॥६९॥ सुस्थं कृत्वावृतिविवृतितः कंठनाभीवरांगनाशं शंकावकरनिकरानस्यता भूरिभेदम् ॥ यत्कुण्डाख्यं हुतभुगुदरं शुद्धमाधाय बुद्ध्या श्रीमांस्तेनानलवपुरजः प्रीयतां यज्ञभोक्ता ॥ ७० ॥ कश्चिन्न वेद गणितं यदि वेत्ति शुल्बं शुल्बं न वेद यदि वेत्त्यपसेकक्लृप्तिम्॥ विद्वान्द्वयं न विविधागमपण्डितोऽन्यस्तज्ज्ञानवानपि सुपर्णचितौ पटुः कः ॥७१॥ न्यायेन तत्त्वमवधार्य मयायमन्यैरस्फोरितः प्रकटतामुपलम्भितोऽर्थः ॥ तुष्यन्तु तेन सुधियः कुमतिस्त्वयोग्यः किं कामिनीरतिकथाधिकृतोऽस्ति वर्णी ॥ ७२ ॥ श्रीमद्गल्लपुराधिपेन महितः श्रीरामचन्द्रेण यो भारद्वाजकुलाम्बुधेर्विधुरिव श्रीमज्जटामाद्विजः ॥ बन्धूनां परिणीतयेऽभ्युपगतोऽसौ मालवो नैमिषं तेनर्ग्वेदविदेरितेन रचिता रामेण कुण्डाकृतिः ॥ ७३ ॥ रसगगनतिथिप्रमाणवर्षे गतवति विक्रमभूमिपस्य कालात् ॥ क्रतुविधिफलदायके मखेज्ये कृतिरियमस्तु समर्पिता सुदेशे ॥ ७४ ॥

इति रामवाजपेयिकृतकुण्डरामवाजपेयीग्रन्थः समाप्तः ॥ १९ ॥

अथ कुण्डमरीचिमालाग्रन्थः २० ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ हेरम्बमम्बुजकरं करिवक्त्रमीशं शैवीमुमां वरकृताभगणं दिनेशम् ॥ ब्रह्माजशङ्करपुरन्दरनारदादीन्नत्वा ब्रवीमि दशकुण्डमरीचिमालाम् ॥ १ ॥ श्रीमद्रामकृतिं चित्रामत्यर्थार्णवदुस्तराम् ॥ धृत्वा विष्णुः क्रमोपायं कुरुते होमवृद्धिषु ॥२॥ तत्रादौ वाजपेयिकृतं सूत्रम् ॥ क्षेत्रे यच्चतुरस्रकान्तरगतमित्यादि ॥ ३ ॥ हस्तमात्रकुण्डे चतुर्विंशत्यङ्गुलानि स्युः तेषां कृतिं रामसमद्विघात इति ॥ ४ ॥ पञ्चशतानि षडधिकासप्ततिश्चाङ्गुलानि क्षेत्रफलम् ५७६ एतदेव एकगुणं द्विगुणं त्रिगुणं चतुर्गुणितं पञ्चगुणं षड्गुणितं सप्तगुणितमष्टगुणितं नवगुणितं दशगुणितं सत्प्रत्येकमेकमेकहस्तादिकुण्डानां क्षेत्रफलानि भवन्ति यदा तेषां चत्वारो भुजाः स्वस्वकुण्डानां स्युरिति ॥ अथ क्षेत्रफलान्याह ॥ षट्सप्तेषुमितं ५७६ द्व्येषुगिरिशा ११५२ नागाश्विसप्तेन्दवो १७२८ वेदाकाशगुणाश्विनः २३०४ किल फलं शून्याष्टनागाश्विनः २८८० षट्पञ्चाम्बुधिविक्रमा ३४५६ रदनभश्चत्वारि ४०३२ नागाभ्रषड्वेदा ४६०८ वेदधृतीषवा ५१८४ दशकरे षट्चद्विबाणाः ५७६ फलम् ॥ ५ ॥ अथैषां मूलानि गृहीत्वा वाजपेयी सुगमोपायार्थं दशकुण्डानां विस्तारमाह ॥ विस्तारांगुलमोनकमित्यादि ॥ ६ ॥ अत्रानेनालस्यात्सावयवानि मूलानि गृहीतानि मयैव गृहीत्वा वक्ष्यमाणश्लोके निबद्धानि प्रकृतौ तु अंङ्का एव लिख्यन्ते पञ्चाशत्प्रमितेत्यादि पञ्चाशत्प्रमिते होमेऽरत्निमात्रम् अंगुलान्येकविंशति २१ शते अरत्निमात्रम् अं० २२ सहस्रे हस्तमितम् अं०२४ अयुते द्विहस्तम् अं० ३३-७ षष्टिसहस्रे त्रिकरं अ० ४१ अथ लक्षे चतुःकरं अं० ४८ पट्लक्षे पञ्चकरम् अं०५३ ६ दशलक्षे षट्करम् अं० ५८-७ पञ्चाशल्लक्षे सप्तकरम् अं० ६३-४ कोटावष्टकरम् अं०६७-७ पञ्चाशत्कोटौ नवकरम् अं०७२ शतकौटौ

दशकरमिति अं०५–७ शतकोटिहोमस्तु मणित्थनिरूपितः केचिल्लक्ष-होमे हस्तमात्रमाहुः तद्वृतपुष्पादिशीघ्रदाहविषयम् हस्तमात्राच्चैकैकल-क्षवृद्ध्या कुण्डेऽप्येकैकहस्तवृद्धिमाहुर्यावद्दशहस्तं यथा द्विलक्षे हस्त-द्वयं द्विकरमिति चतुस्त्रिंशदङ्गुलानि न केवलं हस्तमात्रा वृद्धिः एवं सर्वत्र ज्ञेयम् केचित्कोटिहोमे दशलक्षे च दशकरमाहुः तत्स्कान्दे स्थू-लवस्तुहोमपरम् केचिन्मणित्थादयः कोटिसमिद्धोमे षोडशकरमाहुः। नतु हस्तमात्रस्य क्षेत्रफलं द्विसंगुणं सत् द्विहस्तं कुण्डं तत्रायुतो होमः। सहस्राच्चेच्छतहोमे कियती वृद्धिस्तत्राह विष्णुः पञ्चाशत्प्रमिते च एकविंशतिमितं २१ कुण्डं शतेऽरत्निकं २२–४ यूकानां त्रितयं यवप्र-तिशतं वृद्धिः क्रमादीरिता॥ कुण्डं हस्तमितं सहस्रकमिते तस्मिञ्छते यूकिकावृद्धिः सप्तसहस्रकेऽङ्गुलमिता १ यूका तु षड्भिः ६ मिता॥ ७॥ एवं वेदगुणाङ्गुलं वियवकं ३३–७ कुण्डं तु होमायुते साहस्रे त्रियवाः सपादयवकाः खं चालकाग्रत्रयम् १–२–०–३। एवं प्रत्ययुतेऽङ्गुलं १ युगयवा ४ यूकाश्चतस्रस्तथा लक्षे वेदकरं बुधैर्निगदितं वालादिसाह-स्रके॥ ८॥ षल्लिक्षा ह्ययुते द्वितर्कमितयो लिक्षाश्च लक्षेऽङ्गुलं यूकाः पञ्च यवा १ सदा प्रयुतके कुण्डं भवेत्षट्करम् ५८–६॥ वृद्धिः स्यात्प्रयुतादथो ह्ययुतके वालाग्रषट्कं भवेल्लक्षे पर्वत ७ लिक्षका दशगुणो वृद्धिर्यवो यूकिकाः १–९॥९॥ कोटावष्टकरं ६७–७ क्रमान्निगदितं लक्षेऽलकाग्रत्रयं यूकार्द्धं प्रयुते यवस्तदपरं कोटौ परं यूकिका॥ कोटी-नां शतकेऽङ्गपर्वतमितं न्यूनं यवेनाह तत् ७५–७ कुण्डं कोटि-हुतौ तथा प्रयुतके स्यान्स्थूलहोमादिषु॥ १०॥ पञ्चाशत्प्रमिते होमे रत्निः २१ शतेऽरत्निः २२–४ शतादुपरि प्रमिते एको यवः यूकात्रयम्॥ एवं सहस्रे करत्रयम् अं० २४ सहस्रादुपरि प्रति-शतं सप्तयूकावृद्धिः। सहस्रेऽगुलमिता यूकाः षट्। एवमयुते होमे वियवकं वेदगुणांगुलं कुण्डं स्यात् अं० ३३–७॥ अथायुता-

दुपरि प्रतिसहस्रे एको यवः द्वे यूके शून्यलिक्षाश्चतस्रः ४ एवं मुनिवरैर्लक्षहोमे चतुष्करं प्रोक्तम् ४८ ॥ अथ लक्षादुपरि प्रतिसहस्रे लिक्षाः षट् अलकाग्रमेकम् । अयुते सप्त यूका लिक्षाः पञ्चलक्षेऽङ्गुलमेकमेको यवः यूकाः पञ्च एवं प्रयुते षट्करम् अं० ५८ यवाः ६ ॥ अथ प्रयुतादुपरि वालाग्रषट्कम् ६ लक्षे सप्त लिक्षाः ७ दशगुणे दशलक्षे एको यवः १ यूकैका १ एवं कोटावष्टकरम् अङ्गुलानि ६८-७ ॥ अथ कोटेरुपरि । वालाग्रत्रयं ३ प्रयुते दशलक्षे यूकार्धं लिक्षाचतुष्टयमित्यर्थः । कोटौ पंचयूका ५ एवं शतकोटौ यवेन न्यूनम् अंगपर्वत-७५ यव ७ दशकरं कुंडम् । अथेदानीं दशकुंडानां खातमेखला विभज्य विनियोगः । हस्ते खातं तु तिथ्यं १५ गुलमितभभवन्मेखलाः खेटतुल्यास्तत्तत्खातं द्विहस्ते त्रिगुणितमुनयो यूकिकाः पञ्च कार्याः ॥ भानुः षड्ह्नयस्तास्तदनुगुणकरे तर्कपक्षाङ्गुलं स्यात् २६ यूकैका मेखलाः स्युः शरदशनिगमाः सप्तयूकाः १ । ५ । ४ । ७ । विधेयाः ॥ ११ ॥ चतुष्करे शून्यगुणांगुलं च ३० तन्मेखलानागमहीमिताश्च ॥ स्यात्पंचमे वह्निगुणा ३३ ॥ शरा ५ भूतन्मेखलाविंशति २० शून्य० सप्त ७ ॥ १२॥ षट्त्रिंश ३६ द्विपवो गुणाः ३ बाणाः ५ नगा ७ यूकिकाः रामाश्विप्रमितांगुला २३ अथ यवाः षट् ६ डकिकैका १ तथा ॥ कुण्डे ह्यष्टकरे दृगंबुनिधयः ४२ खातं तु वेदा ४ गुणाः ३ स्युानत्यं किल मेखलाः शरयवौ ५ द्वौ २ पञ्च ५ विष्णुमेहा ॥१३॥ दैवज्ञो नवहस्तकेशरजलधि ४५ खातं ह्युडु २७ मेखला दशहस्ते नगाम्बुनिगुणा बाणाः ५७ । ४७ । ३ । ५ क्रमेण तु विंशतिर्नागसंयुक्ता गुणा द्वौ मेखला बुधः ॥ १४ ॥ हस्तमात्रे तिथ्यङ्गुलं १५ खातं नवाङ्गुलमेखलाः ९ द्विहस्ते खातमेकविंशत्यङ्गुलानि २१ । ० । ५ यूका पञ्चद्वादशाङ्गुलानि षट् यवा यूकास्त्रयः १२ । ६ । ३ ॥१५॥ अथ त्रिहस्ते खातं षड्विंशत्यङ्गुलानि यूकैका २६ । ० । १ ।

मेखला पञ्चदशाङ्गुलानि चत्वारो यवाः सप्त यूका १५ । ४ । ७ अथ चतुर्हस्ते खातं त्रिंशदङ्गुलानि ३० । ० । ० मेखला अष्टादशाङ्गुलानि १८ । ० । ० पञ्चकरे खातं त्रयस्त्रिंशदङ्गुलानि पञ्च यवाः यूकैका ३० । ५ । १ मेखला विंशत्यङ्गुलाः सप्त यूकाः २० । ० । ७ षट्हस्ते षट्त्रिंशदङ्गुलानि षट् यवाः यूकात्रयं ३६ । ६ । ३ मेखला द्वाविंशत्यङ्गुलाः पञ्चयूकाः २२ । ० । ५ सप्तहस्ते एकोनचत्वारिंशदङ्गुलानि पञ्च यवाः सप्त यूकाः ३९ । ५ । ७ खातं मेखलास्त्रयोविंशदंगुलानि षट् यवाः यूकैका २३ । ६ । १ अष्टहस्ते द्विचत्वारिंशदंगुलानि चत्वारो यवाः यूकात्रयं ४२ । ४ । ३ खातं मेखलास्तत्वमितान्यङ्गुलानि यवौ यूकाः पञ्च २५ । २ । ५ नवहस्ते पञ्चचत्वारिंशदङ्गुलानि ४५ । ० । ० खातं मेखलाः सप्तविंशत्यङ्गुलमिता २७ । ० । ० दशहस्ते सप्तचत्वारिंशदङ्गुलानि यवत्रयं यूके द्वे ४७ । ३ । २ खातं भवेन्मेखलास्तु अष्टविंशदङ्गुलाः यवत्रयं यूके द्वे २८ । ३ । २ ॥ इति मेखलासिद्धिः ॥ सामान्येन कथितो मेखलोच्छ्रायोऽधुना त्रिमेखला दशसु कुंडेषु प्रत्येकमुच्छ्रायमाह ॥ हस्ते व्यासे मेखलाविस्तृता स्युर्वेदा ४ वह्निद्व्यंगुलत्र्यंगुलोच्चैः बाणा ५ बाणाः ५ वह्नयः ३ सात्विकीया वेदा ४ युग्मं २ चन्द्रमा १ राजसी स्यात् ॥१६॥ युग्मं २ तर्को ६ श्चानुतर्का ६ द्विहस्ते तुंगावेदै ४ नेत्रसंख्यै २ र्भुवो १ च्चा ॥ त्रिहस्ते अंग ६ नगां ७ बुदा ४ स्युर्बाणे ५ न्दु १ बाणा ५ दहना ३ ग्नि ३ तर्काः ६ ॥ १७ ॥ स्यादुच्चता बाण ५ शशी १ षवो ५ऽत्र तिस्रः समास्तुङ्गतयां वदन्ति ॥ स्याल्लक्षहोमे गज ८ तर्क ६ वेदा ४ षडंगुलोच्चा ह्युत पञ्चहस्ते ॥ १८ ॥ नगा ७ द्वि २ वेदा ४ ऋतु ६ बाण ५ वेदा ४ वेदाग्नि ३ तर्का ६ ऋतु ६ बाणः ५ बाणाः ५ ॥ १९ ॥ षड्हस्ते खग ९ तर्क ६ वारिधिभि ४ र्मुख्या द्वितीया मुन्य ७ क्षि २ द्विमितै २ स्तथा युग ४ नगान ७ ब्जैः १ स्यात्तृतीयास्तथा ॥

तुंगापर्वत ७ युग्म २ पर्वत ७ मितास्ते सप्तहस्ते दिशो वेदा ४ वारिधयो ४ नगाद्रि ७ हुतभु ३ ग्बाणा ५ श्विरूपाणि ५ च ॥ २० ॥ अथाष्टहस्ते भव ११ नेत्र २ वेदा ४ नागा ८ ग्नि ३ जाया ३ शरबाण ५ युग्मम् २ ॥ तथा गजाग्न्य ३ द्रि ७ भिरग्रतः स्युर्विस्तारतुल्यांगुलयस्तु केचित् ॥२१॥ सूर्याः १२ प्रशस्ताः इषवः प्रदिष्टाः खेटांगुलांगा ६ नव ९ तुंगतांके ॥ सूर्येषु १२।५ जाया ७ खग ९ वह्नि ३ तर्का ६ शत्रु ६ द्वि २ वेदा ४ नव विक्रमांगम् ६ ॥ २२ ॥ हस्तव्यासे हस्तमात्रे कुण्डे विस्तृतौ विस्तारे प्रथमा वेदांगुला ४ सात्विकी स्यात् ॥ द्वितीया राजसी त्र्यंगुला विस्तता तृतीया तामसी द्व्यंगुला तिस्रः त्र्यंगुलोच्चा विस्तारतुल्योन्नतयस्तु केचित्तन्न मम मतम् ॥ अन्ये केचन अर्क १२ अष्ट ८ वेदा ४ उच्छ्रायाः प्रथमा अर्कांशोच्चा द्वितीया अष्टांशोच्चा तृतीया वेदांशोच्चा द्विहस्ते तु बाणा ५ बाण ५ वह्नयोऽगुलाद्याः बाणांगुलानि ५ पञ्चयवाः ५ यूकात्रयमिति सर्वत्रांगुलाद्यमिति भावः । द्वितीया वेदांगुलानि ४ यवौ २ यूकैका ॥ तृतीयांगुलद्वयं २ यवा ६ यूकाः ६ विस्तृता तुंगावेदां ४ गुला यव २ यूका १ सहिता अत्र नववसुतुंगाः विस्तृतापि समाना अत एव मूलाकैंमेखला विभागो ज्ञेयः शेषं सुगमम् । अथ योनिलक्षणसूत्रम् ॥ कुडं व्यासदला इति ॥२३॥ मघवशिखि इत्यादि ॥ २४ ॥ कुडव्यासदलेनायतादित्यर्थः ॥ अथ मूलभागे वितता त्र्यंशेन विस्तृता व्यासचतुर्विंशेनांगुलेन तु घटितप्रथममेखलामुपरि उच्चा तावता चतुर्विंशेन नैव घटितमेखलया समन्ताद्युता व्याप्ता अयमर्थः ।योनितलभागे योन्या उपरि परिधिना मार्गेणैव व्यासचतुर्विंशांशेनोच्चा तावन्माननिजाग्रकेण विशती कुण्डान्तरे तावदिति विस्तृता व्यासं चतुर्विंशमितं तदग्रं तेन कुंडांतरे कुंडमध्ये विशती प्रविष्टेत्यर्थः । अन्तर्बिला अंतर्मध्ये सरंध्रा प्रणालिकासदृशा वृत्तद्वयेन रुचिरा अथवा

अश्वत्थपत्राकृतिः अथवा गजोष्ठसदृशी छिद्रसंयुता मतांतरे योनि-
मध्यगतं लिंगं मूर्तिपडौ दक्षिणोत्तराविति योनिमूले इत्यादि ॥ २५ ॥
भूतलमारभ्य यावद्योनिमूलमायतं दीर्घं मध्ये सरंध्रं नालाकारं स्यात
नालं योनिमूलमग्रं भूतलगतं मूलं केचिदाहुः सरंध्रमिति योनितल-
परिधिमध्ये नालप्रवेशोऽयं सुकीलभूतं कुर्यात् अपरे नालमेव सरंध्रं
कुर्यात् तन्न युक्तिसहं प्रकृतौ नालादधो रन्ध्रं दृश्यते अत्र पूर्वाग्नेयया-
म्यकुंडानां योनिरुदङ्मुखी तेन योनिकुण्डे योनिः कर्त्तव्येति सिध्यति
स्वायंभुववचनात् । अपरे न कुर्वन्ति वरुणदिशि इतरकुंडानां पूर्व-
वक्त्रा योनौ कुण्डेनैव योनिरित्यादि ॥ २६ ॥ पद्मकुण्डे नाभिं न
कुर्वंति अथ हस्तादिकुण्डानां योनिं विभज्य विनियोगः मखाय आद्ये
भानुकरी रुद्ररूपपराचिता १२ । ८ । ११ ॥ भूपानगावार्धयो १६
। ७ । ४ रुद्रद्वौ दहनां ११ । २ । ३ गुलाद्विशशिका १२ योनिर्द्वि-
हस्ते भवेत् ॥ स्युः कुडं त्रिकरं नखांगजलदं २० । ६ । ४ विश्वां-
बुनेत्रांगुलं १३ । ४ । २ रूपं षट्गगनं १ । ६ । ० जिनाः खखयुतं
२४ । ० । ० भूपाः खखं १६ । ० । ० द्वौ खखं २ । ० । ० ॥२७॥
पंच हस्तेंगमक्षानगाशून्य २६ । ७ । ० । मत्यष्टयः सप्तकरामतु-
ल्यांगुला १७ । ७ । ३ द्वौ यमौ व्योमतुंगा २ । २ । ० षड्स्तके
खेचराणि रामाः पयोदाः २९ । ३ । ४ क्रमाद्विस्तृतिर्नंदरूपाः शराः
शून्यकं ९ । ५ । ० तुंगतां द्वौ गुणाः पञ्च यूकास्तथा २ । ३ । ५ ॥२८॥
योनिः सप्तकरे महीहुतभुजांगशून्यं ३१ । ६ । ० । मूर्छना रूपे
द्वे २१ । १ । २ नयनानि २ । ५ । ० पंचखमधो वक्ष्येऽष्टहस्ते
ततो देवाः सप्तयुगानि ३३ । ७ । ४ सर्वदा ॥ २९ ॥ षट्कृतिर्नवकरैः
किं दैर्घ्यं ३५ । ० । ० विस्तृतौ जिनामिता २४ । ० । गुणा ३
तुंगा ० दिक्करे नगगुणा ९ गिरयोऽक्षा ३७ । ७ । ४ स्तत्वनेत्रयुगलं
२५ । २ गुणरूपम् ३ । १ । ३० ॥ व्याख्या ॥ आद्यहस्तमात्रकुण्डे ॥

भानुकरी रुद्ररूपरचिता दैर्घ्ये द्वादशांगुला विस्तृतावष्टांगुला घटित-मेखलायामेकांगुलोच्चया अथ द्विहस्ते कुण्डे दैर्घ्येभूपांगुलाः सप्त यवाः यूकाचतुष्टयं विस्तृतौ रुद्रांगुलानि द्वौ यवौ दहना इति यूकात्रयं तुङ्गताशशीन्यंगुलमेकं हुतभुजो यवा ३ यूकाशून्यं अथ त्रिहस्तेन नखांगजलदाः २० । ६ । ४ । नखांगुलानि अङ्गयवा जलदाश्चतस्रो यूकाः विस्तृतौ विश्वां १३ गुलानि अंबुचत्वारो यवाः नेत्रयूके तुङ्ग-तायां रूप १ अङ्कुलं षट्यवाः ६ शून्ययूका अथ ॥ चतुर्हस्ते दैर्घ्ये जिनांगुलानि खखयुगमितिशून्ययवाः शून्ययूकेति विस्तृतौ भूपां-गुलानि यवयूके शून्ये तुङ्गतायामंगुलद्वयं यवयूकेति शून्ये अथ पञ्चहस्ते कुंडे दैर्घ्यमंगपक्षाः षड्विंशांगुलानि नगयवाः ७ शून्ययूका-विस्तृतौ अष्टत्ययसप्तदशांगुलानि १७ सप्तयवाः रामेति यूकात्रयं तुङ्गतायां द्विविंशत्यंगुलद्वयं यमौ इति यवौ द्वौ व्योमयूकाशून्यं अथ षड्हस्ते दैर्घ्ये खेचराक्षिणी एकोनत्रिंशदङ्कुलानि राममितियवाः ३ पयोदाश्चतस्रो यूकाः विस्तृतौ नन्दरूपा एकोनविंशत्यङ्कुलानि शर-यवाः ५ शून्ययूकातुङ्गतायां द्वाविंशत्यङ्कुलद्वयं गुणयवाः ३ पञ्चयूका अथ सप्तहस्ते दैर्घ्ये महीहुतभुजः एकत्रिंशदङ्कुलानि अङ्गयवाः ६ शून्ययूका विस्तृतौ मूर्छनाङ्कुलानि रूपं यवः द्वे यूके तुङ्गतायां नयनाङ्कुलानि त्रयस्त्रिंशदङ्कुलानि ३३ सप्तयवाः ७ युगयूका ४ विस्तृतौ आकृतिद्वाविंशति अङ्कुलानि पञ्चयवा ५ शून्ययूका तुङ्ग-तायां नयनाङ्कुलानि अङ्गयवाः ६ अम्बुदजलदाः ४ । अथ नवहस्ते दैर्घ्ये षट्त्रिंशदङ्कुलानि ३६ यवयूकाशून्यं विस्तृतौ जिनाङ्कुलानि २४ यवयूकाशून्यं तुंगताया गुणाङ्कुलानि ३ यवयूकाशून्यम् । अथ दिक्करे कुण्डे दैर्घ्ये नवगुणाङ्कुलानि ३९ गिरयो यवाः ७ चतस्रो लिक्षाः ४ विस्तृतौ तत्त्वाङ्कुलानि २५ नेत्रयवौ २ यूके २ तुङ्गतायां गुणाङ्कुलानि ३ रूपमेकं यवः १ यूकाशून्यम् ॥ ३० ॥ अथ कण्ठः ।

खाताद्बहिः क्षेत्रजिनांशकेन कण्ठं समन्तात्त्वपरेऽर्कभागैः ॥ एकांगुलं स्यात्करमात्रकुण्डे धुनाब्जके खातविधानमानम् ॥ ३१ ॥ अस्यार्थः ॥ खाताद्बहिः क्षेत्रचतुर्विंशांशेन समंततः कंठः स्यात्तेन हस्तेन एकांगुलं द्विहस्ते पञ्चयूकोनं सार्धांगुलं त्रिकरेऽगुलमेकं पञ्चयवाः यूकाः पञ्च तिस्रः लिक्षाः चतुःकरेऽगुलद्वयं पञ्चलिक्षा पञ्चकरेऽगुलद्वयम् एको यवः सप्तयूकाः ॥ ३२ ॥ षष्ठे करेऽगुलद्वयं त्रयो यवाश्चतस्रो यूकाः पंचलिक्षाः सप्तहस्तेऽगुलद्वयं पञ्च यवाः यूकैका लिक्षाः तिस्रः । अष्टहस्तेऽगुलद्वयं षड्यवाः यूकाशून्यं पञ्चलिक्षाः । नवकरे त्रीण्यंगुलानि यवयूकाशून्यं दशकरे त्रीण्यंगुलानि एको यवः विस्तारतुल्यमित्यादि ॥ ३३ ॥ आदौ कुण्डस्य सम इति द्वे मेखलमानमग्रणीः मेखलोनभवे तु खातं कुण्डं स्यान्मेखलायुतं यावान्विस्तारस्तत्तुल्यमाद्यमेखलोन्नत्या प्रथम-मेखलोच्चता समं भूरिभिराचार्यैः खातमवादि समेखलं सर्वखात-मित्यर्थः । ननु योन्यादिषु विस्तारायामाभावात् चतुरस्रविस्तृतमिति प्रथमयोन्यादिकुण्डेषु प्रकृतिभूतस्य मूलभूतस्य चतुरस्रस्य विस्तारः सम इत्यर्थः । क्वचिदिति मेखलां त्यक्त्वा प्रथममेखलौन्नत्यं त्यक्त्वा शेषं खातमित्याचार्यः । अथ तत्र तावत्कुंडमंडपादिसाधनार्थं भूमि-संशोधनं बौधायनः प्राह ॥ प्रारम्भात्पूर्वतः कुर्यात्खननं कर्मसिद्धये ॥ जलान्तं प्रस्तरान्तं वा पुरुषांतमथापि वा ॥ ३४ ॥ पुनः संपूरयेत्खातं तत्र कर्म समारभेत् ॥ व्याख्या तत्र कुण्डमण्डपादिसिद्धौ वास्तुकर्मणि भूमिशोधनं प्रारम्भात्पूर्वतः कुर्यात् इति प्रारम्भादिति जपप्रारम्भात् । केचित्तु मनःसंकल्पमेव प्रारंभस्तेषां मते षण्मासात्पूर्वं खननं युक्तं स वर्षेऽस्मिन्यज्ञकर्म करिष्यामीत्युक्ते तदेव खननप्रारंभोऽयमर्थः । सका-मयाजी षण्मासात्पूर्वं खातं संशोध्यैव मृत्पूर्वादधिका चेच्छुभं समा चेत्तदा मध्यमं न्यूना चेत्तदा कर्महानिः । उक्तं च वास्तुकर्मणि । गृहे कुंडे हस्तमितं खात्वा श्वभ्रं प्रपूरितम् ॥ यन्न्यूनपरिशिष्टं तत्समे

११

समं धन्यमधिकं तत्पदमिति अवटमथाम्बुपूर्णपदशामित्यागतस्य यदि नोनं तद्धन्यं यत्र भवेत्सतासता संख्या चतुःषष्टिः यत्र तु षष्टिपलानि जलं तिष्ठति निःशेषगतोऽस्त्यर्थः । सा भूमिर्धन्या इति शेषः । मते षण्मासात्पूर्वतः खातमित्यादि । अथवा महद्यज्ञे बहुदिनसाध्ये समग्रकुंडमंडपभूमिखनने अथवा यस्मिन् यागे चतुर्दिक्षु मंडपस्तन्मते भूखनने षण्मासात्पूर्वं कुर्यादिति।एकमंडपेऽपि नवकुंडविधानप्रारम्भादर्वाक्समग्रमण्डपायामदैर्घ्यशोधं कर्तुमशक्यत्वात्षण्मासादिपूर्वं स्यात् ॥अमुमेवार्थं गृहीत्वावददिति ॥ पूर्वमृतुत्रयं पाल्यं पश्चात्प्राचीं समारभेत् ॥ तत्र वर्णवशाच्छूद्रादीन्कुर्यात्स्वस्वकर्मणि ॥ ३५॥ श्वेता शस्ता द्विजेन्द्राणां रक्ता भूमिर्महीभुजाम् ॥ विशां पीता च शूद्राणां कृष्णान्येन च मिश्रिता ॥ ३६ ॥ यत्र यत्र सदृशी भूस्तत्र तत्र कुंडवास्तुकर्मणि चेति एवं गन्धाप्तदेवतातृणरसादिभिः स्वस्ववर्णभूमिं ज्ञात्वा भूम्यनिश्चये तत्पुरुषघोरवामदेवसद्योजातमिति चतुर्भिर्मंत्रैराज्यं हुत्वा स्वस्ववर्णतां संपाद्य प्रकटीकृत्वा वा खनित्वा शुद्धमृदा पूरयित्वा कुट्टनादिना दृढां कृत्वा समां कारयेत् ॥ अथातः सिकताकल्पं व्याख्यास्यामः ॥ केशतुषखर्परशर्करास्थिपिपीलिकासिकताभस्मानि वर्जयेत् भस्मना यजमानक्षयः स्यात् ग्रामविनाशनं पिपीलिकादिना राष्ट्रभंगः आर्द्रसिकताभिर्विघ्नभयं केशैः स्त्रीमरणं तुषेण पुत्रमरणं कपालैर्ऋत्विग्भयं शर्करया बंधुवियोगस्तृणेन कर्मक्षयो भवतीत्याह भगवान्बौधायनः ॥ आर्द्रा निषिद्धा सिकता कृष्णा संशुक्ला भवेदिति ॥ ३७ ॥ अथ भूमिप्रार्थना । तुषकेशैश्च पाषाणैर्वल्मीकांगारवर्जिते ॥ विष्णुशक्तिसमुद्भूते शंखवर्णे वसुंधरे॥अनेकरत्नसंपन्ने भूमिदेवि नमोऽस्तु ते ॥३८॥अथ वर्णपरतया भूमिः ॥ श्वेता स्याद्ब्राह्मणी पृथ्वी रक्ता स्यात्क्षत्रिणी तथा ॥ वैश्या वै पीतका ज्ञेया शूद्रा कृष्णा प्रकीर्तिता॥ ३९॥ चतस्रो ब्राह्मणे श्रेष्ठास्तिस्रश्च क्षत्रिये वराः॥ द्वे विशश्चापि वै श्रेष्ठे शूद्रे चैका प्रकीर्तिता॥४०॥द्रव्यगंधा

सिता दीप्ता ब्राह्मणी मधुरा धरा॥ कुंकुमाभाति तीक्ष्णा च क्षत्रिया तीक्ष्ण-
गंधका ॥४१॥ वैश्या पीता कषाया च धान्यगन्धा प्रशस्यते ॥ कुंकुमा
मध्यगन्धा च कृष्णा शूद्रा वसुंधरा ॥ ४२ ॥ अथ भूमिसमीकरणसू-
त्रम्॥ मूलैक्यं किल दण्डयोः सरलयोरग्रद्वयं यत्तथा तिर्यग्दंडमथोऽस्य
मध्यमलवे ॥ मूलात्त्यजेल्लंबकम् ॥ निम्ना यत्र भवेद्धरा तदधिका वा पूर-
येद्वा खनेदेवं कूर्मनिभा धरा मुनिवरैः कुण्डादि तस्यां स्मृतम् ॥४३॥
अथ प्राचीसाधनम् ॥ वार्कक्रांतिलवाक्षकर्णनिहतिर्भांकर्णनिघ्नी नभो-
क्षाग्रात्पारविदिग्भुजो यमदिशाद्विघ्नाक्षभां संस्कृतम् ॥ केंद्रेभ्योत्थवृतो
स पूर्णगुणवद्भाग्रात्प्रदेयो भवेद्याम्यादेक्सभुजार्द्धकेंद्रमुदिता रज्जुश्च
पूर्वापरा ॥४४ ॥ समतलमस्तकपरिधिधर्मसिद्धो दंतिदंतजः शक्तः ॥
अथवा सूच्यग्रः सरलः शंकुः पृथुमूलोऽथ खादिरः ॥ मूलमध्ये तु
सूक्ष्माग्रं स्थिरीकर्तुं प्रकल्पयेत् ॥४५॥ शंकोः ऋजुकरणं सपादशंकु-
तुंगत्वमानेनैकीकृताग्रकैः ॥ चतुःकीलैः स्पष्टकीला एवं शंकुर्ऋजु-
र्भवेत् ॥४६॥ अथ मंडपसाधनम् ॥ गृहादीशानभागे ग्रामादेव पुण्य-
तीर्थे पर्वते वा षोडशहस्तं षोडशस्तंभसमं मण्डपं कुण्डमंडपं वा सम-
चतुरस्रं कुर्यात् मंडपलक्षणं त्वाथर्वणसूत्रादिभिरवगंतव्यं विस्तरभया-
न्नेह लिख्यते। तत्र समचतुरस्रसाधनमाह। सूत्रे प्राचीविलंघ्यमित्या-
दि ॥ ४७ ॥ प्रकारांतरेण चतुरस्रमाह॥ व्याख्यादिग्गुणेत्यादि ॥४८॥
प्राच्यंतं शंकोरित्यादि ॥४९॥ अथ समकुंडमंडपयोः कुण्डवेद्योर्निर्णयो
विरच्यते ॥५०॥ वेदैः पूर्वं खाग्निसंख्येऽङ्गुले तत्कार्यं कुंडं प्रावदच्चातुर-
स्रम् ॥ श्लक्ष्णैः रामः परशु मंडपेवेत्याप्ते साम्यं कुंडमाद्यात्किलाथो
॥ ५१ ॥ वेदे प्रत्यग्वर्तुलं चतुरस्रं कुंडे मध्ये मंडपे मालवीयः ॥ पद्मे
भागे वारुणे दीक्षितो वै रामः कुंडं प्रावदत्सर्वसिद्ध्यै ॥ ५२ ॥ महार्ण-
वमते वेद्या ईशान्यां चतुरस्रकम् ॥ अष्टास्रं वा च यत्प्रोक्तं सर्वकामाप्तये
किल ॥५३॥ बौधायनाः शौनकवर्यवर्या मध्ये चतुःस्तंभकवेदिभागे ॥

कुंडानि चेत्स्यात्सममंडपः स्याद्वेदिस्तदैशान्ये यदि मध्यवेदिः ॥ ५४ ॥ ऐशानके कुण्डविनिश्चयश्चेच्चिंत्यं तदा निष्फलमिष्टमेभिः ॥ मध्योन्नतं स्तंभचतुष्टयेन कुण्डे भवेद्यो हितकार्यकारः ॥ ५५ ॥ कुण्डमण्डपवेदीनां विशिष्टोद्भवविष्णुना ॥ निर्णयो विहितो ग्रन्थः संक्षिप्तः सुखबोधने ॥ ५६ ॥

१५।४।१६

इति श्रीविष्णुविरचिता कुण्डमरीचिमाला समाप्ता ।

इति

कुण्डग्रन्थविंशतिः

समाप्ता ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—
गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
" लक्ष्मीवेंकटेश्वर " छापाखाना,
कल्याण—मुंबई.
दूसरा पता—खेमराज श्रीकृष्णदास,
श्रीवेङ्कटेश्वर स्टीम् प्रेस—मुम्बई.



Brief Introduction

KONKA GROUP CO., LTD. was incorporated in December 1979 as
tronics industry. The Group was invested by Overseas Chinese Town
Shenzhen, PRC and KONGWAH International Co., Ltd. of Hongkong.
1992 into a listed company of joint stock system.

The core business and the target for its long-term development is
At present, it produces electronic goods of over 450 models in 15 series
sound system series, telecommunicaiton series and no-freon refrigerat
new products come into the market every year. Annual output is more
are new products and these products are sold all around the world.

In October 1993 KONKA Corporation got the ISO9001 Quality Sy
KONKA's ability on designing, manufacturing and managing has improve

Yukai Law.

KONKA GROUP CO.,LTD.
OVERSEAS CHINESE TOWN, SHENZHEN, CHINA
POSTCODE: 518053
TEL: (755)6608866-227, 209, 609
(755)6602619
FAX: (755)6600082 (755)6602619

KHABAROVSK KONKA LTD.
No. 45 PUSKIN STREET, KHABAROVSK, RUSSIA
POSTCODE: 680000
TEL: 007-4212-393066

HONGKONG KONKA LTD.
FLAT 1307 SINCERE HOUSE, 83 ARGYLE ST. KLN. HONG
TEL: (852) 23927128
FAX: (852) 23927638